VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
तृतीय वर्ष
(डिग्री कोर्स)
सेमेस्टर-V

इतिहास

भारत में राष्ट्रवाद

SYLLABUS

UNIT-I

First war of Independence : Causes, Impact and Nature.

UNIT-II

Factor leading to the growth of Nationalism in India.

UNIT-III

Theories of Nationalism : Views of Gandhi and Tagore.

UNIT-IV

Early phase : the Ideology, Programme and Policy of Moderates.

UNIT-V

Extremist phase : Rise and development of Extremist in India.

UNIT-VI

Swadeshi Movement and Congress split at Surat.

UNIT-VII

Rise of Muslim League : Demands and Programme.

UNIT-VIII

National awakening during First World War : Lucknow Pact and Home rule Movement.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या एम्पायर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

लेखन एवं सम्पादन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम ...3
UNIT-II : भारत में राष्ट्रवाद ...21
UNIT-III : राष्ट्रवाद की विचारधाराएँ ...39
UNIT-IV : उदारवादी काल ...61
UNIT-V : उग्रवादी काल ...81
UNIT-VI : स्वदेशी आन्दोलन और कांग्रेस में विभाजन ...110
UNIT-VII : मुस्लिम लीग का उदय ...133
UNIT-VIII : लखनऊ समझौता एवं होम रूल आन्दोलन ...149

UNIT-I

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम
First War of Independence

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उपनिवेशों में राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन से जुड़ी हुई क्यों थी?
Why was the process of rise of the nationalism in the colonies linked to the anti-colonial movement?

उत्तर दमन और दुर्व्यवहार के कारण भिन्न-भिन्न समूह एक-दूसरे से बँध गये थे। औपनिवेशिक शासन के खिलाफ लड़ते-लड़ते एकता की भावना समझ आने लगी। खुद को विदेशी ताकत से आजाद कराने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम में जनता हिस्सा लेने लगी। हर वर्ग के लिए स्वतन्त्रता संग्राम के मायने अलग थे और उनसे उम्मीद भी अलग थी। इस तरह उपनिवेशों में राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन से जुड़ी हुई थी।

प्र.2. 1857 के विद्रोह से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by the revolution of 1857?

उत्तर 1857 का विद्रोह 1857-58 के दौरान भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक बड़ा विद्रोह था। लेकिन यह असफल रहा और ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा इसे हटा दिया गया, जिसने ब्रिटिश क्राउन की ओर से एक सम्प्रभु शक्ति के रूप में शासन और कार्य किया। इसे 1857 के भारतीय विद्रोह के रूप में प्रचलित ब्रिटिश शासन के खिलाफ आक्रोश के गम्भीर विस्फोटों में से एक माना जाता है। भारतीय इतिहास में 1857 का विद्रोह एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर था। इसे "स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध" के रूप में भी जाना जाता है।

प्र.3. प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में 1857 की क्रान्ति की प्रकृति लिखिए।
Write the nature of 1857 revolution in first war of Independence.

उत्तर 1857 की क्रान्ति की शुरुआत सिपाही विद्रोह से हुई थी लेकिन अन्तत: इसने लोगों को भी जोड़ लिया। वी०डी० सावरकर ने 1857 की क्रान्ति को प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी थी। डॉ० एस०एन० सेन ने इसका वर्णन "ऐसी लड़ाई जो धर्म के लिए शुरु हुई थी लेकिन स्वतन्त्रता के युद्ध पर जाकर समाप्त हुई" के रूप में किया है। डॉ० आर०सी० मजूमदार ने इसे न तो प्रथम, न ही राष्ट्रीय और न ही स्वतन्त्रता का युद्ध माना है। कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों के अनुसार, यह मात्र एक किसान सिपाही बगावत थी।

प्र.4. पहले विश्व युद्ध ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में किस प्रकार योगदान दिया?
How did the first world war contribute to the growth of the Indian National Movement?

उत्तर पहले विश्व युद्ध ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में निम्नलिखित प्रकार से योगदान दिया—

1. प्रथम विश्व युद्ध के कारण एक नई धार्मिक और राजनीतिक स्थिति पैदा होने से रक्षा व्यय में काफी वृद्धि हो गई।
2. युद्ध में होने वाले खर्च को पूरा करने के लिए कर्ज लिए गये, करों में वृद्धि की गई, सीमा शुल्क बढ़ा दिया गया और आय पर कर लगा दिया गया।
3. युद्ध के समय कीमतें तेजी से बढ़ रही थी। 1913 से 1918 के बीच की कीमतें दोगुनी हो गई, जिसके कारण साधारण जनता की कठिनाइयाँ बढ़ गईं।
4. गाँव में युवकों को जबरदस्ती सेना में भर्ती किया गया, जिसके कारण ग्रामीणों में व्यापक गुस्सा था।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. क्रान्ति की समकालीन घटनाओं, प्रभावों को संक्षेप में लिखिए।
Write briefly about the contemporary events and effects of the revolution.

उत्तर 1. प्रथम अफगान युद्ध (सन् 1838-42)।
2. पंजाब युद्ध (सन् 1845-49)।
3. क्रीमिया का युद्ध (सन् 1854-56)।
4. संथाल विद्रोह (सन् 1855-56)।

प्र.6. क्रान्ति की महत्त्वपूर्ण घटना कौन-सी थी? बताइए।
What was the important event of the revolution?

उत्तर मेरठ घटना—19वीं बैरकपुर नेटिव इन्फैंटरी में नई शामिल की गई एनफील्ड राइफल उपयोग करने में मना कर दिया, बगावत फरवरी 1857 में फैल गयी, जोकि मार्च 1857 में भंग हो गई। 34वीं नेटिव इन्फैंटरी के एक युवा सिपाही ने बैरकपुर में अपनी यूनिट के सार्जेन्ट मेजर पर गोली चला दी। 7वीं अवध रेजीमेन्ट को भंग कर दिया गया। मेरठ में 10 मई को विद्रोह हो गया, विद्रोहियों ने अपने बन्दी साथियों को आजाद किया, अपने अधिकारियों को मार दिया और सूर्यास्त के बाद दिल्ली कूच कर गये।

प्र.7. क्रान्ति के असफल होने के कारण बताइए।
Give reasons for the failure of the revolution.

उत्तर बहादुरशाह जफर वृद्ध और कमजोर हो चुके थे, इसलिए क्रान्ति का नेतृत्व करने में असमर्थ थे।
1. सीमित क्षेत्रीय विस्तार था।
2. भारत का अधिकांश भाग लगभग अप्रभावित रहा।
3. कई बड़े जमींदारों ने अंग्रेजों का समर्थन किया।
4. आधुनिक शिक्षित भारतीयों ने क्रान्ति को विरोध के रूप में देखा।
5. भारतीय सिपाहियों के पास हथियार खराब थे।
6. किसी केन्द्रीय नेतृत्व अथवा समन्वय के अभाव में क्रान्ति को खराब रूप से संगठित किया गया था।
7. क्रान्ति में अंग्रेजी शासन तन्त्र की स्पष्ट समझ का अभाव था और क्रान्ति की तैयारियाँ भी अधूरी थी।

प्र.8. क्रान्ति के दौरान नेताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Mention briefly about the leaders during the revolution.

उत्तर 1. दिल्ली में क्रान्ति के प्रतीकात्मक नेता मुगल शासक बहादुर शाह जफर थे, लेकिन वास्तविक शक्ति सेनापति बख्त खाँ के हाथों में थी।
2. कानपुर में नाना साहेब, तांत्या टोपे, अजिमुल्लाह खान के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। सर हुग व्हीलर स्टेशन कमांडर थे, इन्होंने समर्पण किया। नाना साहेब ने खुद को पेशवा और बहादुर शाह को भारत का सम्राट घोषित किया।
3. लखनऊ में बेगम हजरत महल ने मोर्चा सँभाला और अपने पुत्र बिरजिस कादिर को नवाब घोषित कर दिया। अंग्रेज नागरिक हेनरी लारेन्स की हत्या कर दी गई। शेष यूरोपीय नागरिकों को नये कमांडर-इन-चीफ सर कोलिन कैम्पबेल ने सुरक्षित निकाला।
4. बरेली में खान बहादुर, बिहार में कुंवर सिंह, जगदीशपुर के जमींदार फैजाबाद के मौलवी अहमदुल्लाह ने अपने क्षेत्रों में क्रांति का नेतृत्व किया।
5. रानी लक्ष्मीबाई, जोकि क्रांति की सबसे असाधारण नेता थीं, को गवर्नर लॉर्ड डलहौजी के व्यगपत सिद्धांत के कारण झांसी से बेदखल कर दिया गया था, क्योंकि जनरल ने उनके दत्तक पुत्र को सिंहासन का उत्तराधिकारी स्वीकारने से मना कर दिया था।

प्र.9. क्रान्ति के दमन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
Comment briefly on the suppression of the revolution.

उत्तर 1. 20 सितम्बर, 1857 को अंग्रेजों ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। जॉन निकोलसन इस घेरेबंदी के नेता थे, बाद में वे चोटिल हो गये थे।

TOUCH 'n PASS

2. बहादुरशाह को बंदी बनाकर रंगून भेज दिया गया जहाँ सन् 1862 में उनकी मौत हो गई। लेफ्टिनेन्ट हडसन द्वारा शाही राजकुमारी की माथे पर गोली मारकर हत्या कर दी गई। दिल्ली के हारने के बाद, सभी स्थानीय क्रान्तियों का दमन होता चला गया।
3. सर कोलिन कैम्पबेल ने कानपुर और लखनऊ पर दुबारा कब्जा कर लिया।
4. बनारस में कर्नल नील द्वारा विद्रोह का निर्दयतापूर्वक दमन किया गया।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1857 की क्रान्ति के कारणों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Explain the causes of 1857 revolution in briefly.

उत्तर

क्रान्ति का कारण
(Reason of Revolution)

1. **आर्थिक कारण—**
   (i) अत्यधिक अप्रिय राजस्व व्यवस्था।
   (ii) अधिक कराधान—इसके कारण किसानों को अत्यधिक ब्याज दरों पर साहूकारों से धन उधार लेना पड़ता था।
   (iii) ब्रिटिश नीतियों ने भारतीय हथकरघा उद्योग को नुकसान पहुँचाया जिन्हें आधुनिक उद्योगों के साथ-साथ विकसित नहीं किया गया था।
   (iv) अंग्रेजों का अत्यधिक हस्तक्षेप : जमींदारों की घटती स्थिति।
2. **राजनैतिक कारण—**
   (i) सहायक सन्धि—लॉर्ड वेलेजली।
   (ii) व्यपगत सिद्धान्त—लॉर्ड डलहौजी।
   (iii) धार्मिक अयोग्यता अधिनियम, 1856—धर्म परिवर्तन बच्चे को सम्पत्ति का वारिस बनने से नहीं रोकेगा।
3. **प्रशासनिक कारण—**
   (i) कम्पनी के प्रशासन में भयंकर भ्रष्टाचार-खासकर निचले स्तर (पुलिस, निचले अधिकारियों) में।
   (ii) भारतीय विकास पर कोई ध्यान नहीं।
4. **सामाजिक आर्थिक कारण—**
   (i) अंग्रेजों के स्वयं को श्रेष्ठ मानने का रवैया।
   (ii) इसाई मिशनरियों की गतिविधियां।
   (iii) सामाजिक-धार्मिक सुधारों जैसे सती प्रथा का अन्त, विधवा पुनर्विवाह का प्रयास, महिलाओं की शिक्षा का प्रयास आदि।
   (iv) मस्जिदों और मंदिरों की भूमि पर कर।
5. **तात्कालिक कारण—**
   (i) सामान्य सेवा प्रवर्तन अधिनियम—भविष्य की भर्तियों को कहीं भी कार्य करने यहाँ तक की समुद्र पार कार्य करने का आदेश।
   (ii) ब्रिटिश समकक्षों की तुलना में भारतीयों को निम्न वेतन।
   (iii) गेहूँ के आटे में हड्डी का चूरा मिलाने की खबर।
   (iv) एनफील्ड राइफल की कार्टिज गाय और सुअर की चर्बी से बनी थी।

प्र.2. अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कैसे हुई? इसके प्रारम्भिक उद्देश्य क्या थे?
How did all India National Congress formed? What were its initial objectives?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से माना जाता है। 1883 ई० में इण्डियन एसोसिएशन के सचिव आनन्द मोहन बोस ने कलकत्ता में 'नेशनल कॉफ्रेंस' नामक अखिल

TOUCH 'n PASS

भारतीय संगठन का सम्मेलन बुलाया जिसका उद्देश्य बिखरी हुई राष्ट्रवादी शक्तियों को एकजुट करना था। परन्तु दूसरी तरफ एक अंग्रेज अधिकारी एलेन ऑक्टोवियन ह्यूम ने इस दिशा में अपने प्रयास शुरू किये और 1884 में 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' की स्थापना की।

भारतीयों को संवैधानिक मार्ग अपनाने और सरकार के लिए सुरक्षा कवच बनाने के उद्देश्य से ए०ओ० ह्यूम ने 28 दिसम्बर, 1885 को अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। इसके प्रारम्भिक उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय हित के नाम से जुड़े लोगों के, संगठनों के बीच एकता की स्थापना का प्रयास।
2. देशवासियों के बीच मित्रता और सद्भावना का सम्बन्ध स्थापित कर धर्म, वंश, जाति या प्रान्तीय विद्वेष को समाप्त करना।
3. राष्ट्रीय एकता के विकास एवं सुदृढ़ीकरण के लिए हर सम्भव प्रयास करना। राजनीतिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर भारत के प्रमुख नागरिकों से चर्चा करना एवं उनके सम्बन्ध में प्रमाणों का लेखा तैयार करना।
4. प्रार्थना-पत्रों द्वारा वायसराय एवं उनकी काउंसिल से सुधारों हेतु प्रयास करना। इस प्रकार कांग्रेस का प्रारम्भिक उद्देश्य शासन में सिर्फ सुधार करना था।

प्र.3. 20वीं शताब्दी के किसान आन्दोलन का संक्षिप्त परिचय दें।

Give a brief introduction to the peasant movement of the 20th century.

उत्तर 20वीं शताब्दी के किसान आन्दोलन ने किसानों में एक नई जागृति ला दी। वे अपने सामाजिक-आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए संगठित होने लगे। यद्यपि महात्मा गाँधी ने किसानों के हित के लिए चम्पारण और खेड़ा में सत्याग्रह भी किया परन्तु कांग्रेस शुरू से ही किसानों की समस्याओं के प्रति उदासीन बनी रही। इसी बीच वामपंथियों का प्रभाव किसानों और श्रमिकों पर बढ़ता जा रहा था। अत: उनके प्रभाव में 20वीं शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशक में किसान सभाओं का गठन बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश में हुआ। जहाँ जमींदारी, अत्याचार और शोषण अपनी पराकाष्ठा पर थी। 1920-21 में अवध किसान सभा का गठन किया गया। 1922-23 में मुंगेर में शाह मुहम्मद जुबेर ने किसान सभा का गठन किया। 1928 में पटना के बिहटा में स्वामी सहजानंद सरस्वती ने किसान सभा का गठन किया। 1929 में उन्हीं के नेतृत्व में सोनपुर में प्रान्तीय किसान सभा की स्थापना की गई। 1936 में स्वामी सहजानंद की अध्यक्षता में लखनऊ में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन हुआ।

अखिल भारतीय किसान सभा ने किसानों को संगठित करने एवं उनमें चेतना जगाने के लिए किसान बुलेटिन एवं किसान घोषणा-पत्र जारी किया। किसानों की मुख्य माँगें जमींदारी समाप्त करने, किसानों को जमीन का मालिकाना हक देने, बेगार प्रथा समाप्त करने एवं लगान की बढ़ी दरों में कमी थी। अपनी माँगों के समर्थन में किसानों ने प्रदर्शन तथा व्यापक आन्दोलन किये। सितम्बर, 1936 को पूरे देश में किसान दिवस मनाया गया। उत्तर प्रदेश, बिहार और अन्य स्थानों में किसानों की जमीन को बकाश्त जमीन में बदलने के विरुद्ध एक बड़ा आन्दोलन हुआ।

प्र.4. प्रथम विश्व युद्ध के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ अंतर्संबंध की विवेचना करें।

Discuss the interrelationship of the first world war with the National Movement of India.

उत्तर प्रथम विश्व युद्ध के समय भारत में होने वाली तमाम घटनाओं से उत्पन्न परिस्थितियों की ही देन थी। इसने भारत में नई आर्थिक और राजनैतिक स्थिति उत्पन्न की जिससे भारतीय राष्ट्रवाद ज्यादा परिपक्व हुआ। महायुद्ध के बाद भारत की आर्थिक स्थिति बिगड़ी। पहले तो कीमतें बढ़ी और फिर आर्थिक गतिविधियाँ होने लगी जिससे बेरोजगारी बढ़ी। महँगाई अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गई। मजदूर, किसान दस्तकारों को सबसे अधिक प्रभावित किया। इसी परिस्थिति में उद्योगपतियों के एक वर्ग का उदय हुआ। युद्ध के बाद भारत में विदेशी पूँजी का प्रभाव बढ़ा। भारतीय उद्योगपतियों ने सरकार से विदेशी वस्तुओं के आयात में भारी आयात शुल्क लगाने की माँग की जिससे उनका घरेलू उद्योग बढ़े, लेकिन सरकार ने उनकी माँगों को इन्कार कर दिया। अन्तत: प्रथम विश्व युद्ध ने भारत सहित पूरे एशिया और अफ्रीका में राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रबल बनाया।

प्र.5. भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में जनजातीय लोगों की क्या भूमिका थी?

What was the role of tribal people in the National Movement of India?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में जनजातियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 19वीं एवं 20वीं शताब्दियों में उनके अनेक आन्दोलन हुए। 19वीं शताब्दी में हो, कोल, संथाल एवं बिरसा मुंडा आन्दोलन हुए। 1916 में दक्षिण भारत की गोदावरी पहाड़ियों के पुराने रंपा प्रदेश में विद्रोह हुआ। 1920 के दशक में आन्ध्र प्रदेश की गूडेम पहाड़ियों में अल्लूरी सीताराम

TOUCH 'n PASS

राजू का विद्रोह हुआ। छोटा नागपुर में उराँव जनजातियों के बीच जतरा भगत के नेतृत्व में ताना भगत आन्दोलन चला। इन प्रमुख आन्दोलनों के अतिरिक्त देश के अन्य भागों में भी अनेक जनजातीय विद्रोह हुए, जैसे—उड़ीसा में 1914 का खोंड विद्रोह, 1917 में मयूरभंज में संथालों एवं मणिपुर में थोडोई कुकियों का विद्रोह, बस्तर में 1910 में गुंदा धुर का विद्रोह इत्यादि। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की जनजातियों एवं भारत छोड़ो आन्दोलन के समय झारखण्ड के आदिवासियों ने भी विद्रोह किये। ये सभी जनजातीय विद्रोह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े हुए थे।

प्र.6. स्वतन्त्रता संग्राम में सामाजिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों ने क्या हस्तक्षेप अपनाये? उल्लेख कीजिए।
What interference did social and religious activities have in the freedom struggle? Mention.

उत्तर

सामाजिक एवं धार्मिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप
(Interfere in Social and Religions Activities)

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना ने भारत पर वह आधुनिकता थोपने की कोशिश की जिसके लिए हिन्दू व मुस्लिम समाज कभी तैयार नहीं था क्योंकि इन्होंने हिन्दू व मुसलमानों की धार्मिक व सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की जो कूटनीति अपनायी उसे भारत की रूढ़िवादी जनता ने कभी भी पसंद नहीं किया। तत्पश्चात् उससे गम्भीर उथल-पुथल होना प्रारम्भ हो गई। सती प्रथा, शिशु हत्या, बाल विवाह इत्यादि पर प्रतिबन्ध लगाना इत्यादि सुधार कार्य थे किन्तु इसे परम्परावादी भारतीयों ने अपने सामाजिक मामलों में बाह्य हस्तक्षेप माना जो असहनीय था। भारतीयों का जड़तायुक्त रूढ़िवादिता से भरा जीवन उनके शोषणमूलक उद्देश्यों के कारण समन्वय स्थापित न कर सका। अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति अत्यन्त कठोर व्यवहार एवं उन्हें हेय हेथ से देखना, पग-पग पर भारतीयों को मारना-पीटना, स्त्रियों से अत्याचार व अपमान करना एवं रंग-भेद की नीति का पालन करना आदि क्रूर कृत्य थे। रेल में प्रथम श्रेणी के डिब्बे में सफर, क्लब, होटल संस्थाओं ने बड़े-बड़े पद अर्थात् संभ्रात व सम्मान की वस्तुएँ भारतीयों के लिए निषिद्ध हो गई, रेल व तार आदि के प्रचलन को भी भारतीयों ने अपनी संस्कृति पर प्रहार माना, जेलों व छावनियों में सबके लिए एक ही स्थान पर भोजन बनाने को भारतीयों ने अपना धर्म भ्रष्ट का प्रयास समझा, अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से भी भारतीय सामाजिक जीवन प्रभावित हुआ। अत: अंग्रेजों ने भारतीयों के सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं को इतना तोड़ा-मरोड़ा कि इनके विरुद्ध प्रतिक्रिया अनिवार्य हो गई। जिससे भारतीयों का अंग्रेजों के प्रति असन्तोष बढ़ता गया। जिसका रूप हमें सन् 1857 ई० के विद्रोह के रूप में दिखाई दिया।

हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था शुरू से ही धर्म पर आधारित रही है और जीवन धार्मिक संस्कारों से नियन्त्रित रहा है किन्तु अंग्रेजों ने जो भी कुछ नवीन कार्य किया जैसे कि पाश्चात्य शिक्षा प्रसार इसे हिन्दुओं ने धर्म के विरुद्ध ही समझा। 1813 ई० में कम्पनी के आदेश पत्र द्वारा ईसाई पादरियों को भारत आने की सुविधा मिली तत्पश्चात् भारत में ईसाइयों की संख्या बढ़ती चली गई उनका एकमात्र लक्ष्य भारत में ईसाई धर्म का जोर-शोर से प्रचार करना था। पादरी लोग भी घूम-घूम कर ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करने लगे जो भारतीय ईसाई धर्म अपना लेते उन्हें सरकार की ओर से सुविधाएँ दी जाती थीं।

अत: धार्मिक प्रतिकार के रूप में अपना असन्तोष अंग्रेजों के विरोध का एक अंग बन गया, सेना में पादरी लेफ्टिनेन्ट के नाम से जाने, जाने वाले धर्म प्रचारक ईसाई धर्म की प्रशंसा एवं हिन्दू व मुस्लिम धर्मों की निन्दा करते थे एवं सेना, स्कूल, अस्पताल इत्यादि को धर्म की छावनियाँ बनाकर किये जाने वाले धार्मिक आक्रमणों ने देश में सांस्कृतिक प्रक्रिया को अनिवार्य बना दिया। ईसाई धर्म प्रचार हेतु आर्थिक सहायता, नियुक्ति, पदोन्नति का प्रलोभन दिया जाने लगा। जिससे धार्मिक विद्वेष को हवा दी गई। धार्मिक कटुता की यही चिंगारी धीरे-धीरे बढ़ती गई जिसने आगे जाकर दावानल का रूप धारण कर लिया जिसकी परिणति सन् 1857 ई० के विद्रोह के रूप में हमें देखने को मिलती है।

प्र.7. स्वतन्त्रता संग्राम के सांस्कृतिक कारणों को बताइए।
Describe the cultural activities of the freedom struggle.

उत्तर

सांस्कृतिक कारण
(Cultural Reasons)

अनेक भारतीय राजा, जमींदार और जागीरदार कला और साहित्य के उदार संरक्षक थे एवं धार्मिक उपदेशकों विद्वान, साधु-सन्तों और महात्माओं के पोषक भी थे किन्तु अंग्रेजों ने भारत में आते ही धीरे-धीरे इन शासकों आदि को हटाने के प्रयास प्रारम्भ किये एवं इनके अधिकारों को समाप्त कर दिया गया तभी से इनका धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक संरक्षण समाप्त हो गया जिसे

हिन्दुओं ने सदियों से चली आ रही परम्परा में अंग्रेजों का हस्तक्षेप माना, क्योंकि इनकी आय के साधन भी समाप्त होते जा रहे थे, उन्हें लगा कि ब्रिटिश सरकार उनके व्यक्तिगत मामलों में भी हस्तक्षेप कर रही है जो उन्हें गँवारा नहीं था क्योंकि वे सिर्फ संरक्षण पर ही निर्भर करते थे।

अन्ततः ब्रिटिश सरकार ने अपने साम्राज्य को बनाने के लिए जो प्रशासनिक व आर्थिक व्यवस्था के लिए जो नीतियाँ बना रखी थीं, उसके फलस्वरूप भारत का मूल पारम्परिक, सामाजिक एवं भारतीय संस्कृति का ही स्वरूप बदलने लगा जिसे भारतीयों ने अपनी संस्कृति पर हस्तक्षेप समझा। जनमानस के मन मस्तिष्क में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भावना भड़क गई और सन् 1857 ई० का विद्रोह हो ही गया।

प्र.8. स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्ति के आर्थिक कारणों का उल्लेख कीजिए।

Mention the economic reasons of the revolution in the freedom struggle.

उत्तर

आर्थिक कारण
(Economic Reasons)

अंग्रेजों की आर्थिक नीतियाँ भी भारतीय व्यापार और उद्योगों के विरुद्ध थीं। प्लासी के युद्ध के पश्चात् पूरे धन के प्रवाह से तो इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति आ गई किन्तु भारतीय उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। शिल्पकारों दस्तकारों, इत्यादि के बेरोजगार हो जाने तथा आजीविका के साधनों के समाप्त हो जाने के कारण अंग्रेज विरोधी असन्तोष उभरा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में भारत की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। ब्रिटिश साम्राज्य में उच्च पद पर आसीन अधिकारियों व कर्मचारियों ने अशिक्षित और गरीब जनता का अत्यधिक आर्थिक शोषण किया। अकाल पड़ने पर भी कृषकों से मालगुजारी वसूल की जाती, यदि वे देने में सक्षम नहीं होते तो उनकी जमीन जब्त या नीलाम कर दी जाती थी, अतः जमीन न होने पर कृषक भूखे मरने लगे।

भारतीय अंग्रेजों की दूषित कृषि नीतियों, बढ़ते लगान, घटती उपज, कृत्रिम अकाल आदि ने किसानों की व्यवस्थाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। 19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप वहाँ बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हुई इनमें कच्चे माल की आवश्यकता हेतु इसकी पूर्ति भारत से की गई किन्तु माल तैयार होने पर इसे ऊँची कीमतों में भारतीय बाजारों में बेचा जाता था। जिससे भारत की आर्थिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ा। यहाँ के कुटीर उद्योग बन्द होते चले गये। जिससे जनता में लगातार आक्रोश की भावना बढ़ती गई।

प्र.9. 1857 ई० में समाचार-पत्र पर एक तात्कालिक कारण का उल्लेख कीजिए।

Mention one immediate reason on the newspaper in 1857 A.D.

उत्तर समाचार-पत्र का प्रकाशन—1857 ई० के समाचार-पत्रों में भी इस विद्रोह के होने में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सन् 1857 ई० के विद्रोह में सबसे आगे "पयाम-ए-आजादी" का नाम लिया जाएगा जो जंग-ए-आजादी का एक तरह से मुख पत्र था। इसके सम्पादक अजीमुल्ला खाँ और प्रकाशक बहादुर शाह के पौत्र वेदार बख्त थे। इसके अलावा "देहली उर्दू अखबार" में भी अंग्रेजों के विरुद्ध और हिन्दुस्तानी रियासतों की घटनाओं पर विम्ब और प्रतीकों के माध्यम से खबरें छापी जाती थी। दिल्ली से प्रकाशित "सादिक-उल-अखबार" व 'इंदौर" के "मालवा अखबार" एवं "अखबार ग्वालियर" ग्वालियर से भी 1857 के विद्रोह एवं विद्रोहियों के बारे में समाचार मिलते हैं। कोलकाता के समाचार "सुधा वर्षण" में बहादुर शाह जफर को देश से बाहर निकालने का फरमान छापा था।

इसके अलावा और भी समाचार-पत्र सन् 1857 ई० में छपे जिनके सम्पादकों पर भी अंग्रेजों ने अत्याचार किये, किन्तु फिर भी जनता को जाग्रत करने में समाचार-पत्रों ने उल्लेखनीय भूमिका अदा की।

तात्कालिक कारण—चर्बी वाले कारतूस—सन् 1857 ई० के विद्रोह का तात्कालिक कारण सैनिकों द्वारा 1856 ई० में प्रयोग की जाने वाली नई इनफील्ड राइफल्स थी जिसमें सुअर व गाय की चर्बी लगे कारतूस का उपयोग किया जाता था जिसे भारतीयों द्वारा मुँह से छीलकर प्रयोग करना होता था एवं एक खबर के अनुसार दमदम के एक सिपाही ने इन सैनिकों को बताया कि कारतूसों की ग्रीज में गाय और सुअर की चर्बी वाली बात पूर्णतः सत्य है। जिससे भारतीय सैनिक भड़क उठे। कारतूसों को सैनिकों को देने का अभिप्राय उनका धर्म भ्रष्ट एवं ईसाई बनाकर अपने धर्म में शामिल करना था, इसके अलावा आटे में हड्डियों का चूरा व कुँओं के पानी को दूषित किया गया जिससे कोई भी व्यक्ति पवित्र न रहे।

इस प्रकार गाय एवं सुअर की चर्बी से बने कारतूसों ने उस समय भारतीयों के अन्दर व्याप्त असन्तोष को भड़काने में चिंगारी का कार्य किया। जब सैनिकों को दण्ड दिया गया, तो यही सन् 1857 ई० के विद्रोह का तात्कालिक कारण बना।

TOUCH 'n PASS

एक उच्च इतिहास लेखक लिखते हैं कि "जमीन के नीचे-ही-नीचे जो विस्फोटक मसाला अनेक कारणों से बहुत दिनों से तैयार हो रहा था उस पर चर्बी लगे हुए कारतूसों ने केवल दियासलाई का काम किया।"

प्र.10. स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्ति के सैन्य कारणों को लिखिए।
Write the military reasons for revolution in the freedom struggle.

उत्तर

सैन्य कारण
(Military Reasons)

अंग्रेजों के विरुद्ध देश में असन्तोष की भावना तो बिजली की तरह फैल रही थी किन्तु विप्लव के रूप में इसका विस्फोटित होना तब तक असम्भव था जब तक भारतीय सेना अंग्रेजों के साथ थी यह वफादार भी थी, भारतीय सेना ने निस्वार्थ भाव से अंग्रेजों का सहयोग किया किन्तु अनेकानेक कारणों से भारतीय सैनिक अंग्रेजों से असन्तुष्ट होते चले गये।

भारतीय सैनिकों को विभिन्न तरह से प्रताड़ित किया जाता था, अधिकारियों एवं उच्च पद पर आसीन अंग्रेजों का हिन्दुओं के साथ व्यवहार अच्छा नहीं था। अंग्रेज जातिभेद को महत्त्व देते थे। मद्रास व मुम्बई की सेना में छोटी जाति के सैनिक जबकि बंगाल की सेना में ब्राह्मणों एवं राजपूतों की अधिकता थी। अधिकांश सैनिकों के उच्चवर्गीय, अनपढ़, रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी होने पर नियन्त्रण करना कठिन था, अर्थात् जातिवाद का सफल विद्रोहों ने इन्हें अनुशासनहीन व अभिमानी बना दिया था। समुद्र पार भेजना, सेना में हिन्दू सैनिक तिलक नहीं लगा सकते थे, मुस्लिम सैनिकों को दाढ़ी-मूँछ, ललाट, साफ करने के लिए विवश करना आदि अत्याचार विद्रोह का कारण बने। देश में बढ़ते ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीय सैनिकों की संख्या बढ़ती गई। अफगानिस्तान क्रीमिया, पंजाब एवं बर्मा के युद्धों में अंग्रेज सैनिक भेजे जाने से, अंग्रेज सैनिकों की कमी होती गई अर्थात् देश में भारतीय सैनिक वितरण में असमानता से इन्हें नियन्त्रित करना कठिन हो गया। भारतीय सैनिकों को उच्च पद से वंचित करना। बन्दूकों के भार में भी अन्तर होना, विदेश जाना, हिन्दुओं में अपने धर्म के विरुद्ध समझा जाता था। 1824 ई० में बैरकपुर विद्रोह, बर्मा जाने से सम्बन्धित था, 1852 ई० में 30वीं बंगाली सेना ने भी बर्मा जाने से इन्कार कर दिया, इस तरह भारतीयों की धार्मिक मान्यताओं पर प्रहार करके उनके साथ हुए अत्याचारों ने असन्तोष का रौद्र रूप धारण कर लिया।

1856 ई० में सामान्य सेवा भरती अधिनियम (General Service Enlistment Act) के पास कर देने से बंगाली की सेना में अशान्ति की लहर उत्पन्न हो गई थी। इस अधिनियम के पारित होने से पहले ही अंग्रेजों को देश से निकलना अत्यन्त आवश्यक हो गया था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. स्वतन्त्रता संग्राम में 1857 की क्रान्ति की प्रस्तावना एवं विद्रोह की वैचारिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।
Describe the prelude and ideological background of the freedom struggle of 1857.

उत्तर

प्रस्तावना
(Preface)

सन् 1757 ई० के प्लासी के युद्ध के पश्चात् भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना हुई। इसके सौ वर्ष बाद सन् 1857 ई० तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुख्य उद्देश्य साम्राज्य विस्तार करना अर्थात् इसे आर्थिक शोषण यानि कि विजय, विलय और शोषण का इतिहास कह सकते हैं। डलहौजी का 'व्यपगत सिद्धान्त', राज्यों के हड़पने की नीति, सहायक सन्धियों, सैनिक वर्ग को समुद्र पार भेजना, चर्बी वाले कारतूस का उपयोग, मूँछ ललाट बनाना, अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों के धर्म पर आघात करना, भारत में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों जैसे—सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, शिशु हत्या आदि पर प्रतिबन्ध लगाकर हस्तक्षेप करना, अर्थव्यवस्था के मामले में दखल देना सबसे बड़ा अभिशाप था, आर्थिक शोषण करके ही अंग्रेज भारत का धन इंग्लैण्ड ले जाते थे। इन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजनैतिक शक्ति के प्रयोग से भारतीय हस्तशिल्प और व्यापार, सूती वस्त्रों का सर्वनाश कर दिया, नवीन कर व्यवस्था, लागू करके धन के दोहन का कार्य चलता रहा, अंग्रेजों ने धार्मिक मामले में भी हस्तक्षेप करके ईसाई धर्म को ही सर्वोपरि माना और इसी का प्रचार-प्रसार हेतु अधिक-से-अधिक लोगों को ईसाई बनाया। इन सभी कारणों से चारों ओर असन्तोष व्याप्त हो रहा था और सन् 1857 ई० के आते ही विद्रोह का शंखनाद हो गया। सन् 1857 ई० के विद्रोह की विचारधारा, कारण, कार्य योजना एवं स्वरूप की विस्तृत विवेचना इस इकाई में की जाएगी।

TOUCH 'n' PASS

1857 के विद्रोह की वैचारिक पृष्ठभूमि
(Conceptional Background of Revolt of the 1857)

सन् 1757 ई० में प्लासी के युद्ध के बाद भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना हुई थी। इसके सौ वर्षों बाद 1857 ई० तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना अधिकार धीरे-धीरे व्यापार के माध्यम से शुरू किया किन्तु भारतीयों के आपस के झगड़ों का लाभ उठाकर मुट्ठी भर अंग्रेजों ने एक खुशहाल और समृद्धिशाली देश को गुलामी से जकड़ लिया इन्होंने भारत पर विजय किसी वीरता या युद्ध कौशल के बलबूते पर नहीं की बल्कि कूटनीतिज्ञ और विश्वासघात से हासिल की थी। ये भारत का दुर्भाग्य ही कह सकते हैं कि यहाँ कि जनता ने आपस में लड़-झगड़कर बाहरी लोगों के हाथों अपने साम्राज्य की बागडोर सौंप दी।

अंग्रेजों की सम्पूर्ण कार्य व्यवस्था जो कि व्यापार से शुरू हुई थी धीरे-धीरे पूरे भारत वर्ष को हड़पने की कोशिश में बदलने लगी थी, अंग्रेजों का विचार प्रारम्भ में तो इस देश में व्यापार बढ़ाने का था किन्तु भारतीयों के मनमस्तिष्क को पढ़ने के बाद उनकी विचारधारा बदलने लगी और वे साम्राज्य विस्तार, धनलोलुपता के अधीन होकर भारतीयों पर अत्याचार करने लगे, भारतीय देशी रियासतों का स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त रूप से कार्य करने और अपनी-अपनी व्यवस्था से चलने एवं एकजुटता न हो पाने के कारण अंग्रेजों ने इस कमजोरी का भरपूर फायदा उठाकर आपस में एक-दूसरे के विरुद्ध लड़वाया, एक रियासत का दूसरी रियासत पर कब्जा किया, एक के बाद एक पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को अपने मकड़जाल में फँसा लिया तथा व्यापारिक दृष्टिकोण लेकर आये ये लोग इस देश तथा इसके आस-पास के देशों के सरपरस्त (मसीहा) बन गये।

क्रूरता और अन्याय की हर सीमा को पार कर करके इन्होंने ये साबित कर दिया कि ये मुसलमान शासक गजनवी, तैमूर लंग, नादिरशाह, चंगेज खाँ से किसी भी तरह कम नहीं हैं। अपने झूठे वादों, सन्धि-पत्रों के द्वारा इन्होंने रियासतों और राजा-महाराजाओं को पंगु बनाकर उन्हें उनके राज्य से बेदखल कर दिया।

इस प्रकार अंग्रेजों द्वारा अनुचित व्यवहार की अनेक मिसालें दी जा सकती हैं। सन् 1857 ई० की क्रान्ति की सही स्थिति समझने की कोशिश की जाए तो ये लगता है कि ये अचानक या कोई तात्कालिक कारण के वजह से होने वाली घटना नहीं है बल्कि इसके होने के पीछे उस समय की परिस्थिति एवं बहुत से कारण जिम्मेदार हैं जो अंग्रेजों द्वारा निर्मित किये गये थे। अंग्रेजों का भारतीय के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करना, उन्हें हेय दृष्टि से देखना, जिस देश में वे लाखों करोड़ों का राजस्व कमा रहे हैं, उसी देश के नागरिकों को धीरे-धीरे पतन की ओर ले जाना, दिल्ली सम्राट बहादुर शाह के साथ अनुचित व्यवहार, इनके विरुद्ध साजिशें, इनकी सम्पत्तियों पर कब्जा, डलहौजी द्वारा बहुत-सी रियासतों का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय, पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहेब की पेन्शन बन्द करा दी, जिसकी सुनवाई तक नहीं हुई, ये अन्याय असहनीय था, इसके बाद भी देश की जनता को मिशनरी से जोड़कर उन्हें ईसाई बनाना, ईसाईयत का प्रचार-प्रसार किया गया। देश के अधिकांश लोगों में ये सोच पनप रही थी कि यहाँ के निवासियों, उनके मालिक व शासकों को कोई अंग्रेजी अधिकार प्राप्त नहीं थे, उन्हें अपमान व घृणा ही मिल रही थी, जिससे उनकी संस्कृति व अपनी पहचान दोनों पर आघात पहुँचा, धर्म असुरक्षित था, अपने ही देश में हम गुलाम बने थे, कानून व न्यायपालिका में देश का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई भारतीय नैता मौजूद नहीं था। जिससे कि नागरिक हित प्रभावित हो रहे थे। उसी समय सैनिकों को चर्बीयुक्त कारतूसों के उपयोग के लिए विवश करना और सैनिकों में असन्तोष व्याप्त होना ही उस परिस्थिति में यही विद्रोह का तात्कालिक कारण बन गया। ये कुछ हद तक सही भी है किन्तु इसने पहले से एकत्रित बारूद के ढेर में चिंगारी लगाने का कार्य किया था।

भारत से अंग्रेजों को हटाने के प्रयास सालों से किये जा रहे थे, देश के अन्दर हर श्रेणी के लोगों में जबरदस्त विस्फोटक सामग्री जमा हो गई थी, इसे केवल सुयोग्य नेतृत्व की आवश्यकता थी, जो इस सामग्री से लाभ उठाकर सारे देश को स्वाधीनता के एक महान संग्राम के लिए तैयार कर सके और सौ साल से जमे हुए विदेशी शासन को उखाड़ फेंक सके एवं कोई अकस्मात् चिंगारी इस मसले पर पड़कर देश में भयंकर आग लगा दे नतीजा फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो और ऐसा हुआ एवं चर्बी वाले कारतूस इसका माध्यम बने।

सन् 1857 ई० का विद्रोह वास्तव में भारत में हिन्दू और मुसलमान नरेशों और भारतीय जनता दोनों की ओर से देश के विदेशियों को, राजनैतिक अधीनता से मुक्त कराने की एक जबरदस्त और व्यापक प्रयास था।

इस प्रकार इन कारणों का आंकलन करने पर पाया गया कि सन् 1857 ई० की क्रान्ति का अभ्युद्ध होना वाजिब था, ये एक ऐसा युद्ध था जिसमें लोग अपने धर्म, अपनी कौम पर हुए अत्याचारों का बदला लेने व अपनी दबी हुई भावनाओं को जाग्रत करने के लिए उठ खड़े हुए। इस राष्ट्रीय प्रयत्न की तह में एक उतनी ही गहरी योजना और उनका व्यापक, गुप्त संगठन छुपा हुआ था जिसके लिए उन्होंने एकजुट होकर प्रयत्न किये। इस विशाल योजना का सूत्रपात दोनों में से किसी एक स्थान पर हुआ। कानपुर के

निकट विठूर में या ब्रिटेन की राजधानी लंदन में। इस तरह विद्रोह में अनेक लोगों द्वारा अलग-अलग रूप से प्रयास चालू कर दिये गये थे जिससे कि देश में ही नहीं विदेशी शक्तियाँ जो अंग्रेजों के विरुद्ध थी उनको भी इस विद्रोह में सहयोगी बनने का अवसर मिला।

अन्ततः बैरकपुर छावनी में इस क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ जब वहाँ के भारतीय सैनिकों को चर्बीयुक्त कारतूस का जबरदस्ती प्रयोग करने व उनके धर्म नष्ट करने की कोशिश की गई, मंगल पांडे नामक सैनिक ने इसका विरोध करते हुए विद्रोह कर दिया और 1857 की क्रान्ति का शंखनाद हुआ।

प्र.2. 1857 के विद्रोह के कारण को समझाते हुए इसके राजनैतिक कारणों का विवरण दीजिए।
Explain the causes of the revolt of 1857 and give details of its political reasons.

उत्तर

1857 के विद्रोह के कारण
(Reasons for Revolt of 1857)

स्वधर्म एवं स्वराज्य, इन दो महान लक्ष्यों को उद्देश्य बनाकर सन् 1857 ई० में प्रारम्भ हुए रणयुद्ध का निश्चय डलहौजी के कार्यकाल में लिया गया था। किन्तु भारतीयों की जन्मजात स्वतन्त्रता को छीनकर उसके बदले गुलामी और स्वधर्म के स्थान पर ईसाइयत लादने का पतित विचार जब पहले-पहल अंग्रेजों व्यापारियों के मन में आया तभी से हिन्दुओं के मन मस्तिष्क में क्रान्ति का संचार प्रारम्भ हो गया। सन् 1857 ई० के विद्रोह का कारण अंग्रेजों के "अच्छे शासन" या "बुरे शासन" में न होकर केवल और केवल उनके "शासन" करने में था।

भारत में अंग्रेजों ने राज्य विस्तार का कार्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से किया था जिसका उद्देश्य साम्राज्य बढ़ाना और व्यापारिक शोषण था। अंग्रेजों की धन संचय की प्रकृति की कोइ सीमा नहीं थी एवं इस समस्त शोषण नीति के संचित प्रभाव से भारत में सभी वर्गों, रियासतों के राजाओं, सैनिकों, जमींदारों, कृषकों, व्यापारियों, ब्राह्मणों तथा मौलवियों केवल नगरों में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग जो अपनी जीविका के लिए कम्पनी पर निर्भर थे, उनको छोड़कर शेष सभी पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा था।

1857 ई० के विद्रोह के कारण अधिक गूढ़ थे, भारतीयों का रोष समय-समय पर भारत के विभिन्न भागों में सैनिक विद्रोहों अथवा परिद्रोहों के रूप में प्रकट होता रहा; जैसे कि 1806 में वैल्लोर, 1824 में बैरकपुर, फरवरी 1842 ई० में फिरोजपुर, 34वीं रेजीमेन्ट का विद्रोह, 1849 ई० में सातवीं बंगाल कैवलरी और 64वीं रेजीमेन्ट व 22वीं एन०आई० का विद्रोह और 1852 ई० में 38वीं एन०आई० का विद्रोह इत्यादि इसी तरह 1816 में बरेली में उपद्रव हुए, 1831-33 का कोल विद्रोह, 1848 में कांगड़ा, जसवार और दातारपुर के राजाओं का विद्रोह, 1855-56 ई० में संथालों का विद्रोह ये सभी विद्रोह अनेक राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक कारणों से हुए थे। 1857 के विद्रोह की नींव वास्तव में 1757 ई० के प्लासी के युद्ध में ही रखी जा चुकी थी। मई व जून 1757 ई० के महीने में दिल्ली के हिन्दी अखबारों में ये भविष्यवाणी छापी गई थी कि ठीक प्लासी के युद्ध वाले दिन अर्थात् 23 जून, 1857 ई० को भारत में अंग्रेजी शासन का अन्त कर दिया जाएगा। इस प्रकार की भविष्यवाणी का जिन व्यक्तियों ने विद्रोह में भाग लिया था उन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा।

1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के कारणों को यदि बरीकी से खोजा जाए तो अधिकतर इतिहासकारों का मानना है कि लार्ड डलहौजी की हड़प-नीति सबसे ज्यादा उत्तरदायी रही है किन्तु लार्ड क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की कूटनीतियाँ भी कम जवाबदेही नहीं हैं।

सैनिक असन्तोष तथा चर्बी वाले कारतूसों को ही 1857 के महान विद्रोह का सबसे मुख्य तथा तात्कालिक कारण बताया किन्तु यही एकमात्र कारण नहीं है क्योंकि प्लासी युद्ध के उपरान्त जब 29 मार्च, 1857 को मंगल पांडे द्वारा अंग्रेज एजुटेण्ट की हत्या की गई तब से ही अंग्रेजी प्रशासन के 100 वर्ष के इतिहास में ही इस विद्रोह के कारण छिपे हुए थे, चर्बी वाले कारतूस व सैनिक विद्रोह तो केवल एक चिंगारी मात्र थी।

अन्ततः भारत में अंग्रेजों का राज्य विस्तार भारतवासियों के लिए अनेकानेक संकटों, आपदाओं और समस्याओं का जनक बन गया। अंग्रेजों की निजी नीति ने भारत में प्रचलित सभी पुरानी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक संस्थाओं का विनाश कर दिया और लोगों के जीवन निर्वाह के सारे साधन टूटने एवं बिखरने लगे, असन्तोष की व्यापकता, शोषण नीति के कारण ही भारत के विभिन्न राजाओं, महाराजाओं और नवाबों, सैनिकों के हृदय में कम्पनी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना ने और अधिक क्रूर रूप धारण कर लिया था एवं कुछ समय पश्चात् समस्त वर्गों ने एकजुट होकर विद्रोह कर दिया।

TOUCH 'n' PASS

सुप्रसिद्ध इतिहासकार सुंदरलाल ने अंग्रेजों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार की अनेक मिसालें प्रस्तुत की हैं किन्तु कुछ महत्त्वपूर्ण कारणों को जानने के पश्चात् हम 1857 ई० के विद्रोह को अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस विद्रोह के कारण अधोलिखित हैं।

राजनैतिक कारण (Political Reasons)

1. **लार्ड डलहौजी की हड़प नीति**—भारतीय राजाओं, महाराजाओं को अंग्रेजों की साम्राज्य विस्तार की नीति से खतरा स्पष्ट दिखाई देने लगा था क्योंकि अंग्रेजों द्वारा किये गये कुछ घृणित कार्यों से भारतीयों का भय और अधिक बढ़ गया था, उन्हें लगा अंग्रेज उनके राज्यों को धीरे-धीरे समाप्त कर देंगे, भारतीय रियासतों को अपने अधीन करने की अभिलाषा ने डलहौजी के काल में आकर विकराल रूप धारण कर लिया था। डलहौजी ने लगभग आठ भारतीय देशी रियासतों को जैसे—सतारा, नागपुर, झांसी, संबलपुर, जेतपुर, तंजौर और कर्नाटक को आदि रियासतों के नैतिक व राजनैतिक आचार की सभी सीमाओं का उल्लंघन कर "व्यपगत के सिद्धान्त" (Doctrine of lapes) के तहत अंग्रेजी साम्राज्य में विलय तथा अवध को कुशासन के आरोप में अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल कर लिया।
   लार्ड डलहौजी ने देशी रियासतों के नि:सन्तान राजाओं को भी उत्तराधिकार के लिए दत्तक पुत्र लेने की आज्ञा नहीं दी। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय जनता, शासक वर्ण अंग्रेजों के दुश्मन बन गये अंग्रेजों के प्रति उनके मन में आशंका व अविश्वास उत्पन्न होता चला गया जिसकी परिणति हमें 1857 ई० के विद्रोह में दिखाई देती है जहाँ अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों ने खुला विद्रोह कर दिया था। अत: राजाओं का अपनी रियासत के प्रति भय निराधार नहीं थे।
2. **दिल्ली सम्राट के साथ दुर्व्यवहार**—अंग्रेजों द्वारा किये गये अत्याचारों से दिल्ली का सम्राट भी अछूता नहीं रहा, इन्होंने भारतीय मुसलमानों की भावनाओं को भी ठेस पहुँचायी। जब मुगल सम्राट शाह आलम (1759 से 1806) तक राज्य कर रहे थे तो अंग्रेज भी उनका सम्मान करते थे, दिल्ली के बादशाह का "फिदवी-ए-खास" (खास नौकर) अंग्रेज गवर्नर जनरल स्वयं को मानते थे, किन्तु साम्राज्य विस्तार की नीति ने अंग्रेजों को दिल्ली सम्राट की अवहेलना करने पर मजबूर कर दिया। यहाँ तक कि अंग्रेज दिल्ली सम्राट के दरबार में हो रही कार्यवाही अर्थात् उत्तराधिकारियों के नियुक्ति में भी हस्तक्षेप व कुचक्र करने लगे दिल्ली सम्राट सहित भारतीय मुसलमान भी अंग्रेजों के इस दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट हो गये और इनके विरुद्ध भारतीयों के मन में असन्तोष बढ़ने लगा।
   अंग्रेजी सरकार ने इसके अलावा कुछ और ऐसी शर्तों को भारतीयों के सामने रखा जिससे की उनके भीतर क्रोध की ज्वाला अंदर-ही-अंदर धधक रही थी, उन्होंने मुगल बादशाह को उत्तराधिकारी "बादशाह" के स्थान में "शहजादा" कहा जाएगा, उसे दिल्ली का लाल किला खाली करना होगा एवं मासिक खर्च हेतु 1 लाख की जगह 15 हजार रुपये मात्र दिये जाएँगे। इस तरह के अनुचित व अप्रिय कार्यों से दिल्ली में क्रोध की आग भड़क उठी।
3. **अवध के कुशासन के आरोप**—अवध में नवाब वाजिद अली शाह का शासन था, इसकी राजधानी लखनऊ थी। ये अंग्रेजों का हमेशा वफादार होने के बावजूद भी डलहौजी ने इसे कुशासन का आरोप थोपकर 1857 में अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया।
   सुरेन्द्रनाथ सेन इतिहासकार इस विषय पर लिखते हैं कि "भारतीयों को भी ये देखकर चिन्ता हो गई कि दोस्त और दुश्मन-दोनों का ही एक जैसा हाल हुआ। 1856 में जब अवध पर आधिपत्य होने के पश्चात् अंग्रेजों के लिए बचा थोड़ा विश्वास भी जाता रहा।"
   इस प्रकार अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलते ही मुस्लिम कुलीन वर्ग, सैनिक व सिपाही, कृषक सभी अंग्रेजों के विरुद्ध हो गये एवं अवध भी असन्तोष का क्षेत्र बन गया था।
4. **नाना साहब के साथ अत्याचार**—अंग्रेजों द्वारा किये गये घृणित कार्यों में एक कार्य पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ अत्याचार था अर्थात् बाजीराव की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी नाना धुन्धपन्त को ब्रिटिश सरकार द्वारा पेन्शन देना बन्द कर दिया एवं उन्हें विठूर में स्थित जागीर छीनने का नोटिस भी दिया गया। इस कार्य के खिलाफ नाना साहेब ने पूर्व में की गई सन्धियों की बात सामने रखते हुए अपने प्रतिनिधि अजीमुल्ला खाँ को इंग्लैण्ड भेजकर ब्रिटिश शासन से अपील की किन्तु इससे उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ।
   इतिहासकार सुंदरलाल ने लिखा है कि "सर जान के० चार्ल्स बाल, ट्रेवेलिन और मार्टिन चारों प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार ये मानते हैं कि न्याय नाना के पक्ष में नहीं हुआ था।" जिसके परिणामस्वरूप नाना साहेब के हृदय में अंग्रेजों के प्रति नफरत बढ़ती चली गई और 1857 के आते ही वे भी विद्रोही गतिविधियों में शामिल हो गये।

TOUCH 'n' PASS

5. **क्रीमिया तथा अफगान के साथ युद्ध**—विदेशी देशों से हुए युद्ध जैसे क्रीमिया युद्ध, अफगानिस्तान युद्ध, चीन के विरुद्ध युद्ध आदि में अंग्रेजों की पूर्णता क्षति होती गई। जिससे इनकी अजेयता समाप्त हो गई एवं भारतीयों में प्रेरणादायी विचार ने प्रबलता पकड़ी कि अंग्रेज सैनिक शक्ति में अधिक मजबूत नहीं है इनके खिलाफ आसानी से विद्रोह किया जा सकता है। इस प्रकार अंग्रेजों की दोषपूर्ण नीतियाँ—कृषकों, श्रमिकों, दस्तकारों, राजाओं के अधिकारों इत्यादि के असन्तोष का कारण बनी।

इस प्रकार भारतीय राज्यों के ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाये जाने से भारतीय अभिजात्य वर्ग शक्ति व पदवी से तो वंचित हो ही गया साथ ही भारतीयों को हमेशा हेय दृष्टि से देखना, अविश्वास करना एवं ईमानदारी के अयोग्य समझा जाने लगा इसी तरह के कार्यों ने अंग्रेजों के प्रति भारतीय अधिकारी व कर्मचारी वर्ग में असन्तोष को भड़काया जिसका परिणाम सन् 1857 ई० का विद्रोह था।

प्र.3. 1857 के विद्रोह के प्रारम्भ एवं प्रसार का वर्णन कीजिए।

Describe the beginning and prevailing of the revolt of 1857.

उत्तर सन् 1857 ई० के विद्रोह में घटित घटनाओं का होना कोई आश्चर्यजनक नहीं था बल्कि कई वर्षों से इसकी पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी। ब्रिटिश सरकार जो भारत में सिर्फ व्यापार करने के उद्देश्य से आई थी धीरे-धीरे सारे भारत को अपना समझकर उसकी सत्ता को हथियाना चाहती थी एवं मालिक बनकर इन अंग्रेजों ने भारत की निर्दोष जनता पर विभिन्न तरह के अत्याचार एवं अनाचार किये जिससे सामान्यजन इस समय तक आते-आते बिल्कुल हताश एवं निराश हो चुके थे। उसे किसी "एक मजबूत संगठन" की आवश्यकता थी। इस कार्य को सुचारु रूप से दिशा देने हेतु सर्वप्रथम निम्न वर्ग ने पहल की, इनमें साधुओं, फकीरों, मौलवियों आदि ने अंग्रेजों के विरुद्ध योजनाएँ बनाकर विद्रोह और संघर्ष के लिए गूढ़ प्रयास किये। इस सन्दर्भ में प्रारम्भ में पत्रों का आदान-प्रदान किया, विद्रोह संघर्ष के प्रतीक स्वरूप लाल कमल के फूल और रोटियों को सैनिक, छावनियों, नगरों, कस्बों और गाँवों में सैनिकों एवं स्थानीय लोगों में जागृति हेतु घुमाया। पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब उनके वकील अजीमुल्ला खाँ, सतारा के मराठा शासक के वकील रंगोजी बापू, बिहार के जमींदार कुँअर सिंह, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कानपुर के तांत्या टोपे, नाना साहब, दिल्ली के सम्राट बहादुर शाह, उनकी बेगम जीनत महल ने, मेरठ में सैनिकों द्वारा बनारस व इलाहाबाद में लियाकत अली खाँ, अवध या लखनऊ में बेगम हजरत महल द्वारा, फैजाबाद में मौलवी अहमद उल्ला शाह, रोहेलखण्ड खान बहादुर खान आदि ने गुप्त रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध योजनाएँ बनाईं।

कार्य को सुचारु रूप से बढ़ाने हेतु देशी राजाओं को तत्कालीन स्थिति से पत्रों द्वारा अवगत कराया एवं उन्हें अपने देश के प्रति जो अंग्रेज हड़पना चाहते थे, उसे स्वतन्त्र कराने के लिए प्रेरित किया गया, जनता, सैनिकों तथा शासकों को भी अंग्रेजों के अनाचारों, क्रूर कृत्यों से किसी-न-किसी माध्यम से अवगत कराया गया।

सन् 1857 ई० के विद्रोह की घटनाएँ एकदम से नहीं हुईं इसकी ज्वाला वर्षों से जनता के मन में सुलग रही थी। प्रकृति का एक गूढ़ सिद्धान्त है सृजन में ही विसर्जन के बीज छिपे होते हैं। सन् 1757 में प्लासी विजय के उपरान्त अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य का पौधा पहले ही लगा दिया था तब से ही भारतीयों के मन-मस्तिष्क में उथल-पुथल प्रारम्भ हो गई जिसकी परिणति हमें 1857 के विद्रोह में देखने को मिलती है।

विद्रोह का प्रारम्भ एवं प्रसार (Start and Extension of Revolt)

सन् 1857 ई० के समय सैनिक छावनियों में सैनिकों द्वारा उनके प्रिय ब्राउन बेस बन्दूकों के स्थान पर नई एनफील्ड रायफलों का प्रयोग किया गया जिसे चलाने हेतु चर्बी लगे कारतूसों को मुँह से छीलना पड़ता था। इस तथ्य की पुष्टि तब हुई जब जनवरी सन् 1857 ई० में एक दिन दमदम छावनी का एक सिपाही लोटे में पानी लेकर आ रहा था। खलासी द्वारा उस ब्राह्मण सैनिक से पानी माँगने पर उसने इन्कार किया तब उस खलासी सिपाही ने कहा तुम्हारा जाति दंभ जल्द भंग हो जाएगा क्योंकि थोड़े दिन में अंग्रेज जिन कारतूसों का उपयोग करने के लिए तुम्हें देंगे उसमें गाय और सुअर की चर्बी मिली होगी जिसे दाँतों से काटना होगा तब सैनिक द्वारा ये बात सभी सैनिकों को बताई गई, चर्बी वाले कारतूस की घटना एकदम कारखाने से बैरकपुर एवं वहाँ से अन्य छावनियों में फैल गई। चर्बी वाले कारतूस की घटना सत्य ही प्रतीत होती है। ग्रीस लगे कारतूस में गाय और सुअर की चर्बी लगी थी, जिसका उपयोग करना हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के लिए धर्म विरुद्ध कार्य था, चूँकि हिन्दुओं के लिए गौ माँस निषिद्ध था, तो मुसलमानों के लिए सुअर का माँस और अधिकारी वर्ग अन्त तक इस बात का खण्डन नहीं कर सके कि ग्रीज में उक्त चर्बियों का दूषित सम्मिश्रण नहीं है।

TOUCH 'n' PASS

इस प्रकार सन् 1857 ई० के विद्रोह का प्रारम्भ होना राष्ट्रीय प्रयत्न की तह में उतनी ही गहरी योजना तथा उतना ही व्यापक एवं गुप्त संगठन था, इस विशाल योजना का सूत्रपात कानपुर के निकट विठूर में ही हुआ होगा क्योंकि सन् 1856 ई० से ही नाना साहब ने सारे भारत में चारों ओर अपने गुप्त दूत और प्रचारक भेजने शुरू कर दिये थे।

इतिहासकार सर जॉन लिखते हैं "महीनों से ही नहीं बल्कि वर्षों से ये लोग सारे देश के ऊपर अपनी साजिशों का जाल फैला ही रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे देशी दरबार तक विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे, इन पत्रों में होशियारी के साथ और शायद रहस्यपूर्ण शब्दों में भिन्न-भिन्न धर्मों के नरेशों और सरकारों को सलाह दी गई थी और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।"

इस तरह नाना साहब एवं उनके वकील (जिनको इन्होंने इंग्लैंड भेजा था) अजीमुल्ला खाँ ने अपना वेश बदलकर कई प्रदेशों और आस-पास के अंग्रेज स्थित इलाकों का बहुत ही बारीकी से दौरा किया एवं तत्कालीन परिस्थिति का आकलन करके विद्रोह की रूपरेखा एवं उसके प्रसार की योजना तैयार की थी।

इनकी इस विशाल राष्ट्रीय योजना को संचालित करने के लिए दिल्ली स्थित लाल किले से अच्छा स्थान शायद कोई उपयुक्त नहीं था। दिल्ली में बहादुर शाह जफर को केन्द्रीय अधिनायक तथा नाना साहब को उनका मन्त्री बनाकर क्रान्ति की तारीख 31 मई सन् 1857 ई० तय की गई। क्रान्ति के प्रतीक के रूप में कमल का फूल एवं चपाती रखे गये जिसका अर्थ सदैव क्रान्ति के लिए तैयार रहना था। 31 मई सन् 1857 ई० को ठीक 12 बजे रात्रि से सशस्त्र क्रान्ति प्रारम्भ करने की योजना बना ली गई थी, 31 मई को रविवार का दिन था और अंग्रेज सामूहिक रूप से गिरजाघर जाते थे उन पर उस समय आक्रमण करना आसान था एवं दिल्ली सम्राट के झण्डे को राष्ट्रीय मानकर स्वीकार किया, ये हरे सुनहरे रंग का था।

विद्रोह की तारीख 31 मई, सन् 1857 ई० नियत की गई थी, किन्तु 19वीं पलटन ने एक नौजवान सैनिक मंगल पांडे ने अंग्रेज विरोधी भावना से प्रेरित होकर 29 मार्च सन् 1857 ई० को बैरकपुर में अपने एजुटेण्ट पर गोली दागी एवं उसकी हत्या कर दी गई, मंगल पांडे को पकड़ लिया गया एवं 8 अप्रैल सन् 1857 ई० को सैनिक अदालत के फैसले में इन्हें फाँसी दे दी गई।

इस प्रकार मंगल पांडे ने जो बलिदान दिया उसे भूलना आसान नहीं था। इनकी फाँसी की बात आग की तरह छावनी दर छावनी फैलती चली गई एवं इनके सैनिकों में विद्रोह की ज्वाला धधक उठी। वे बदला लेने के लिए तत्पर हो गये अब उन्हें तारीख भी याद नहीं रही एवं 9 मई की रात सैनिकों ने दिल्ली के नेताओं को सूचित कर दिया कि हम लोग कल तक (10 मई) दिल्ली पहुँच जाएँगे। आप लोग विद्रोह के लिए तैयार रहें। अपने सैनिक साथियों का सार्वजनिक अपमान, तिरस्कार एवं कठोर दण्ड से अन्य भारतीय सैनिक भी क्रोधित हो गये, 10 मई सन् 1857 ई० को मेरठ के सैनिकों ने विद्रोह का शंखनाद कर दिया क्योंकि यहाँ पर 85 सैनिकों ने चर्बी लगे कारतूस लेने से इन्कार कर दिया था, उन्हें 10 वर्ष का कारावास हो गया था, विद्रोह के पश्चात् अंग्रेजी अफसरों को मारा गया, कैदियों को स्वतन्त्र कराया गया और वे सामूहिक रूप से दिल्ली की ओर चल पड़े।

विद्रोह का आरम्भ 10 मई सन् 1857 ई० को दिल्ली 36 मील दूर मेरठ में हुआ, यद्यपि मेरठ में 2200 सैनिक थे किन्तु इन विद्रोहियों का पीछा नहीं किया गया क्योंकि इसमें वे सैनिक शामिल थे जिन्होंने बाजार में लूटमार की तथा अंग्रेज अफसरों के बंगलों को जलाकर तहस-नहस कर दिया। पुलिस ने भी अंग्रेजों का साथ नहीं दिया। 10 मई की रात ही सैनिक मेरठ से दिल्ली की ओर रवाना हो गये। विद्रोह इतनी तेजी बढ़ता गया और पूरे उत्तर भारत में फैल गया और जल्द ही उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक का विशाल भू-भाग इस विद्रोह से नहीं बच पाया।

इस सन्दर्भ में सावरकर जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए हमें लिखा कि "दो हजार क्रान्ति दूत सैनिक, तारों को काटते हुए अत्याचारी अंग्रेजों के खून से धरती की प्यास बुझाते हुए...."चलो दिल्ली, दिल्ली चलो" के जयघोष करते हुए हिन्दुस्तान की राजधानी की ओर द्रुतगति से बढ़ते जा रहे थे।

प्र.4. स्वतन्त्रता संग्राम में 1857 के विद्रोह भारत में कहाँ हुए? विवेचना कीजिए।
Where did the revolts of 1857 take place in India during the freedom struggle?

उत्तर

विद्रोह के क्षेत्र
(Areas of Revolt)

1. **दिल्ली**—मेरठ से निकले लगभग 2 हजार सशस्त्र हिन्दुस्तानी 11 मई सन् 1857 ई० को दिल्ली पहुँच गये। दिल्ली में इसकी सूचना मिलते ही 52वीं पलटन के कर्नल रिप्ले सक्रिय हो गये एवं इन विद्रोहियों का सामना करने के लिए इन्होंने अपनी पलटन को तैयार कर लिया, किन्तु कुछ ही देर में ये दिल्ली व मेरठ के सैनिकों की गोली का शिकार हो गये एवं

मेरठ के सैनिकों ने नारे लगाये एवं कहा कि "फिरंगियों के राज्य का नाश कर दो" बादशाह की जय हो, "दीन-दीन" "हर-हर महादेव" एवं दिल्ली के सैनिकों ने कहा "मारो फिरंगी को" की जयघोष की। तत्पश्चात् हिन्दुस्तानी सैनिकों ने दिल्ली के किले पर अपना अधिकार कर लिया एवं सेना के भारतीय अधिकारियों ने सम्राट बहादुर शाह को सलाम करके उन्हें स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व स्वीकार करने का आग्रह किया, उन्हें अपने पक्ष में करके स्वतन्त्र भारत का पुन: शासक घोषित किया एवं उनके सम्मान में 21 तोपों की सलामी दी तब दिल्ली के लाल किले पर बहादुर शाह जफर ने अपना स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया एवं एक घोषणा पत्र जारी किया।

दिल्ली के लाल किले के भीतर राजनीतिक गतिविधियाँ चल रही थीं। बाहर नगरों में भयंकर मार-काट मचा हुआ था, अंग्रेजों के निवास स्थल, कार्यालय, बैंक, शास्त्रागार, सब आग के हवाले कर दिये। सभी अंग्रेज स्त्री-पुरुष तथा बच्चों को मौत के घाट उतारा जा रहा था। पूरे देश में विद्रोह की लहर तेजी से फैल चुकी थी।

सावरकर ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि "11 मई को दिल्ली में अंग्रेजों का जो नरमेद्य आरम्भ हुआ था। उसकी पूर्णाहूति 16 मई से पड़ी। इस पाँच दिन की अवधि में ही भारत में एक शताब्दी से बद्धमूल हुए दासता के विषवृक्ष को समूल उखाड़कर फेंक दिया था।"

इस प्रकार मेरठ और दिल्ली के आस-पास ग्रामीण क्षेत्रों में विरोध होने लगे क्योंकि रिहा किये गये कैदियों, सिपाहियों व यात्रियों के माध्यम से मेरठ की खबरें बड़ी तीव्र गति से फैल गईं। दिल्ली के निकट हिंडन व सिकंदराबाद एवं दिल्ली के दक्षिण पश्चिम में स्थित गुड़गाँव, पलवल, शोभना, लूह, रेवाड़ी जैसे नगरों में भी विद्रोह एवं लूटमार की घटनाएँ लगातार घटित हो रही थी।

इस सन्दर्भ में एक इतिहासकार एरिक स्टोक्सन लिखते हैं "ये विद्रोही न तो आर्थिक शिकायतों से रहित थे और न ही राजनीतिक शिकायतों से अनभिज्ञ थे।"

दिल्ली मेरठ में घटित घटनाओं का समाचार सारे देश में तीव्र गति से फैल गया था एवं अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की भावना भड़क उठी, दिल्ली आस-पास के अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा एवं उत्तर प्रान्त (बुलन्दशहर, बढ़ौत, बरेली, अवध, कानपुर, झांसी, बिहार, बनारस, मध्यप्रदेश) अन्य क्षेत्र भी इस विद्रोह से अछूते न रह सके।

2. **अवध व लखनऊ**—बेगम हजरत महल, अवध के अपदस्थ नवाब वाजिद अली शाह की पत्नी थी। इन्होंने सन् 1857 ई० के विद्रोह में लखनऊ में झण्डा फहराया। चूँकि अंग्रेज सन् 1857 ई० की जन क्रान्ति से पूर्व ही अवध को हड़पना चाहते थे। अवध की राजधानी लखनऊ में असन्तोष व्याप्त सैनिकों ने 30 मई की रात में 9 बजे विद्रोह कर दिया, विद्रोहियों ने अवध में भी अंग्रेजों के बंगलों पर प्रहार किया, लखनऊ के विद्रोहियों ने अंग्रेजों पर हमला हेतु चिनहट नामक स्थान पर चढ़ाई की। ब्रिटिश रेजीडेण्ट हेनरी लारेन्स ने जब विप्लवकारियों पर हमला किया परन्तु इनकी सेना भी विद्रोही सिपाहियों से मिल गई, युद्ध उपरान्त हेनरी लारेन्स की मृत्यु हो गई एवं अंग्रेज हार गये। इस प्रकार सन् 1857 ई० सबसे भयंकर युद्ध अवध की भूमि पर लड़े गये। लखनऊ में हुए विद्रोह के पश्चात् शीघ्र ही सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, सुल्तानपुर आदि में भी विद्रोह का बिगुल बज गया।

   इस प्रकार 31 मई से 10 जून के बीच लगभग अधिकांश अवध राज्य अंग्रेजों के चंगुल से निकल गया था।

3. **कानपुर**—4 जून सन् 1857 ई० को कानपुर में विद्रोह का नेतृत्व नाना साहब ने किया एवं कानपुर अंग्रेजों के हाथों से निकल गया। इस समय अंग्रेजों के सेनापति सर ह्यू व्हीलर यहाँ पदस्थ थे। नाना साहब की सहायता हेतु अजीमुल्ला खाँ, तात्या टोपे थे। नाना साहब ने इस युद्ध संचालन हेतु एक कूटनीति निर्धारित की थी और ऊपरी तौर पर वह अंग्रेजों के मित्र बने रहे। लगभग एक वर्ष की तैयारी के उपरान्त 4 जून सन् 1857 ई० की आधी रात को अचानक कानपुर छावनी में 3 फायर हुए। विद्रोह का शंखनाद हो गया था, सिपाहियों ने पूर्व नियोजित योजना के तहत अंग्रेजों की इमारतों में आग लगा दी, झण्डों को गिराया, अपने झण्डे फहराये एवं 5 जून तक अंग्रेजी खजाना एवं मैंगजीन दोनों ही विद्रोहियों के हाथों में आ गई। किन्तु नाना के सिपाही भी विद्रोहियों से आ मिले, भारतीय सिपाहियों एवं नगर निवासियों ने नाना साहब को नेता चुना, इन्होंने अंग्रेजी किले का मोहासरा देने के लिए जनरल व्हीलर को चेतावनी दी किन्तु जवाब न मिलने पर तोपों से आक्रमण किया। आक्रमण के दौरान कुछ अंग्रेज मारे गये, कुछ घायल हुए। ये गोलीबारी 21 दिन तक चलती रही। अन्त में व्हीलर ने समझौता किया।

TOUCH'n PASS

कानपुर के विद्रोह में सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड इतिहास से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। इसके किले में कैद अंग्रेजों, स्त्रियों एवं बच्चों को जो बच गये उन्हें नाना साहब ने सुरक्षित इलाहाबाद पहुँचाने का वायदा किया किन्तु किले से डेढ़ किलोमीटर दूर सतीचौरा घाट पर जब इन सिपाहियों को कश्तियों में बैठाया गया तो इलाहाबाद व उसके आस-पास के इलाके से हजारों मनुष्य, बाल-बच्चे, स्त्रियाँ जो कि कर्नल नील के अत्याचारों से क्रोध की अग्नि में जल रहे थे, वहाँ एकत्रित हुए। 27 जून सुबह 10 बजे सतीचौरा घाट पर एकत्रित भीड़ में से एक व्यक्ति ने कर्नल ईवर्ट पर हमला कर दिया, बस फिर थोड़ी ही देर में मारकाट प्रारम्भ हो गई, बहुत से अंग्रेजों की मृत्यु हो गई, किन्तु नाना साहब को इसका समाचार प्राप्त होते ही उन्होंने कहा स्त्रियों व बच्चों को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचाया जाए, जिससे बच्चे व स्त्रियों की जान बच गई, चूँकि सतीचौरा घाट का हत्याकाण्ड सही नहीं था किन्तु यह जनरल नील व उसके सिपाहियों के अत्याचार का ही परिणाम था।

4. **झांसी**—लार्ड डलहौजी ने "व्यपगत के सिद्धान्त" द्वारा गंगाधर राव के दत्तक पुत्र दामोदर राव को नाजायज कहकर झाँसी की सम्पूर्ण सम्पत्ति व राज्य पर अधिकार कर लिया था। लक्ष्मीबाई को पेंशन दी जाती थी, अपने खोये हुए राज्य की प्राप्ति हेतु 5 जून सन् 1857 ई० के अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। चर्बी लगा कारतूस झाँसी में भी चर्चा का विषय था जैसे ही मई में मेरठ व दिल्ली की खबरें आईं, यहाँ पदस्थ कैप्टन डनलप सक्रिय हो गये। विद्रोह के उपरान्त सेना के एक पक्ष ने सारे खजाने को लूट लिया। स्कीन व गोर्डन आदि अंग्रेज किले में बन्द हो गये, इन्होंने अपनी सुरक्षा के हर सम्भव प्रयास किये किन्तु सिपाहियों की शर्तानुसार किला खाली नहीं किया गया। झाँसी की जोखन बाग का वध वाली घटना अत्यन्त दर्दनाक थी। इसमें कई पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों के पूरे दल को तलवार से उड़ा दिया गया, लाशें जोखनबाग में, जहाँ यह हत्याकाण्ड हुआ था, तीन दिन तक खुली पड़ी थी। इन्हें गड्ढे में दफना दिया था। कुछ स्त्री व बच्चे ही सही सलामत बच पाये थे।

   रानी लक्ष्मीबाई व तात्या टोपे 21 अप्रैल को कालपी पहुँचे किन्तु यहाँ पर भी अंग्रेजी सेना ने अधिकार कर लिया, ग्वालियर का राजा अंग्रेजों का समर्थक होने के कारण रानी ने ग्वालियर के किले पर अधिकार कर लिया एवं मार्च सन् 1858 ई० में अंग्रेजों से 17 जून सन् 1858 ई० तक झाँसी की रानी सैनिक वेशभूषा में लड़ती हुई दुर्ग के पास वीरगति को प्राप्त हुई।

   जनरल ह्यूम रोज जिन्होंने रानी को पराजित किया, कहा कि "यहाँ वह औरत सोई हुई है जो विद्रोहियों में एकमात्र मर्द थी।"

5. **जगदीशपुर (बिहार)**—बिहार के जगदीशपुर में जमींदार कुँवर सिंह ने विद्रोह का नेतृत्व किया जबकि वे 70 साल के हो गये थे किन्तु अंग्रेजों ने इन्हें दिवालिया कर दिया एवं इनकी सम्पत्ति और जायदाद जब्त कर ली, भीतर ही भीतर अंग्रेज इनके शत्रु बन गये थे। चूँकि इन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध कोई योजना नहीं बनाई, किन्तु जैसे ही विद्रोही सैनिकों की टुकड़ी वीनापुर से आरा पहुँची। कुँवर सिंह ने उनके साथ होकर उनका नेतृत्व किया एवं अंग्रेजी सेना का डटकर मुकाबला किया। 6 अप्रैल, 1858 को अंग्रेजी सेना को पराजित करके 22 अप्रैल को उन्होंने अपनी जागीर प्रमुख जगदीशपुर पर अधिकार कर लिया।

   अन्ततः अंग्रेजी राज्य की समाप्ति दिखाई दे रही थी किन्तु पंजाब व पटियाला की सिक्ख पलटनें एवं लखनऊ की गोरखा पलटनें भी यदि विद्रोहियों का एकजुट होकर सहयोग करती तब ये सम्भव था किन्तु इन्होंने सिर्फ अंग्रेजों का साथ दिया, जिससे दिल्ली के सम्राट बहादुरशाह जफर को अंग्रेजों से हार का सामना करना पड़ा, इन्हें बन्दी बनाकर जीवन के अन्तिम दिनों में रंगून भेज दिया गया, वहाँ झाँसी में वीरांगना लक्ष्मीबाई ने लड़ते-लड़ते अपने प्राणों की आहूति दे दी, नाना साहेब ने कानपुर में युद्ध जारी रखा किन्तु गिरफ्तार होने की वजह सन् 1859 ई० में नेपाल चले गये।

   जगदीशपुर के कुँवर सिंह की मृत्यु मई सन् 1858 ई० में हो गई थी। तात्या टोपे ने लगभग 11 महीनों तक गुरिल्ला पद्धति से युद्ध जारी रखा किन्तु देश में रहने वालों ने गद्दारी का अपना अलग इतिहास रचा एवं अंग्रेजों को तात्या टोपे का पता बताकर गिरफ्तार करवा दिया एवं इस महासमर को अस्थाई विराम लगा दिया।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. स्वतन्त्रता संग्राम में सन् 1857 ई० के विद्रोह का स्वरूप एवं उसकी व्याख्या कीजिए।
Explain the nature of the revolt of 1857 in the freedom struggle.

उत्तर

सन् 1857 ई० के विद्रोह का स्वरूप एवं उसकी व्याख्या
(Form of Revolt of 1857 and its Explanation)

1857 का विद्रोह आम विद्रोह नहीं था न ही एक क्षेत्र में होने वाला विद्रोह ही था, बल्कि इस विद्रोह ने राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया था। इस विद्रोह के स्वरूप के विषय में इतिहासकारों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये।

1. **सन् 1857 ई० का विद्रोह सैनिक विद्रोह था**—सरजान लारेन्स, सीले, के० मालेसन, ट्रेविलियन, राबर्ट्स होम्स, डाडवेल आदि अंग्रेज इतिहासकारों ने सन् 1857 ई० के विद्रोह को सैनिक विद्रोह माना, इसकी वजह से चर्बी वाले कारतूस की घटना थी, जिसके पश्चात् अंग्रेजों ने सैनिकों को शस्त्रहीन कर दिया एवं अनेक सैनिक टुकड़ियाँ भंग कर दी, कई को दण्ड, फाँसी, कुछ को गोलियों एवं तोपों से उड़ाया गया। जिससे भारतीय सैनिक विद्रोह करने पर विवश हो गये क्योंकि इस समय देश में सर्वत्र असन्तोष और अराजकता, अव्यवस्था फैली थी। वास्तव में सैनिकों द्वारा विद्रोह बहुत ही प्रबलता के साथ किया गया था।
   सीले के अनुसार—"एक पूर्णतया देशभक्ति रहित और स्वार्थी सैनिक विद्रोह या जिसमें न कोई स्थानीय नेतृत्व और न ही सर्वसाधारण का समर्थन प्राप्त था।"
2. **सन् 1857 ई० का विद्रोह—जातियों का युद्ध**—मेंडले ने कहा कि ये "जातियों का युद्ध" था, यह सत्य है कि भारत में श्वेत-अश्वेत को बहुत हेय दृष्टि से देखते थे किन्तु हमेशा श्वेत लोगों के साथ 20 काले व्यक्ति रहे हैं। भारतीयों ने हमेशा गोरे सैनिकों की सहायता की है, उन्हें खतरों से बचाया है यह कहना तर्कसंगत होगा कि ये काले विद्रोहियों और काले लोगों द्वारा समर्थित गोरे शासकों के बीच युद्ध था।
3. **सन् 1857 ई० का विद्रोह—हिन्दू मुस्लिम षड्यन्त्र**—सर जेम्स आउट्रम और डब्ल्यू टेलर—कुछ अन्य अंग्रेज इतिहासकारों ने इस विद्रोह को अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमानों का षड्यन्त्र माना है और इसकी पुष्टि तत्कालीन रिपोर्टों और घटनाओं के आधार पर हो गई। आउट्रम का मत है कि "यह मुस्लिम षड्यन्त्र था जिसमें हिन्दू शिकायतों का लाभ उठाया गया।"
   "यह विद्रोह स्वरूप मुस्लिम था।" विद्रोह के सम्बन्ध में कैप्टन पी०जी० स्काट ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
   "जनवरी सन् 1857 ई० में एक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ था। जिसमें लिखा हुआ था कि अंग्रेजों ने अपने न्याय के सभी सिद्धान्त त्याग दिये और उन्होंने मुसलमानों की जमीन जायदाद को हड़पने के लिए संकल्प किया है। इस अतिक्रमण को रोकने के लिए एक ही रास्ता है वह है धर्मयुद्ध।"
4. **सन् 1857 ई० का विद्रोह सभ्यता एवं बर्बरता का संघर्ष**—टी०आर० होम्स ने ये माना कि "1857 का विद्रोह सभ्यता एवं बर्बरता के बीच युद्ध था" किन्तु ये कहना तर्कसंगत न होगा कि इसमें केवल एक ही पक्ष बर्बर था। अत्याचार, हत्या, लूट, क्रूर कृत्य आगजनी के लिए दोनों ही पक्ष उत्तरदायी थे। दिल्ली, कानपुर, लखनऊ में कुछ भारतीय भी यूरोपीय स्त्रियों और बालकों की हत्या के दोषी थे, तो अंग्रेजों ने भी भारतीयों सैनिकों एवं निर्दोष जनता को भी फाँसी दी, गोली दागी तथा तोपों से उड़ाया। ये ऐसे अपराध थे जो भारतीयों की अपेक्षा अधिक बर्बर और जघन्य थे। अंग्रेजों द्वारा किये गये ऐसे अपराध वाले जाति के लोग सभ्य कहलाने का दम नहीं भर सकते।
5. **सन् 1857 ई० का विद्रोह—राष्ट्रीय विद्रोह था**—बेंजामिन डिजरेली ने कहा ये विशाल विद्रोह कोई "आकस्मिक प्रेरणा नहीं था बल्कि एक सुनियोजित एवं सुसंगठित योजनाओं के परिणामस्वरूप विस्फोटित हुआ था जो सिर्फ एक अवसर की ताक में था अर्थात् किसी भी राज्य का उत्थान एवं पतन, चर्बी वाले कारतूसों की घटना से सम्भव नहीं होते। ऐसे महान विद्रोह तो उचित एवं पर्याप्त कारणों की सोची समझी परिणति हैं। इस कारण इन्होंने इसे "राष्ट्रीय विद्रोह" की संज्ञा दी।
6. **सन् 1857 ई० का विद्रोह स्वतन्त्रता संग्राम किन्तु राष्ट्रीय नहीं था**—डॉ० सेन ने कहा कि सन् 1857 ई० विद्रोह स्वतन्त्रता संग्राम ही था। इसे राष्ट्रीय कहना उचित नहीं है क्योंकि जो क्रान्तियाँ होती हैं वे एक छोटे से वर्ग में सम्भव होती है जिनमें जनता सम्मिलित होती, नहीं भी होती, अमेरिका की क्रान्ति व फ्रांसीसी क्रान्ति में भी यही हुआ।

TOUCH 'n PASS

डॉ० सेन के अनुसार "यदि एक विद्रोह में बहुत से लोग सम्मिलित हो जाएँ तो उसका स्वरूप राष्ट्रीय हो जाता है।" किन्तु इस विद्रोह में बहुत से लोगों ने निष्पक्ष एवं तटस्थता की नीति अपनाई इसलिए इसे राष्ट्रीय कहना उचित नहीं है।

7. **सन् 1857 ई० का विद्रोह न यह प्रथम था न यह राष्ट्रीय था, न स्वतन्त्रता संग्राम था**—आर०सी० मजूमदार के अनुसार सन् 1857 ई० का विद्रोह न ही प्रथम था, न राष्ट्रीय न स्वतन्त्रता संग्राम था, इसके पहले भी भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत से विद्रोह हुए। ये अवश्य है कि वे इतनी तीव्रता के साथ सारे भारत में नहीं फैल पाये थे, ये पूर्णत: स्वतन्त्रता संग्राम नहीं था क्योंकि विद्रोह ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लिया, जिससे प्रतीत होता है कि ये केवल सैनिक विद्रोह ही रहा होगा, कुछ असन्तुष्ट व्यक्ति ही इसमें शामिल थे, सैनिकों के आचरण में कुछ ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे अपने देश से प्रेम करते हैं और उसकी स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों से लड़ रहे हैं। चूँकि सन् 1857 ई० के विद्रोह के प्रारम्भ में स्वरूप कुछ भी रहा हो किन्तु यह भारत में अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए शीघ्र ही चुनौती सिद्ध हुआ और इसने अप्रत्यक्ष एवं उत्तरकालिक "राष्ट्रीय रूप" धारण कर लिया था।
8. **सन् 1857 ई० का विद्रोह—सामन्ती विद्रोह था**—जवाहर लाल नेहरू के अनुसार सन् 1857 ई० का विद्रोह सामन्ती था क्योंकि छोटे रियासतों के राजाओं, जमींदारों, तालुकेदारों को अपनी खोई हुई सत्ता प्राप्त करने का ये अन्तिम प्रयास था। ये वर्ग अंग्रेजों के नियन्त्रण से मुक्ति, सम्मान, सुविधा और अपनी भूमि चाहते थे, वे अंग्रेजों की प्रशासकीय नीति जो कि कूटनीति में तब्दील होकर उनके हितों को हानि पहुँचा रही थी उससे निजात पाना चाहते थे।
9. **सन् 1857 ई० का विद्रोह प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था**—कुछ विद्वान इतिहासकारों ने इस विद्रोह को आजादी की लड़ाई कहा, विनायक दामोदर सावरकर ने अपने ग्रन्थ "द इण्डियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस" एवं शशि भूषण ने अपनी पुस्तक "सिविल रिवेलियन्स इन इण्डियन म्यूनिटी" में ये प्रमाणित करने की कोशिश की कि सन् 1857 ई० का विद्रोह भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष का प्रथम मुक्ति संग्राम था। स्वाधीनता का युद्ध था और जनता ने इसमें खुलकर भाग लिया था। वीर सावरकर का कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है क्योंकि अगर ये सैनिक विद्रोह मात्र होता तो केवल सैनिक शक्ति से ही मुकाबला होता किन्तु इसमें एक विशाल जनसमूह जिनमें हिन्दू, मुसलमान तालुकेदार, जमींदार, राजा, नवाब, गरीब किसान, कारीगर, सिपाही, मजदूर तथा छोटी-बड़ी जाति के लोग भेदभाव छोड़कर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े। अन्तत: इस विद्रोह ने "राष्ट्रीय स्वरूप" धारण कर लिया था।

अन्तत: हम कह सकते हैं कि सन् 1857 ई० के विद्रोह का स्वरूप जो कुछ भी था किन्तु इसने अंग्रेजों को समूल जड़ से उखाड़ फेंकने की पूरी तैयार कर ली थी इसका उद्देश्य सिर्फ एक था स्वराज्य को प्राप्त करना चाहे उसके लिए अपने प्राणों की आहुति ही क्यों न देनी पड़े।

परिणामत: सन् 1857 ई० के विद्रोह की घटना आधुनिक भारत की वृहद घटनाओं में से एक है। सन् 1857 ई० का विद्रोह बहुत सी कमियों, विद्रोही सैनिकों और उनके नेताओं ने विद्रोह को संचालित करने के लिए पूर्व से नियोजित योजना, संगठन, आदि का सही ढंग से संचालन नहीं किया। अनेक स्थानों पर विद्रोह स्थानीय बनकर रह गया, अंग्रेजी कूटनीतिज्ञता, साधनों का अभाव, अंग्रेजों का भारतीय सहायता कुछ जगहों पर तिथि से पहले होने के कारण, तो कहीं तिथि की प्रतीक्षा करने पर ये सफल नहीं हो पाया और अंग्रेजों के विरुद्ध सामूहिक एवं संगठित रूप से खड़े होकर विद्रोही, अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध न कर सके। अंग्रेजों ने इसे शीघ्र ही दबा दिया। चूँकि सन् 1857 ई० का विद्रोह पूर्णत: सफल तो नहीं हुआ किन्तु अपनी मानसिक अभिव्यक्ति के प्रति चिह्नों को ब्रिटिश साम्राज्य के महलों पर चिह्नित कर गया। विस्फोट के ये चिह्न कालान्तर में अंग्रेजों को भयभीत करते रहे। इस सन्दर्भ में लार्ड क्रोमर ने कहा "काश अंग्रेज की युवा पीढ़ी भारतीय विद्रोह के इतिहास को पढ़े, ध्यान से सीखे और इसका मनन करे, इसमें बहुत से पाठ और चेतावनियाँ निहित हैं।"

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. अंग्रेजी भारत सेना में चर्बी वाले कारतूसों से चलने वाली एनफील्ड राइफल कब शामिल की गयी?

(क) दिसम्बर 1856 (ख) नवम्बर 1856

(ग) अगस्त 1856 (घ) मार्च 1856

उत्तर (क) दिसम्बर 1856

प्र.2. भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम का मुख्य तात्कालिक कारण था—
(क) लॉर्ड डलहौजी की हड़प नीति (ख) सैनिक असन्तोष
(ग) अंग्रेजों का धर्म में हस्तक्षेप का संदेह (घ) भारत का आर्थिक शोषण
उत्तर (ग) अंग्रेजों का धर्म में हस्तक्षेप का संदेह

प्र.3. 1857 की क्रान्ति कहाँ से प्रारम्भ हुई थी?
(क) लखनऊ (ख) झाँसी (ग) मेरठ (घ) कानपुर
उत्तर (ग) मेरठ

प्र.4. 1958 का विद्रोह का प्रतीक क्या था?
(क) कमल और रोटी (ख) बाज (ग) रुमाल (घ) दो तलवारें
उत्तर (क) कमल और रोटी

प्र.5. 1857 के विद्रोह के समय भारत के गवर्नर जनरल कौन थे?
(क) लॉर्ड कैनिंग (ख) लॉर्ड डलहौजी (ग) लॉर्ड वेलेजली (घ) लॉर्ड कार्नवालिस
उत्तर (क) लॉर्ड कैनिंग

प्र.6. 1857 के विद्रोह के समय ब्रिटेन की महारानी कौन थीं?
(क) एलिजाबेथ प्रथम (ख) महारानी विक्टोरिया (ग) कैथरीन मेयो (घ) एलिजाबेथ द्वितीय
उत्तर (ख) महारानी विक्टोरिया

प्र.7. निम्न में से किसने 1857 में इलाहाबाद को आपातकालीन मुख्यालय बनाया था?
(क) लॉर्ड कैनिंग (ख) लॉर्ड वेलेजली
(ग) लॉर्ड कार्नवालिस (घ) लॉर्ड विलियम बैंटिंक
उत्तर (क) लॉर्ड कैनिंग

प्र.8. दिल्ली प्रतीक रूप में विद्रोहियों के नेता बादशाह बहादुर शाह जफर थे, परन्तु वास्तविक नियन्त्रण एक सैनिक समिति के हाथों में था, इस समिति का प्रमुख कौन था?
(क) जनरल बख्त खाँ (ख) मौलवी अहमद उल्लाह
(ग) मणि राम दीवान (घ) तात्या टोपे
उत्तर (क) जनरल बख्त खाँ

प्र.9. विद्रोह के समय दिल्ली का शासक मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर था, लेकिन इस युद्ध का नेतृत्व कौन-सी रेजीमेंट के जनरल बख्तखाँ कर रहे थे—
(क) 32वीं एनआई रेजीमेंट (ख) 34वीं एनआई रेजीमेंट
(ग) 94वीं एनआई रेजीमेंट (घ) 49वीं एनआई रेजीमेंट
उत्तर 34वीं एनआई रेजीमेंट

प्र.10. 1857 के विद्रोह के दौरान बहादुर शाह ने किसे साहब-ए-आलम बहादुर का खिताब दिया था?
(क) बख्त खान (ख) अजीमुल्ला (ग) हसन खान (घ) हैदर अली
उत्तर (क) बख्त खान

प्र.11. 1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम से सम्बन्धित पहली घटना थी—
(क) कानपुर में विद्रोह और नाना साहब का नेतृत्व सँभालना
(ख) बेगम हजरत महल द्वारा अवध का नेतृत्व
(ग) सैनिकों का दिल्ली के लाल किले पर पहुँचना
(घ) झाँसी की रानी का विद्रोह
उत्तर (ग) सैनिकों का दिल्ली के लाल किले पर पहुँचना

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. 1857 के संग्राम के निम्नलिखित केन्द्र में से सबसे पहले अंग्रेजों ने किसे पुनः अधिकृत किया?
(क) मेरठ (ख) कानपुर (ग) झाँसी (घ) दिल्ली
उत्तर (घ) दिल्ली

प्र.13. 1857 के स्वाधीनता संग्राम की वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई की जन्मस्थली है—
(क) आगरा (ख) वाराणसी (ग) झाँसी (घ) वृंदावन
उत्तर (ख) वाराणसी

प्र.14. 1857 के विद्रोह के समय रानी लक्ष्मीबाई की उम्र लगभग कितनी थी?
(क) 14 वर्ष (ख) 18 वर्ष (ग) 22 वर्ष (घ) 31 वर्ष
उत्तर (ग) 22 वर्ष

प्र.15. महारानी लक्ष्मीबाई की समाधि स्थल कहाँ है?
(क) मांडला (ख) मांडू (ग) ग्वालियर (घ) झाँसी
उत्तर (ग) ग्वालियर

प्र.16. रानी लक्ष्मीबाई को अन्तिम युद्ध में सामना किस अंग्रेज के साथ करना पड़ा था?
(क) डुप्ले (ख) ह्यूरोज (ग) हैवलॉक (घ) लॉर्ड क्लाइव
उत्तर (ख) ह्यूरोज

प्र.17. 1857 के विद्रोह लखनऊ में किसने नेतृत्व किया था?
(क) अजीमुल्ला (ख) जीनत महल (ग) तात्या टोपे (घ) बेगम हजरत महल
उत्तर (घ) बेगम हजरत महल

प्र.18. कुँवर सिंह की मृत्यु के बाद 1857 के विद्रोह का नेतृत्व जगदीशपुर में कौन कर रहा था?
(क) मान सिंह (ख) भीम सिंह (ग) अमर सिंह (घ) महावत सिंह
उत्तर (ग) अमर सिंह

प्र.19. 1857 ई० के संघर्ष की निम्नलिखित घटनाओं को कालक्रमानुसार व्यवस्थित कीजिए—
1. मेरठ में विद्रोह
2. लखनऊ में विद्रोह
3. झाँसी में विद्रोह
4. नसीराबाद में विद्रोह

सही कूट का चयन कीजिए—
(क) 1, 4, 2, 3 (ख) 1, 2, 3, 4
(ग) 4, 3, 2, 1 (घ) 1, 4, 3, 2
उत्तर (क) 1, 4, 2, 3

प्र.20. 1857 के संघर्ष में भाग लेने वाले सिपाहियों की सर्वाधिक संख्या थी—
(क) बिहार से (ख) अवध से (ग) बंगाल से (घ) राजस्थान से
उत्तर (ख) अवध से

TOUCH 'n PASS

❑

UNIT-II

भारत में राष्ट्रवाद
Nationalism in India

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में राष्ट्रवाद के उदय के सामाजिक कारणों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on social factors on the rise of nationalism in India.

उत्तर भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के सामाजिक कारणों में प्रमुख था—अंग्रेजों की प्रजातीय विभेद की नीति। अंग्रेज स्वयं को श्रेष्ठ तथा भारतीयों को उपेक्षा तथा हेय की दृष्टि से देखते थे। भारतीयों पर अनेक प्रतिबन्ध थे जैसे—रेलगाड़ी, क्लबों, होटलों में वे सफर या प्रवेश नहीं कर सकते थे, जिसमें अंग्रेज हों। सरकारी सेवाओं में अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण नीति ने भी राष्ट्रवाद की भावना को प्रेरित किया। सरकारी नागरिक सेवा में भारतीयों का प्रवेश काफी मुश्किल था। बहुत बार परीक्षा में सफल होने के बाद भी उन्हें या तो नियुक्त नहीं किया जाता था या अकारण नौकरी से हटा दिया जाता था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ भी ऐसा ही किया गया न भारतीय शिक्षित मध्यम वर्ग मर्माहत हो गया जिसने राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्र.2. भारत में राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन से कैसे विकसित हुआ?
How did nationalism in India evolve from anti-colonial movement.

उत्तर हिन्द-चीन के समान भारत में भी राष्ट्रवाद का उदय और विकास औपनिवेशिक शासन के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से अंग्रेजी राज की प्रशासनिक, आर्थिक और अन्य नीतियों के विरुद्ध असन्तोष की भावना बलवती होने लगी। भारत के राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार, मध्यवर्ग के उदय, सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों, साहित्य और समाचार-पत्रों के विकास तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के राष्ट्रवाद की अवधारणा को उत्तेजना प्रदान की।

प्र.3. राष्ट्रवाद का विकास कब और कैसे हुआ?
When and how did the nationalism develop?

उत्तर यह एक आधुनिक संकल्पना है जिसका विकास पुनर्जागरण के बाद यूरोप में राष्ट्र राज्यों के रूप में हुआ। राष्ट्रवाद का उदय अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के यूरोप में हुआ था, लेकिन अपने केवल दो-ढाई सौ साल पुराने ज्ञात इतिहास के बाद भी यह विचार बेहद शक्तिशाली और टिकाऊ साबित हुआ है।

प्र.4. राष्ट्रवाद की विशेषता क्या है?
What is the speciality of nationalism?

उत्तर राष्ट्रवाद ही अपने देश की आन और बान पर कुर्बानी देने का जज्बा पैदा करता है। राष्ट्रवादी अपनी सीमाओं के साथ अपने राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा करता है। देशभक्त मात्र अपनी सीमाओं की। देशभक्त अपने लोगों से प्यार करता है तो राष्ट्रवादी अपने लोगों से प्यार के साथ उन लोगों से नफरत भी करता है जो राष्ट्र विरोधी हैं।

प्र.5. राष्ट्रवाद का उद्देश्य क्या है?
What is the purpose of the nationalism?

उत्तर विशुद्ध रूप से राजनीतिक दृष्टिकोण से, राष्ट्रवाद का उद्देश्य देश की लोकप्रिय सम्प्रभुता की रक्षा करना है—स्वयं पर शासन करने का अधिकार—और इसे आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पन्न राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दबावों से बचाना है। इस अर्थ में, राष्ट्रवाद को वैश्विकता के विरोध के रूप में देखा जाता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. भारत में राष्ट्रवाद का क्या अर्थ है?
What is the meaning of the nationalism in India.

उत्तर भारत में राष्ट्रवाद का अर्थ लोगों की अपनी पहचान और अपनेपन की भावना की समझ में बदलाव है। आधुनिक राष्ट्रवाद का विकास उपनिवेश विरोधी आन्दोलन से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। उपनिवेशवाद के खिलाफ अपने संघर्ष की प्रक्रिया में लोगों ने अपनी एकता की खोज शुरू की।

प्र.7. राष्ट्रवाद की शुरुआत कहाँ से हुई?
Where did the nationalism begin?

उत्तर अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में राष्ट्रवाद का उदय हुआ, जो पहले यूरोप में दिखाई दिया, फिर उत्तर और दक्षिण अमेरिका में। बीसवीं शताब्दी में, राष्ट्रवाद कई एशियाई देशों और अफ्रीका के नये स्वतन्त्र राष्ट्रों में फैल गया।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारणों का परीक्षण करें।
Examine the causes of the rise of the nationalism in India.

उत्तर 19वीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रवाद के उदय में अनेक कारणों का योगदान था। इनमें निम्नलिखित कारण प्रमुख थे—

1. **अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध असन्तोष**—भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का सबसे प्रमुख कारण अंग्रेजी नीतियों के प्रति बढ़ता असन्तोष था। अंग्रेजी सरकार की नीतियों के शोषण के शिकार देशी रजवाड़े, ताल्लुकेदार, महाजन, कृषक, मजदूर, मध्यम वर्ग सभी बने। सभी अंग्रेजी शासन को अभिशाप मानकर इसका खात्मा करने का मन बनाने लगे।
2. **आर्थिक कारण**—भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक महत्त्वपूर्ण कारण आर्थिक था। सरकारी आर्थिक नीतियों के कारण कृषि और कुटीर उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। किसानों पर लगान एवं कर्ज का बोझ चढ़ गया। किसानों को नगदी फसल नील, गन्ना, कपास उपजाने को बाध्य कर उसका भी मुनाफा सरकार ने उठाया। अंग्रेजी आर्थिक नीति द्वारा भारत से धन का निष्कासन हुआ, जिससे भारत की गरीबी बढ़ी। इससे भारतीयों में प्रतिक्रिया हुई एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ।
3. **अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार**—19वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार ने भारतीयों की मानसिक जड़ता समाप्त कर दी। वे भी अब अमेरिकी स्वतन्त्रता संग्राम, फ्रांस एवं यूरोप की अन्य महान क्रान्तियों से परिचित हुए। रूसो, वाल्टेयर, मेजिनी, गैरीबाल्डी जैसे दार्शनिकों एवं क्रान्तिकारियों के विचारों का प्रभाव उन पर पड़ा।
4. **सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलन का प्रभाव**—19वीं शताब्दी के सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने भी राष्ट्रीयता की भावना विकसित की। ब्रह्म समाज, आर्य-समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन ने एकता, समानता एवं स्वतन्त्रता की भावना जागृत की तथा भारतीयों में आत्म-सम्मान, गौरव एवं राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने में योगदान किया।
5. **राजनीतिक एकीकरण**—भारत में अंग्रेजों ने उग्र साम्राज्यवादी नीति अपनाई। वॉरेन हेस्टिंग्स से लेकर लॉर्ड डलहौजी ने येन-केन-प्रकारेण देशी रियासतों को अपना अधीनस्थ बना लिया। 1857 के विद्रोह के बाद महारानी विक्टोरिया ने सभी देशी राज्यों को अंग्रेजी अधिसत्ता में ले लिया। इससे एक प्रकार से भारत का राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकीकरण हुआ। लॉर्ड डलहौजी द्वारा रेल, डाक-तार की व्यवस्था से आवागमन और संचार की सुविधा बढ़ गई। इससे सम्पूर्ण भारत में स्थानीयता की भावना के स्थान पर राष्ट्रीयता की भावना बढ़ी।

प्र.2. भारतीय राष्ट्रवाद के उदय पर टिप्पणी कीजिए।
Comment on the rise of the Indian Nationalism.

उत्तर

भारतीय राष्ट्रवाद का उदय
(Emergence of Indian Nationalism)

भारतीय राष्ट्रवाद एक आधुनिक तत्त्व है। इस राष्ट्रवाद का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल और बहुमुखी रही है। भारत में अंग्रेजों ने आने से पहले देश में ऐसी सामाजिक संरचना थी जो कि संसार के किसी भी अन्य देश में शायद ही कहीं पाई जाती हो। वह पूर्व मध्यकालीन यूरोपीय समाजों से आर्थिक दृष्टि से भिन्न थी। भारत

TOUCH 'n' PASS

विविध भाषा-भाषी और अनेक धर्मों के अनुयायियों वाले विशाल जनसंख्या का देश है। सामाजिक दृष्टि से हिन्दू समाज जो कि देश की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग है। विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित रहा है। स्वयं हिन्दू धर्म में किसी विशिष्ट पूजा पद्धति का नाम नहीं है। बल्कि उसमें कितने ही प्रकार के दर्शन और पूजा पद्धतियाँ सम्मिलित हैं। इस प्रकार हिन्दू समाज अनेक सामाजिक और धार्मिक विभागों में बँटा हुआ है। भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना और विशाल आकार के कारण यहाँ पर राष्ट्रीयता का उदय अन्य देशों की तुलना में अधिक कठिनाई से हुआ है। शायद ही विश्व के किसी अन्य देश में इस प्रकार की प्रकट भूमि में राष्ट्रवाद का उदय हुआ हो। सर जॉन स्ट्रेची ने भारत की विभिन्नताओं के विषय में कहा है कि 'भारतवर्ष के विषय में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण जानने योग्य बात यह है कि भारतवर्ष ने कभी सामाजिक अथवा धार्मिक एकता थी, न कोई राष्ट्र और न कोई भारतीय ही था जिसके विषय में हम बहुत अधिक सुनते हैं।'' इसी सम्बन्ध में सर जॉन शिले का कहना है कि ''यह विचार कि भारतवर्ष एक राष्ट्र है, उस मूल पर आधारित है जिसको राजनीतिक शास्त्र स्वीकार नहीं करता और दूर करने का प्रयत्न करता है। भारतवर्ष एक राजनीतिक नाम नहीं हैं वरन् एक भौगोलिक नाम है जिस प्रकार यूरोप या अफ्रीका।'' उपरोक्त विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ जो राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता प्रदान करने के स्थान पर बाधाएँ पैदा करती हैं। वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज की विभिन्नताओं में मौलिक एकता सदैव विद्यमान रही है और समय-समय पर राजनीतिक एकता की भावना भी उदय होती रही है। वी०ए० स्मिथ के शब्दों में, ''वास्तव में भारतवर्ष की एकता उसकी विभिन्नताओं में ही निहित है।'' ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारतीय समाज में नये विचारों तथा नई व्यवस्थाओं को जन्म मिला है। इन विचारों तथा व्यवस्थाओं के बीच हुई क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया।

प्र.3. भारतीय राष्ट्रवाद एवं इसकी पूर्व-ब्रिटिश सामाजिक पृष्ठभूमि का वर्णन कीजिए।

Describe Indian nationalism and its pre-British social background.

उत्तर राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्त्वों में राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पायी जाने वाली सामुदायिक भावना है जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में राष्ट्रीयता की भावना का विशेष रूप से विकास हुआ, इस विकास में विशिष्ट बौद्धिक वर्ग का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ। जो स्वतन्त्रता को मूल समझता था और जिसमें अपने देश को अन्य पाश्चात्य देशों के समकक्ष लाने की प्रेरणा थी। पाश्चात्य देशों का इतिहास पढ़कर उसमें राष्ट्रवादी भावना का विकास हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत के प्राचीन इतिहास से नई पीढ़ी को राष्ट्रवादी प्रेरणा नहीं मिली है किन्तु आधुनिक काल में नवोदित राष्ट्रवाद अधिकतर अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम है। देश में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए हुए नवोदित विशिष्ट वर्ग ने ही राष्ट्रीयता का झण्डा उठाया।

पूर्व-ब्रिटिश सामाजिक पृष्ठभूमि
(Pre-british Social Background)

भारतीय राष्ट्रवाद को समझने के लिए उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। भारत में अंग्रेजों के आने से पहले भारतीय ग्राम आत्मनिर्भर समुदाय थे। वे छोटे-छोटे गणराज्यों के समान थे जो प्रत्येक बात में आत्मनिर्भर थे। ब्रिटिश पूर्व भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि और कुटीर उद्योगों पर आधारित थी और सदियों से ज्यों-की-त्यों चली आ रही थी। कृषि और उद्योग में तकनीकी स्तर अत्यन्त निम्न था। सामाजिक क्षेत्र में परिवार, जाति पंचायत और ग्रामीण पंचायत सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करती थीं। नगरीय क्षेत्र में कुछ नगर राजनैतिक, कुछ धार्मिक तथा कुछ व्यापार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी। अधिकतर राज्यों की राजधानी किसी-न-किसी नगर में थी। नगरों में अधिकतर लघु उद्योग प्रचलित थे। इन उद्योगों को राजकीय सहायता प्राप्त होती थी। अधिकतर गाँवों और नगरों में परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान बहुत कम होता था, क्योंकि यातायात और संदेशवाहन के साधन बहुत कम विकसित थे। इस प्रकार राजनैतिक परिवर्तनों से ग्राम की सामाजिक स्थिति पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था। विभिन्न ग्रामों और नगरों के एक दूसरे से अलग-अलग रहने के कारण देश में कभी अखिल भारतीय राष्ट्र की भावना उत्पन्न नहीं हो सकी। भारत में जो भी राष्ट्रीयता की भावना थी, वह अधिकतर धार्मिक और आदर्शवादी एकता की भावना थी, वह राजनैतिक व आर्थिक एकता की भावना नहीं थी। लोग तीर्थयात्रा करने के लिए पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण भारत का दौरा अवश्य

करते थे और इससे देश की धार्मिक एकता की भावना बनी हुई थी, किन्तु सम्पूर्ण देश परस्पर संघर्षरत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, जिनमें बराबर युद्ध होते रहते थे। दूसरी ओर ग्रामीण समाज इन राजनैतिक परिवर्तनों से लगभग अछूते रहते थे। भारतीय संस्कृति मुख्य रूप से धार्मिक रही है। इसमें राजनैतिक तथा आर्थिक मूल्यों को कभी इतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना कि आधुनिक संस्कृति में दिया जाता है। भारतीय संस्कृति की एकता भी धार्मिक आदर्शवादी एकता है। उसमें राष्ट्रीय भावना का अधिकतर अभाव ही दिखाई देता है।

प्र.4. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में कृषि व्यवस्था में परिवर्तन का उल्लेख कीजिए।
Mention the changes in the agricultural system in the development of Indian nationalism.

उत्तर

कृषि व्यवस्था में परिवर्तन
(Changes in Agricultural System)

भारत में अंग्रेजों की विजय के पश्चात् भारतीय समाज में व्यापक रूपान्तरण हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का कारण मुगल साम्राज्य का पतन और देश का अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो जाना था। ब्रिटिश शासन पूर्व-मुस्लिम शासनों से अनेक बातों में भिन्न था। भारतीय लोगों की तुलना में अंग्रेजों की राष्ट्रीयता की भावना, अनुशासन, देश भक्ति और सहयोग कहीं अधिक दिखाई पड़ते थे। उनके इन गुणों ने भारतीय विशिष्ट वर्ग को भी प्रभावित किया। अंग्रेजी शासन के भारत की आर्थिक संरचना पर दूरगामी प्रभाव पड़े। उससे एक ओर देश में प्राचीन एशियाई समाज को आघात पहुँचा तथा दूसरी ओर पाश्चात्य समाज की स्थापना हुई। इससे देश में राजनैतिक एकता का निर्माण हुआ। उसके प्रभाव से देश में राष्ट्रीयता के आन्दोलन का विकास हुआ। उससे देश की कृषि व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। अंग्रेजों के आने से पहले भूमि राजा की नहीं समझी जाती थी उसे जोतने वाले राजा को कर दिया करते थे, अपितु भूमि निजी सम्पत्ति भी नहीं मानी जाती थी। अंग्रेजों के आने से भूमि पर ग्रामीण समुदाय का अधिकार नहीं रहा, बल्कि वह व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति बन गई। इस प्रकार देश के कुछ भागों में जमींदारों और अन्य भागों में किसानों का भूमि पर अधिकार हो गया। लार्ड कार्नवालिस के राज्यकाल में, बंगाल बिहार और उड़ीसा में जमींदार वर्ग का उदय हुआ। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में दूरवर्ती परिवर्तन हुए। देश के अन्य भागों में रैयतवाड़ी प्रबन्ध से किसानों को उनके द्वारा जोती गई भूमि पर अधिकार दे दिया गया। सर टॉमस ने मद्रास के गवर्नर के रूप में सन् 1820 ई० में रैयतवाड़ी व्यवस्था प्रारम्भ की। इससे देश में व्यापक, सामाजिक, राजनैतिक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुए। लगान देने की नई व्यवस्था में ग्रामीण पंचायत नहीं बल्कि जमींदार और किसान सीधे सरकार को कर देने लगे। इस प्रकार कृषि व्यवस्था व्यापार की स्थिति में आ गई और परम्परागत भारतीय ग्रामीण व्यवस्था का विघटन हुआ। क्रमशः कृषि व्यवस्था का रूपान्तरण होने लगा। भूमि पर निजी अधिकार स्थापित होने से भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े बढ़ने लगे। इस अपखण्डन से खेती पर बुरा प्रभाव पड़ा। लगान वसूल करने की नई प्रणाली से सरकारी कर्मचारियों के नवीन वर्ग का निर्माण हुआ। जिनका दूरवर्ती राजनीतिक महत्त्व है। देश की आर्थिक दशा बिगड़ने लगी, गरीबी बढ़ने लगी। गाँवों में लोगों पर कर्ज बढ़ने लगा, जिससे क्रमशः भूमि खेती करने वालों के हाथ से निकल कर खेती न करने वाले भू-स्वामियों के हाथ में जाने लगी। इससे भू-दासों के एक नवीन वर्ग का निर्माण हुआ, जिसके हित भू-स्वामियों के हित के विरुद्ध थे। कृषि के क्षेत्र में एक ओर सर्वहारा भू-दास और दूसरी और परोपजीवी जमींदार वर्ग का निर्माण हुआ, जिनमें परस्पर संघर्ष और तनाव बढ़ने लगा। इन वर्गों के निर्माण से व्यापक, सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए।

प्र.5. राष्ट्रवाद के विकास से नगरीय अर्थव्यवस्था तथा शिक्षा के प्रसार में क्या परिवर्तन हुए? उल्लेख कीजिए।
What changes were happen in the spread of education and Urban economy through the development of nationalism? Mention.

उत्तर

नगरीय अर्थव्यवस्था में परिवर्तन
(Changes in Urban Economy)

ब्रिटिश शासनकाल में नगरीय अर्थव्यवस्था में भी व्यापक परिवर्तन हुए। कुटीर उद्योगों को धक्का लगा। विदेशी शासन में उनके हितों पर कुठाराघात हुआ, उनके माल की खपत कम होती गई, जिससे क्रमशः परम्परागत उद्योग समाप्त होने लगे। कारीगरों का सामाजिक स्तर गिरने लगा और कारीगिरी के काम छोड़कर अन्य व्यवसायों में लगने लगे। विदेशों से आए हुए बने-बनाये माल के मुकाबले में देशी माल की खपत घटने लगी, जिसके परिणामस्वरूप भारत अधिकतर कच्चा माल उत्पादन करने का स्रोत बन गया

TOUCH 'n' PASS

और देश के बाजार विदेशी माल से भरे जाने लगे। पृष्ठभूमि का देश में आधुनिक उद्योगों के विकास में अत्यधिक महत्त्व है। अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए देश में यातायात और सन्देश वाहन के साधन बढ़ाये। उन्होंने नये-नये उद्योगों की स्थापना की। इन सबसे धीरे-धीरे राष्ट्रीयता की भावना के विकास में सहायता मिली। अंग्रेजी पढ़े नये लोगों ने अंग्रेजों की आर्थिक नीति की कटु आलोचना की। देश में उद्योगों के विकास से पूँजीपति वर्ग बढ़ने लगा। अधिकतर भारतीय उद्योगों में विदेशी पूँजी लगी हुई थी। इस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था देश के लिए हानिकारक और अंग्रेजों के लिए लाभदायक थी, दूसरी ओर व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में उनका एकाधिकार बढ़ गया।

शिक्षा का प्रसार
(Prevalence of Education)

अंग्रेजों ने देश में एक ऐसे वर्ग के निर्माण के लिए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया जो कि उन्हें शासन में सहायता दे सकें। पूर्व-ब्रिटिश भारत में अधिकतर शिक्षा धार्मिक शिक्षा थी जो संस्कृत पाठशालाओं तथा मुस्लिम मदरसों के माध्यम से दी जाती थी। ईसाईयों ने देश में आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया, यद्यपि उनकी शिक्षा का एक उद्देश्य देश में ईसाईयों की संख्या बढ़ाना भी था, किन्तु उससे पश्चिमी तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं को भी प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजों ने सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त व्यावसायिक शिक्षा देने के लिए भी विद्यालय खोले। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से देश में एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जिसने राष्ट्रीय शिक्षा की ओर ध्यान दिया। यह वर्ग शिक्षा के महत्त्व को भली-भाँति जानता था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, अलीगढ़ आन्दोलन ने भी शिक्षा को प्रोत्साहित किया। बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ में मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। देश में अनेक जगह दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक विद्यालयों और कॉलेजों की स्थापना हुई। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से जहाँ एक ओर काले अंग्रेजों का वर्ग बढ़ा जो कि केवल जन्म से भारतीय और सब प्रकार से अंग्रेज थे। वहीं दूसरी ओर ऐसे पढ़े-लिखे वर्ग का भी निर्माण हुआ जो कि देश की प्राचीन परम्पराओं पर गर्व करते थे। इन्हीं लोगों ने देश में राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात किया। भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की चाहे जो भी आलोचना की जाए। यह निश्चित है कि उससे देश में राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। उससे राष्ट्रीयता, जनतन्त्रवाद और समाजवाद की लहर उत्पन्न हुई।

प्र.6. राष्ट्रवाद में ब्रिटिश शासन में कानूनी एकता का क्या अभाव था? स्पष्ट कीजिए।
What was the scarcity of legal unity during British administration in nationalism?

उत्तर

ब्रिटिश शासन में कानूनी एकता
(Legal Unity in British Rule)

अंग्रेजों से पहले भारत में मौलिक, राजनैतिक और प्रशासनिक एकता का सर्वथा अभाव था। अंग्रेजों ने समस्त देश में राजनैतिक और प्रशासनिक दृष्टि से सामान्य व्यवस्था स्थापित की थी उन्होंने अपने राज्य में कानून के राज्य की स्थापना की। ये कानून राज्य के प्रत्येक नागरिक पर लागू किये गये और इनको लागू करने के लिए देश में एक जटिल न्याय व्यवस्था का निर्माण हुआ। राज्य द्वारा नियुक्त न्यायाधीश कानूनों की व्याख्या करते थे और राज्य के अधिनियमों को नागरिकों पर लागू करते थे। सम्पूर्ण देश में निचली अदालतों, उच्च न्यायालयों तथा संघीय न्यायालयों तथा काउंसिल की स्थापना हुई। जिसकी अपील प्रिवी काउंसिल में की जा सकती थी। इस प्रकार कानून रीति-रिवाजों पर आधारित न होकर अधिक निश्चित बन गये। कानून का राज्य स्थापित होने से स्थानीय पंचायतों के अधिकार कम हो गये तथा न्याय-व्यवस्था में एकरूपता की स्थापना हुई। अंग्रेजों के आने के पहले के भारत में और अंग्रेजी राज्य कानूनी व्यवस्था में भारी अन्तर दिखलाई पड़ता है जबकि पूर्व ब्रिटिश कानून अधिकतर धार्मिक स्ववृत्तियों पर आधारित था, ब्रिटिश कानून अधिनियम और जनतन्त्रीय मूल्यों पर आधारित था उसमें जाति वर्ग, प्रजाति वर्ग, लिंग के भेदभाव के बिना राज्य के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में भारतीय इतिहास में पहली बार देश की जनता में जनतन्त्रीय आधार पर एकता स्थापित हुई।

कानूनी एकता के अतिरिक्त ब्रिटिश शासन में प्रशासनिक एकता की भी स्थापना हुई, नगरीय में जिसमें सूबे की प्रशासनिक व्यवस्था समस्त देश में एक प्रकार की थी। लगान की व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन होने से देश में भूमि सम्बन्धी कानून व्यवस्था की स्थापना हुई, जिसमें भूमि क्रय-विक्रय और रहन-सहन के सम्बन्ध में समस्त देश में एक से कानूनों का प्रसार हुआ। आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश सरकार ने समस्त देश में एक से सिक्के का प्रसार किया जिसमें व्यापार और क्रय-विक्रय में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

TOUCH 'n PASS

प्र.7. ब्रिटिश शासनकाल में किन नये वर्गों का उदय हुआ? संक्षेप में लिखिए।
Which new classes were emerged during British period? Write in brief.

उत्तर

नये वर्गों का उदय
(Emergence of New Classes)

अंग्रेजों के शासनकाल में नवीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था तथा नवीन प्रशासनिक प्रणाली और नई शिक्षा के विस्तार से नये वर्गों का उदय हुआ। ये वर्ग प्राचीन भारतीय समाज में नहीं पाये जाते थे। ये अंग्रेजी शासनकाल में पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न हुए। किन्तु देश के विभिन्न भागों में इन नये वर्गों का एक ही प्रकार से उदय नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि देश के विभिन्न भागों में एक ही साथ अंग्रेजी शासन की स्थापना नहीं हुई और न उनमें एक ही साथ सुधार लागू किये गये। सबसे पहले बंगाल में अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई और वहीं से पहले जमींदार वर्ग उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार बंगाल तथा बम्बई में सबसे पहले बड़े उद्योगों की स्थापना की गई और वहाँ पर उद्योगपतियों और श्रमिकों के वर्गों का निर्माण हुआ, अन्त में जब सम्पूर्ण देश में अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई तो सब जगह राष्ट्रीय स्तर पर नये सामाजिक वर्ग दिखलाई पड़ने लगे। इन नये वर्गों के निर्माण से पूर्व ब्रिटिश सामाजिक व आर्थिक संरचना का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उदाहरण के लिए अंग्रेजों के आने के पहले बनियों में व्यापार और उद्योग अधिक था और अंग्रेजी शासनकाल में भी इन्हीं लोगों ने सबसे पहले पूँजीपति वर्ग का निर्माण किया, हिन्दुओं की तुलना में मुस्लिम जनसंख्या में शिक्षा का प्रसार कम होने के कारण उनमें बुद्धिजीवी, मध्यमवर्ग और बुर्जुआ वर्ग हिन्दू समुदायों की तुलना में बहुत बाद में दिखलाई दिया। इस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में जमींदार वर्ग, भूमि जोतने वाले, भूस्वामी वर्ग, कृषि श्रमिक, व्यापारी वर्ग, साहूकार वर्ग, पूँजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग, छोटे व्यापारी और दुकानदार वर्ग, डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, मैनेजर, क्लर्क, आदि व्यवसायी वर्ग और विभिन्न कारखानों और बगीचों में काम करने वाले श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। इनमें से अनेक वर्गों के हित परस्पर विरुद्ध थे और उन्होंने अपने-अपने हितों की रक्षा करने के लिए अनेक नवीन आन्दोलन छेड़े।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारणों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Explain in detail about the factors for the rise of nationalism in India.

उत्तर

भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारण
(Reasons of Emergence of Nationalism in India)

भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा का अंकुर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से उगने लगा था किन्तु यह धीरे-धीरे विकसित होता रहा अन्त में 1857 ई० में पूर्ण हो गया। अत: भारतीय राष्ट्रीय जागृति का काल उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य मानना उचित ही होगा। भारत में राष्ट्रवाद के जन्म के कारण जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। वह विश्व में अपने आपमें एक अनूठा आन्दोलन था। भारत में राजनीतिक जागृति के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जागृति का भी सूत्रपात हुआ। वास्तव में सामाजिक तथा धार्मिक जागृति के परिणामस्वरूप राजनीतिक जागृति का उदय हुआ। डॉ० जकारिया का मत है कि "भारत का पुनर्जागरण मुख्यत: आध्यात्मिक था। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।" इस रूप से भारतीय राष्ट्रीय जागृति यूरोपीय देशों में हुई राष्ट्रीय जागृति से भिन्न है। भारत में राष्ट्रवादी विचारों के उदय और विनाश के लिए निम्नलिखित कारण माने जाते हैं—

1. **सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन**—भारत में राष्ट्रीय जागृति पैदा करने से 19वीं शताब्दी में हुए सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। देश की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही थी और धर्म के नाम पर समाज में अन्धविश्वास और कुप्रथाएँ पैदा हो गई थी। इन आन्दोलनों ने एक और धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया तो दूसरी ओर भारत में राष्ट्रीयता की भाव भूमि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार के आन्दोलनों में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिसके प्रवर्तक क्रमश: राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द एवं श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि थे। इन सुधारकों ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया तथा उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का ज्ञान कराया, उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के बारे में पता चला।

इन महान व्यक्तियों में राजा राम मोहन राय को भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहा जा सकता है। उन्होंने समाज तथा धर्म में व्याप्त बुराइयों को दूर करने हेतु अगस्त 1828 ई० में ब्रह्म समाज की स्थापना की। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा, छुआछूत जाति में भेदभाव एवं मूर्ति पूजा आदि बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके प्रयासों के कारण आधुनिक भारत का निर्माण सम्भव हो सका। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है। डॉ० आर०सी० मजूमदार ने लिखा है कि राजा राम मोहन राय को बेकन तथा मार्टिन लूथर जैसे प्रसिद्ध सुधारकों की श्रेणी में गिना जा सकता है। ए०सी० सरकार तथा के०के० दत्त का मानना है कि राजा राम मोहन राय के आधुनिक भारतवर्ष में राजनीति जागृति एवं धर्म सुधार का आध्यात्मिक युग प्रारम्भ किया। वे एक युग प्रवर्तक थे। इसलिए डॉ० जकारिया ने उन्हें सुधारकों का आध्यात्मिक पिता कहा है। बहुत से विद्वान उन्हें आधुनिक 'भारत का पिता' तथा 'नये युग का अग्रदूत' मानते हैं। राजा राममोहन राय ने भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग की। 1823 ई० में प्रेस आर्डिनेन्स के द्वारा समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इस पर राजा राम मोहन राय ने इस आर्डिनेन्स का प्रबल विरोध किया और उसे रद्द करवाने का हर सम्भव प्रयास किया। इसके पश्चात् उन्होंने ज्यूरी एक्ट एक आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। डॉ० आर०सी० मजूमदार के शब्दों में "राजा राम मोहन राय" पहले भारतीय थे जिन्होंने अपने देशवासियों की कठिनाई तथा शिकायतों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया और भारतीयों को संगठित होकर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का मार्ग दिखलाया। उन्हें आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत होने का भी श्रेय दिया जा सकता है।"

राजा राममोहन राय के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान सुधारक हुए। जिन्होंने 1875 ई० में बम्बई में 'आर्य समाज' की नींव रखी। आर्य समाज एक साथ ही धार्मिक और राष्ट्रीय नवजागरण का आन्दोलन था इसने भारत और हिन्दू जाति को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी दयानन्द ने न केवल हिन्दू धर्म तथा समाज से व्याप्त बुराइयों का विरोध किया अपितु अपने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार भी किया है। उन्होंने ईसाई धर्म की कमियों पर प्रकाश डाला और हिन्दुत्व के महत्त्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान अपनी सभ्यता व संस्कृति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को फिर से स्थापित किया और यह बताया कि हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संस्कृति है। उनका मानना है कि वेद ज्ञान के भण्डार हैं और संसार में सच्चा हिन्दू धर्म है, जिसके बल पर भारत विश्व में अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर गुरु बन सकता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में निर्भीकतापूर्वक लिखा है "विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज्य की तुलना में कभी भी अच्छा नहीं हो सकता।" एच०बी० शारदा ने लिखा है कि "राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति स्वामी दयानन्द का मुख्य उद्देश्य था। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया और अपने देशवासियों को विदेशी माल के प्रयोग के स्थान पर स्वदेशी माल के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया।" श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लिखा है "स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सबसे पहले यह नारा लगाया था, कि भारत भारतीयों के लिए है।"

स्वामी विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। उन्होंने अंग्रेजों को यह बता दिया कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से महान् है और वे बहुत कुछ भारतीय संस्कृति से सीख सकते हैं। इस प्रकार उन्होंने भारत में सांस्कृतिक चेतना जागृत की तथा यहाँ के लोगों को सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारत का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों की राजनीतिक स्वाधीनता का समर्थन किया जिससे राष्ट्रीय भावनाओं को असाधारण बल मिला। निवेदिता के अनुसार "स्वामी विवेकानन्द भारत का नाम लेकर जीते थे। वे मातृभूमि के अनन्य भक्त थे और उन्होंने भारतीय युवकों को उसकी पूजा करना सिखाया।"

थियोसोफिकल सोसाइटी की नेता श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीमती एनी बेसेन्ट एक विदेशी महिला थीं, जब उसके मुँह से भारतीयों ने हिन्दू धर्म की प्रशंसा सुनी तो वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। जब उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

सारांश यह है कि 19वीं शताब्दी के सुधारकों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न की। उन्होंने ऐसा वातावरण तैयार किया जिसके कारण भारत स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर सका। ए०आर० देसाई ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "ये

आन्दोलन कम अधिक मात्रा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष थे और उनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।''

2. **भारत की राजनीतिक एकता**—1707 ई० के बाद भारत में राजनीतिक एकता का लोप हो चुका था किन्तु अंग्रेजों के समय लगभग सम्पूर्ण भारत का प्रशासन एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन आ गया था। समस्त साम्राज्य में एक जैसे कानून एवं नियम लागू किये गये। समस्त भारत पर ब्रिटिश सरकार का शासन होने से भारत एकता के सूत्र में बँध गया। इस प्रकार देश में राजनीतिक एकता स्थापित हुई। यातायात के साधनों तथा अंग्रेजी शिक्षा ने इस एकता की नींव को और अधिक ठोस बना दिया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से भारत का एक रूप हो गया। डॉ० के०वी पुन्निया के शब्दों में ''हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत एक सरकार के अधीन था और इसने जनता में राजनीतिक एकता को जन्म दिया।''
3. **ऐतिहासिक अनुसन्धान**—विदेशी विद्वानों की खोजों ने भी भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को बल प्रदान किया। सर विलियम जेम्स, मैक्समूलर, जैकोवी कोल ब्रुक, ए०वी० कीथ, बुनर्फ आदि विदेशी विद्वानों ने भारत की संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और उनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। अंग्रेजों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देने से संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार हुआ। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद करने के पश्चात् यह बताया कि ये ग्रन्थ संसार की सभ्यता की अमूल्य निधियाँ हैं। पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय कलाकृतियों की खोज करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है कि भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीन और श्रेष्ठ संस्कृति है। इससे विश्व के सम्मुख प्राचीन भारतीय गौरव उपस्थित हुआ। जब भारतीयों को यह पता चला कि पश्चिम के विद्वान भारतीय संस्कृति को इतना श्रेष्ठ बताते हैं, तो उनके मन में आत्महीनता के स्थान पर आत्मविश्वास की भावनाएँ जागृत हुईं और उन्होंने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीयों को उनकी संस्कृति की महानता के ज्ञान से अवगत कराया।
इन अनुसन्धानों ने भारतीयों के मन में एक नया ज्ञान और उत्साह जागृत किया। इससे उनके मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि फिर हम पराधीन क्यों हैं? डॉ० आर०सी० मजूमदार के कथनानुसार, ''यह खोज भारतीयों के मन में चेतना उत्पन्न करने में असफल नहीं हो सकती थी, जिसके परिणामस्वरूप उसके हृदय राष्ट्रीयता की भावना व देश भक्ति से भर गये।'' श्री० के०एम० पाणिक्कर लिखते हैं कि इन ऐतिहासिक अनुसन्धान ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया और उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना सिखलाया। इन खोजों से अपने भविष्य के सम्बन्ध में भारतीय आशावादी बन गये।
4. **पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव**—भारतीय राष्ट्रीय धारा में पश्चिमी शिक्षा ने सराहनीय योगदान दिया। 1825 ई० में लार्ड मैकाले के सुझाव पर भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को निश्चित किया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय चेतना को जड़ से नष्ट करना था। रजनी पाम दत्त ने सही लिखा है, 'भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किये जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्णरूप से लोप हो जाए और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हों, किन्तु रुचि विचार शब्द और बुद्धि से अंग्रेज हो जाए।'' इस उद्देश्य में अंग्रेजों को काफी सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई, क्योंकि शिक्षित भारतीय लोग अपनी संस्कृति को भुलकर पाश्चात्य संस्कृति का गुणगान करने लगे। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा से भारत को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ। इससे भारत में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। अत: पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए एक वरदान सिद्ध हुई।
अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण भारतीय विद्वानों ने पश्चिमी देशों के साहित्य का अध्ययन किया। जब उन्होंने मिल्टन, बर्क, हरबर्ट, स्पेन्सर, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि विचारकों की कृतियों का ज्ञान प्राप्त हुआ, तो उनमें स्वतन्त्रता की भावना जागृत हुई। भारतीयों पर पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव का वर्णन करते हुए ए०आर० देसाई लिखते हैं कि ''शिक्षित भारतीयों ने अमेरिका, इटली और आयरलैण्ड के स्वतन्त्रता संग्रामों के सम्बन्ध में पढ़ा। उन्होंने ऐसे लेखकों की रचनाओं का अनुशीलन किया, जिन्होंने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सिद्धान्तों का प्रचार किया है। ये शिक्षित भारतीय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक और बौद्धिक नेता हो गये।'' इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि राजा राममोहन राय, दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, वोमेश चन्द्र बनर्जी आदि नेता अंग्रेजी शिक्षा की ही देन हैं। अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीय नेताओं के दृष्टिकोण का विकास हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक भारतीय

TOUCH 'n PASS

इंग्लैण्ड गए और वहाँ के स्वतन्त्र वातावरण से बहुत प्रभावित हुए। भारत आने के पश्चात् उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। क्योंकि वे यूरोपीय देशों की भाँति अपने देश में भी स्वतन्त्रता चाहते थे। श्री गुरमुख निहालसिंह लिखते हैं कि "इंग्लैण्ड में रहने से उन्हें स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता था, वे स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का मूल्य समझ जाते थे तथा उनके मन में जमी हुई दासता की मनोवृत्ति घर कर जाती थी।"

अंग्रेजी भाषा लागू होने से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती थी। इसलिए वे एक-दूसरे के विचारों को नहीं समझ सकते थे। सम्पूर्ण भारत के लिए एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता थी, जिसे अंग्रेज सरकार ने अंग्रेजी भाषा लागूकर पूरा कर दिया। अब विभिन्न प्रान्तों के निवासी आपस में विचार विनिमय करने लगे और इसने उन्हें राष्ट्र के लिए मिलकर कार्य करने की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। सर हेनरी काटन के अनुसार, "अंग्रेजी माध्यम से और पाश्चात्य सभ्यता के ढंग पर शिक्षा ने ही भारतीय लोगों की विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के सूत्र में आबद्ध करने का कार्य किया। एकता पैदा करने वाला अन्य कोई तत्त्व सम्भव नहीं था, क्योंकि बोली का भ्रम एक अविच्छिन्न बाधा थी। श्री० के०एम० पणिक्कर लिखते हैं, "सारे देश की शिक्षा पद्धति और शिक्षा का माध्यम एक होने से भारतीयों की मनोदशा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके विचारों, भावनाओं और अनुभूतियों की एक रसता होनी कठिन न रही। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीयता की भावना दिन-प्रतिदिन प्रबल होती गई।"

सारांश यह है कि पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए वरदान सिद्ध हुई। डॉ० जकारिया ने ठीक ही लिखा है, "अंग्रेजों ने 125 वर्ष पूर्व भारत में शिक्षा का जो कार्य आरम्भ किया था, उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारतवर्ष में नहीं किया है।" इसलिए प्राय: यह कहा जाता है कि भारतीय राष्ट्रीयता की भावना पश्चिमी शिक्षा का पोषण शिशु था। इस प्रकार पश्चिमी शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना में नवजीवन का संचार किया। लार्ड मैकाले ने 1833 ई० में कहा, "अंग्रेजी इतिहास से वह गर्व का दिन होगा जब पाश्चात्य ज्ञान से शिक्षित भारतीय पाश्चात्य संस्थाओं की माँग करेंगे।" उसका यह स्वप्न इतनी जल्दी साकार हो जाएगा। इसकी कल्पना भी उसने कभी न की थी।

5. **भारतीय समाचार पत्र तथा साहित्य**—मुनरो ने लिखा है, "एक स्वतन्त्र प्रेस और विदेशी राज एक दूसरे के विरुद्ध हैं और ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते।" भारतीय समाचार पत्रों पर यह बात खरी उतरती है। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति तथा विकास में भारतीय साहित्य तथा समाचार पत्रों का भी काफी हाथ था। इनके माध्यम से राष्ट्रवादी तत्त्वों को सतत् प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा। उन दिनों भारत में विभिन्न भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनमें राजनीतिक अधिकारों की माँग की जाती थी। इसके अतिरिक्त उनमें ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति की भी कड़ी आलोचना की जाती थी। उस समय प्रसिद्ध समाचार पत्रों में संवाद कौमुदी, बाम्बे समाचार (1882), बंगदूत (1831), रस्तगुफ्तार (1851), अम तबजार पत्रिका (1868), ट्रिब्यून (1877), इण्डियन मिरर, हिन्दू, पौट्रियाट, बंगलौर, सोमप्रकाश, कामरेड, न्यू इण्डियन केसरी, आर्य दर्शन एवं बन्धवा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फिलिप्स के अनुसार, "1871 ई० में देशी भाषा में बम्बई प्रेसीडेन्सी और उत्तर भारत में 62 तथा बंगाल और दक्षिण भारत में क्रमश: 28 और 20 समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनके नियमित पाठकों की संख्या एक लाख थी।" 1877 ई० तक देश में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की संख्या 644 तक जा पहुँची थी जिनमें अधिकतर देशी भाषाओं के थे। इन समाचार पत्रों में ब्रिटिश सरकार की अन्याय पूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की जाती थी, ताकि जन साधारण में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न हो। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलता था। इन पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1878 ई० में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पास किया, जिसके द्वारा भारतीय समाचार पत्रों को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया। इस एक्ट ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर को तेज कर दिया। भारतीय साहित्यकारों ने भी देश की भावना को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'वन्देमातरम्' के रूप में देशवासियों को राष्ट्रीय गान दिया। इनसे भारतीयों में देश-प्रेम की भावना जागृत हुई। मराठी साहित्य में शिवाजी का मुगलों के विरुद्ध संघर्ष विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष बताया गया। श्री हेमचन्द्र बनर्जी ने अपने राष्ट्रीय गीतों द्वारा स्वाधीनता की भावना को प्रोत्साहन दिया। श्री बिपिन चन्द्र पाल लिखते हैं, "राष्ट्रीय प्रेम तथा जातीय स्वाभिमान को जागृत करने में श्री हेमचन्द द्वारा रचित कविताएँ अन्य कवियों की ऐसी कविताओं से कहीं अधिक प्रभावोत्पादक थी।" इसी प्रकार केशव चन्द्र सेन, रविन्द्र नाथ टैगोर, आर०सी० दत्त, रानाडे, दादा भाई नौरोजी आदि ने अपने विद्वतापूर्ण साहित्य के माध्यम से भारत में राष्ट्रीय

TOUCH 'n PASS

भावना को जागृत किया। इन्द्र विद्या वाचस्पति के अनुसार, "इसी समय माइकेल मधुसूदन दत्त ने बंगाल में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में, नर्मद ने गुजराती में, चिपलुणकर ने मराठी में, भारती ने तमिल में तथा अन्य अनेक साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया। इन साहित्यिक कृतियों ने भारतवासियों के हृदयों में सुधार एवं जागृति की अपूर्व उमंग उत्पन्न कर दी।"

6. **भारत का आर्थिक शोषण**—मि० गैरेट के अनुसार, "राष्ट्रीयता में शिक्षित वर्ग का अनुराग हमेशा ही कुछ हद तक धार्मिक और कुछ हद तक आर्थिक कारणों से हुआ है।" भारतीय राष्ट्रीयता पर यह बात पूरी उतरती है। ब्रिटिश सरकार की आर्थिक शोषण की नीति ने भारतीय उद्योगों को बिल्कुल नष्ट कर दिया था। यहाँ के व्यापार पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया था। भारतीय वस्तुओं पर जो बाहर जाती थी, भारी कर लगा दिया गया और भारत में आने वाले माल पर ब्रिटिश सरकार ने आयात पर बहुत छूट दे दी। इसके अतिरिक्त अंग्रेज भारत से कच्चा माल ले जाते थे, इंग्लैण्ड से मशीनों द्वारा निर्मित माल भारत में भेजते थे, जो लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धों के निर्मित माल से बहुत सस्ता होता था। परिणामस्वरूप भारतीय बाजार यूरोपियन माल से भर गये एवं कुटीर उद्योग-धन्धों का पतन हो जाने से करोड़ों की संख्या में लोग बेरोजगार हो गये। भारत का धन विदेशों में जा रहा था अत: भारत दिन-प्रतिदिन निर्धन होता गया। इसलिए 1880 ई० में सर विलियम डिग्वी ने लिखा था कि करीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय पर भी भरपेट अन्न नहीं मिलता, इस अध:पतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती है। भारतीयों की आर्थिक दशा के बारे में आगलि के ड्यूक ने जो 1875-76 में भारतीय सचिव थे, लिखा है "भारत की जनता में जितनी दरिद्रता है तथा उसके रहन-सहन का स्तर जिस तेजी से गिरता जा रहा है। इसका उदाहरण पश्चिमी जगत में कहीं नहीं मिलता है।"

उद्योगों एवं दस्तकारी के पतन के कारण इनमें कार्यरत व्यक्ति कृषि की ओर मुखातिब हुए। जिससे भूमि पर दबाव बहुत अधिक बढ़ गया। परन्तु सरकार ने कृषि के वैज्ञानिक ढंग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जिसके कारण किसानों की दशा इतनी खराब हो गई कि 75% व्यक्तियों को पेटभर खाना भी नसीब नहीं होता था। अचानक फूट पड़ने वाले अकालों ने उनकी स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया। विलियम हण्टर ने लिखा है, "ब्रिटिश साम्राज्य में रैयत ही सबसे अधिक दयनीय है, क्योंकि उनके मालिक ही उनके प्रति अन्यायी है।" फिशर के शब्दों में "लाखों भारतीय आधा पेट भोजन पर जीवन बसर कर रहे हैं। भारतीयों के शोषण के बारे में डी०ई० वाचा ने लिखा है, "भारतीयों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश शासन काल में अधिक बिगड़ी थी। चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में खाना खाकर सन्तुष्ट रहना पड़ता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूखे किसानों से भी कर प्राप्त करता था तथा वहाँ पर अपना माल भेजकर लाभ कमाता था।

सारांश यह है कि अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के विरुद्ध भारतीय जनता में असन्तोष था। वह इस शोषण से मुक्त होना चाहती थी। इसलिए भारतीयों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। गुरमुख निहाल सिंह के शब्दों में "इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि बिगड़ती आर्थिक दशा तथा सरकार की राष्ट्र विरोधी आर्थिक नीति का अंग्रेज विरोधी विचारधारा तथा राष्ट्रीय भावना को जगाने में काफी हाथ था।"

7. **जाति विभेद नीति**—1857 ई० के विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों ने जाति विभेद की नीति अपनाई। इस नीति के अनुसार वे भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। गुरुमुख निहाल सिंह के अनुसार, "विद्रोह के बाद भारत में आने वाले अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारतीयों के बारे में विभिन्न धारणाएँ होती थी। वे मंच के तत्कालीन दास्य चित्रों के अनुसार भारतीयों को ऐसा जन्तु समझते थे जो आधा वनमानुष और आधा नीग्रो था, जिसे केवल भय द्वारा ही समझाया जा सकता था और जिसके लिए नरनल नील तथा उसके साथियों का घृणा और आतंक का व्यवहार ही उपयुक्त था।" 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने सम्पर्क कम कर दिया। उनके निवास स्थान भारतीयों के निवास स्थान से बिल्कुल अलग थे। वे भारतीयों को काले लोग कहकर घृणा करते थे। होटल, क्लब, पार्क आदि स्थानों पर अंग्रेज भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। इस कारण अंग्रेजों ने रंग भेद की नीति के आधार पर भारतीयों पर अनेक अत्याचार किये। गैरेट ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "यूरोपियनों की जाति विभेद नीति तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित थी।" प्रथम एक यूरोपियन का जीवन

अनेक भारतीयों के बराबर है, द्वितीय, भारतीय केवल भय एवं दण्ड की भाषा को ही समझ सकते हैं एवं तृतीय, यूरोपियन भारत में लोक हित के दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि निजी स्वार्थ सिद्धि हेतु आये थे।''

न्याय के मामले में भी जाति विभेद को स्थान दिया जाता था। एक ही अपराध के लिए भारतीयों व अंग्रेजों के लिए अलग-अलग दण्ड निर्धारित थे। अंग्रेजों ने अनेक भारतीयों की हत्याएँ कर डाली, किन्तु उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में मॉरीसन ने लिखा है, ''यह एक महासत्य है जिसे छिपाया नहीं जा सकता कि अंग्रेजों द्वारा भारतीयों की हत्या की जाने की घटना एक दो नहीं है। अमृत बाजार पत्रिका के एक अंक (11 अगस्त, 1882) में तीन घटनाओं का जिक्र है, जिनमें हत्यारों को पूरी कानूनी सजा नहीं मिली। यूरोपियनों के मुकदमों में शहरों से ज्यूरी बुलाये जाते थे। उनमें विजेता जाति का होने का अहंकार सबसे ज्यादा है, उनकी नैतिक भावना इस बात की अनुमति नहीं देती कि एक अंग्रेज को किसी भारतीय की हत्या के अपराध में अपनी जान देनी पड़े।''

अंग्रेजों की इस जाति भेदभाव की नीति का भारतीयों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। अब उनके हृदय में ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। इस तथ्य से राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से संचार हुआ। गैरेट ने सही लिखा है, ''भारतीय राष्ट्रीयता की बढ़ोत्तरी में उपरोक्त कटुता की भावना एक बहुत बड़ा कारण थी।''

8. **सरकारी नौकरियों में भारतीयों के साथ पक्षपात**—1833 ई० के चार्टर अधिनियम और 1858 ई० की महारानी विक्टोरिया की घोषणा में कहा गया था कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर ही की जाएगी। भारतीय तथा यूरोपियनों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाएगा, लेकिन व्यवहार में इस नीति का पालन करने के स्थान पर इसे भंग ही कर दिया गया।

अंग्रेजी शिक्षा के कारण, वकील, डॉक्टर और अध्यापक तथा नौकरी करने वालों का एक वर्ग उत्पन्न हुआ। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार का भारतीयों पर से विश्वास समाप्त हो गया था। अत: वे पढ़े लिखे भारतीयों को सरकारी नौकरी नहीं देना चाहती थी, इसलिए उनमें असन्तोष बढ़ा। भारतीयों को उच्च पदों विशेष तथा 'भारत नागरिक सेवा' (I.C.S.) से अलग रखने के लिए विधिवत् प्रयास किये गये। इस सेवा में प्रवेश की आयु 21 वर्ष थी। इसकी परीक्षा इंग्लैण्ड में अंग्रेजी भाषा में होती थी। किसी भी भारतीय द्वारा ऐसी परीक्षा को पास करना अत्यन्त कठिन था। इसके बावजूद भी अगर कोई भारतीय सफल हो जाता था, तो उसे किसी-न-किसी बहाने से नौकरी में नहीं लिया जाता था। उदाहरणस्वरूप 1869 ई० में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने I.C.S. की परीक्षा पास कर ली परन्तु ब्रिटिश सरकार ने सेवा में प्रवेश करने के बाद भी मामूली-सी गलती पर उन्हें नौकरी से हटा दिया था। इसी प्रकार 1871 ई० में अरविन्द घोष ने इस परीक्षा को पास कर लिया। परन्तु उनकी नियुक्ति नहीं की गई, क्योंकि वे घोड़े की सवारी में प्रवीण नहीं थे। ब्रिटिश अधिकारी भारतीयों को उच्च पदों से वंचित रखने के लिए नये-नये बहाने ढूँढ़ते थे।

सन् 1871 ई० में I.C.S. में प्रवेश की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी गई, ताकि भारतीय इस प्रतियोगिता में भाग न ले सके। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने ब्रिटिश अन्याय का विरोध करने के लिए 1876 ई० में 'इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की, किसे कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्था कहा जा सकता है। बनर्जी ने इस कार्य का विरोध करने के लिए एवं राष्ट्रीय जनमत को जागृत करने हेतु सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। इससे अंग्रेज विरोधी आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला। श्री बनर्जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ''मेरे मामलों ने भारतीयों के हृदय में भारी क्षोभ उत्पन्न कर दिया, उनमें यह विचार फैल गया कि यदि मैं भारतीय न होता तो मुझे इतनी कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ती।''

9. **यातायात तथा संचार के साधनों का विकास**—यातायात तथा संचार के साधनों के विकास में भी राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ब्रिटिश सरकार ने देश में रेलों तथा सड़कों का जाल बिछा दिया। डाक, तार, टेलीफोन आदि की व्यवस्था हुई। इसके पीछे अंग्रेज सरकार का मुख्य उद्देश्य यह था कि विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजी सेनाएँ शीघ्रता से भेजी जा सकेगी एवं दूर-दूर के प्रान्तों की सूचना शीघ्र प्राप्त हो जाएगी। इस विकास से भारतीयों को काफी लाभ हुआ। अब उनके लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना सुलभ हो गया। देश के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के बीच दूरी कम हो गई, वे एक दूसरे के निकट आने लगे। उनका आगामी सम्पर्क बढ़ा और दृष्टिकोण व्यापक हुआ। समाचार पत्र देश के दूर-दूर के भागों में पहुँचने लगे। राष्ट्रवादियों का मिलना तथा पत्र व्यवहार करना भी

TOUCH 'n PASS

आसान हो गया। अब वे एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण कर आन्दोलन को और अधिक उग्र बनाने लगे, जिनसे जन साधारण में जागृति आई। परिणामस्वरूप एकता की भावना अधिक प्रबल हो गई और राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्राप्त हो गया। गुरुमुख निहाल सिंह के शब्दों में "संचार के इन साधनों ने सारे देश को एक कर दिया और भौगोलिक एकता एक मूर्तरूप वास्तविकता में बदल दिया।"

10. **विदेशी आन्दोलन का प्रभाव**—डॉ० आर०सी० मजूमदार ने लिखा है कि 19वीं शताब्दी में यूरोप में जो स्वाधीनता संग्राम लड़े गये, उन्होंने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को काफी प्रभावित किया। फ्रांस की 1830 ई० एवं 1848 ई० की क्रान्ति ने भारतीयों में बलिदान की भावना जागृत की। इटली तथा यूनान की स्वाधीनता ने उनके उत्साह में असाधारण वृद्धि की। आयरलैण्ड भी अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था, इससे भी भारतीय जनता काफी प्रभावित हुई। इटली, जर्मनी, रुमानिया और सर्किया के राजनीतिक आन्दोलन, इंग्लैण्ड से सुधार कानूनों का पारित होना एवं अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम आदि ने भी भारतीयों को उत्साहित किया तथा उनमें साहस पैदा किया। परिणामस्वरूप वे स्वाधीनता प्राप्त करने के संघर्ष में जुट गये। सारांश यह है कि विदेशी आन्दोलनों ने भारतीयों में देशभक्ति और देशप्रेम की भावना को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

प्र.2. भारत में राष्ट्रवाद के विकास में लार्ड लिटन की अन्यायपूर्ण नीति एवं ईल्बर्ट बिल पर विवाद की विवेचना कीजिए।
Discuss on the unjust policy of Lord Lytton and Ilbert bill in the development of the nationalism in India.

उत्तर

लार्ड लिटन की अन्याय पूर्ण नीति
(Unjustful Policy of Lord Litton)

लार्ड लिटन (1876-1880) की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण राष्ट्रीय असन्तोष आरम्भ हुआ। परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ। इस तथ्य की पुष्टि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के इस कथन से होती है, "कभी-कभी बुरे शासक की राजनीतिक प्रगति के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। लार्ड लिटन ने शिक्षित समुदाय में उस सीमा तक नये जीवन की लहर फूँक दी। जो कि कई वर्षों के आन्दोलन से सम्भव नहीं थी।" लार्ड लिटन ने भारत में निम्न अत्याचार किये—

1. **भारतीय लोक सेवा की आयु में कमी**—1876 ई० में ब्रिटिश सरकार ने इण्डियन सिविल सर्विस में सम्मिलित होने की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी, ताकि भारतीय इस परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकें। इसके विरुद्ध भारतीयों में तीव्र गति से असन्तोष फैला। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 'इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की, जिसने उसके विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया। अन्ततः सरकार को मजबूर होकर आयु सीमा पूर्ववत करनी पड़ी।
2. **दक्षिण में अकाल और शाही दरबार (1877)**—लार्ड लिटन ने जिस समय दिल्ली में एक विशाल दरबार का आयोजन किया, उस समय दक्षिण भारत में भयानक अकाल पड़ जाने से हजारों मनुष्य मौत के मुँह में जा रहे थे। किन्तु लिटन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत उसने महारानी विक्टोरिया के भारत साम्राज्ञी की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक शानदार दरबार का आयोजन किया। इस शान-शौकत पर पानी की तरह पैसा बहाया गया। इस आयोजन में भारतीयों के असन्तोष ने आग में घी का काम किया। भारत के समाचार पत्रों में इसकी कटु आलोचना की गई। कलकत्ते के एक समाचार पत्र ने इस समारोह की आलोचना करते हुए यहाँ तक लिख दिया, "जब रोम जल रहा था नीरो अपनी बाँसुरी बजा रहा था।" सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एक प्रतिनिधि की हैसियत से इस समारोह में भाग लिया था। उसी समय उसके मस्तिष्क में यह भावना जागृत हुई, "यदि एक स्वेच्छाचारी वायसराय की प्रशंसा के लिए देश के राजा तथा अमीर-उमराओं को एकत्र किया जा सकता है, तो देशवासियों को न्यायसंगत ढंग से, स्वेच्छाचारियों को रोकने के लिए क्यों नहीं संगठित किया जा सकता।" इस समय भारतीय लोग अन्न के अभाव में मृत्यु के ग्रास बन रहे थे और ब्रिटिश सरकार ने भारत से 80 लाख पौण्ड गेहूँ इंग्लैण्ड को निर्यात किया। इससे अधिक भारतीयों की पीड़ा पहुँचाने के लिए और कर भी क्या सकते थे।

TOUCH 'n' PASS

3. **अफगानिस्तान पर आक्रमण**—लॉर्ड लिटन ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को कोई फायदा नहीं हुआ। इस युद्ध में दो करोड़ स्टर्लिंग व्यय हुआ जो भारत की निर्धन जनता से वसूल किया गया। भारतीयों में लिटन की इस नीति के विरुद्ध काफी असन्तोष फैला।
4. **शास्त्र अधिनियम (1878)**—लॉर्ड लिटन ने 1878 ई० में एक शस्त्र अधिनियम (Arms Act) पारित किया, जिसके अनुसार भारतीयों को हथियार रखने के लिए लाइसेन्स रखना पड़ता था। परन्तु अंग्रेजों के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इस अधिनियम ने भारतीयों को अधिक उत्तेजित कर दिया।
5. **वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (1878 ई०)**—लॉर्ड लिटन की अन्यायपूर्ण नीति का समाचार पत्रों ने कड़ा विरोध किया। इससे परेशान होकर उसने 1878 ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पारित कर दिया, जिससे भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र पर कठोर नियन्त्रण स्थापित हो गया। दूसरे शब्दों में, इस अधिनियम से समाचार पत्रों की स्वाधीनता को नष्ट कर दिया गया। अब किसी भी समाचार को प्रकाशित करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। इस अधिनियम की इंग्लैण्ड की संसद में भारी आलोचना हुई और भारत में भी सर्वत्र आलोचना हुई। बढ़ते हुए आन्दोलन से बाध्य होकर इस कानून को रद्द करना पड़ा।
6. **आर्थिक नीति**—लॉर्ड लिटन की आर्थिक नीति, असन्तोष उत्पन्न करने वाली थी। उसने लंकाशायर के उद्योगपतियों को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट करने के लिए विदेशी सूती कपड़े से आयात कर हटा दिया, जिससे भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को बहुत हानि पहुँची। इससे भारत सरकार की आय के बहुत बड़े साधन का सफाया हो गया और भारत में बेरोजगारी की समस्या उठ खड़ी हुई।

   लॉर्ड लिटन के इन कार्यों के परिणामस्वरूप भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष बहुत उग्र हो गया। सर विलियम बैडरबर्न ने ब्लंट से कहा था "लॉर्ड लिटन के शासनकाल के अन्त में स्थिति विद्रोह की सीमा तक पहुँच गई थी।"

इल्बर्ट बिल पर विवाद (Controversy on Illbert Bill)

1880 ई० में लॉर्ड लिटन के स्थान पर लॉर्ड रिपन गवर्नर जनरल बनकर आये। उन्होंने प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक सुधार किये। इसके पश्चात् न्याय व्यवस्था में सुधार करने का निश्चय किया। इस समय न्याय के क्षेत्र में जाति विभेद विद्यमान था। भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियन अपराधियों के अभियोग की सुनवाई का अधिकार प्राप्त नहीं था, जबकि अंग्रेज न्यायाधीशों को यह अधिकार प्राप्त था। इसलिए रिपन ने अपनी कौंसिल के विधि सदस्य मि० सी०पी० इल्बर्ट को इस सम्बन्ध में एक विशेष विधेयक प्रस्तुत करने को कहा, इस पर 1883 ई० में इल्बर्ट ने एक बिल पेश किया, इसे इल्बर्ट बिल कहते हैं। इसमें भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियनों के विरुद्ध अभियोग की सुनवाई करने और दण्डित करने के अधिकार देने की व्यवस्था थी। लेकिन यह विधेयक एक भीषण विवाद का कारण बन गया।

भारत में रहने वाले अंग्रेजों ने इल्बर्ट विधेयक को अपना जातीय अपमान समझा। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण भारत और इंग्लैण्ड में अंग्रेजों ने संगठित होकर इसका विरोध किया तथा इसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया। उन्होंने कहा, "काले लोग गोरों को लम्बी-लम्बी सजाएँ देंगे तथा उनकी स्त्रियों को अपने घर में रखेंगे।" यूरोपियनों ने इस विधेयक के खिलाफ संगठित रूप से आन्दोलन चलाने के लिए 'यूरोपियन रक्षा संघ' की स्थापना की और लगभग एक लाख पचास हजार रुपये चन्दा इकट्ठा किया। विधेयक की निन्दा करने हेतु विविध स्थानों पर सभाएँ आयोजित की गईं। विधेयक का विरोध चरम सीमा पर पहुँच गया। सर हेनरी वाटन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "कलकत्ते के कुछ अंग्रेजों ने सरकारी भवन के सन्तरियों को वश में करके लॉर्ड रिपन को बाँधकर वापिस इंग्लैण्ड भेजने का षड्यन्त्र रचा और यह सब बंगाल के गवर्नर तथा पुलिस कमिश्नर की जानकारी में हुआ।" अंग्रेजों के संगठित आन्दोलन के समक्ष रिपन को झुकना पड़ा और उसे इस विधेयक में संशोधन करना पड़ा। इसके अनुसार अब यह निश्चित किया गया कि भारतीय न्यायाधीश तथा सेशन जज यूरोपियन अधिकारियों के मुकदमों पर अपना निर्णय दे सकेंगे। किन्तु ये यूरोपियन अधिकारी अपने मुकदमों में ज्यूरी बैठने की माँग कर सकेंगे। जिसमें कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपियन होंगे। इस संशोधन से इस विधेयक की मूल भावना ही समाप्त हो गई।

इस घटना ने भारतीय जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में "कोई भी स्वाभिमानी भारतीय अब आँख मूँदकर सुस्त नहीं बैठा रह सकता था। जो इल्बर्ट विवाद के महत्त्व को समझते थे, उनके लिए यह देशभक्ति की महान पुकार

TOUCH 'n PASS

थी।'' वास्तव में इल्बर्ट बिल के विरोधी आन्दोलन ने भारत को संगठित करने के लिए प्रेरित किया। सर हेनरी काटन के शब्दों में ''इस विधेयक के विरोध में किये गये यूरोपियन आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीय विचारधारा को जितनी एकता प्रदान की उतनी तो विधेयक पारित होकर भी नहीं कर सकता था।'' यूरोपियनों के आन्दोलन से प्रभावित होकर भारतीयों ने भी राष्ट्रीय संस्था के गठन का निश्चय किया। परिणामस्वरूप कांग्रेस की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। भारतीयों ने महसूस किया कि यदि हम भी अंग्रेजों की भाँति संगठित होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध करे, तो हमें स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। श्री ए०सी० मजूमदार लिखते हैं, ''इस आन्दोलन ने भारतीयों को यह भी अनुभव करा दिया कि यदि राजनीतिक प्रगति वांछनीय है, तो केवल एक राष्ट्रीय सभा द्वारा ही सम्भव है। इस सभा का सम्बन्ध विभिन्न प्रान्तों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति से ही होना चाहिए।''

राष्ट्रवाद के जन्म के लिए कारणों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में इसका जन्म ब्रिटिश सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं—विकासवादी और प्रतिक्रियावादी। लेकिन इन दोनों ही स्वरूपों ने राष्ट्रवाद के जन्म में सहायता प्रदान की। जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है ब्रिटिश शासन में ही भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हुई, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार हुआ और यातायात के साधनों का विकास हुआ। इनसे यदि एक ओर ब्रिटिश शासन को लाभ हुआ तो दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रवाद के जन्म में भी योगदान मिला।

ब्रिटिश शासन के विकासशील स्वरूप ने यदि राष्ट्रवाद के जन्म के लिए अप्रत्यक्ष रूप से योगदान किया तो उसके प्रतिक्रियावादी स्वरूप ने इस प्रक्रिया को तेज किया। ब्रिटिश शासन द्वारा भारत का आर्थिक शोषण, भारतीयों के साथ भेद-भाव, उन्हें सरकारी नौकरियों में स्थान न मिलना, प्रेस का गला घोंटना, हथियार रखने या लेकर चलने पर रोक लगाना। साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए युद्ध लड़ना जैसे कामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश शासन भारत के हित में नहीं है। अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं का मत था कि भारत की आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण भारत में अंग्रेजी शासन है।

प्र.3. भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में उदारवादियों की क्या भूमिका रही? विवेचना कीजिए।
What was the role of the liberals in the development of Indian Nationalism? Discuss it.

उत्तर

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में उदारवादियों की भूमिका
(Role of Liberals in the Development of Nationalism in India)

राजनीतिक कार्य की विधियाँ

1905 तक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर उन लोगों का वर्चस्व था जिनको प्राय: नरमपंथी राष्ट्रवादी कहा जाता है। कानून की सीमा में रहकर सांविधानिक आन्दोलन और धीरे-धीरे व्यवस्थित तरीके से राजनीतिक प्रगति—इन शब्दों में नरमपंथियों की राजनीतिक कार्यपद्धति को संक्षेप में रखा जा सकता है। उनका विश्वास था कि अगर जनमत को उभारा और संगठित किया जाए और प्रार्थना-पत्रों, सभाओं, प्रस्तावों और भाषणों के द्वारा अधिकारियों तक जनता की माँगों को पहुँचाया जाए तो वे धीरे-धीरे एक-एक करके इन माँगों को पूरा करेंगे। इसलिए उनके राजनीतिक कार्य की दो दिशाएँ थीं। पहला, भारत की जनता में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए एक प्रतिस्पर्धी जनमत तैयार करना और जनता को राजनीतिक सवालों पर शिक्षित और एकताबद्ध करना। राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव और प्रार्थना-पत्र भी मूलत: इसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित थे। हालाँकि देखने में तो उनके स्मरण-पत्र और प्रार्थना-पत्र सरकार को सम्बोधित थे, लेकिन उनका असली उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित करना था। उदाहरण के लिए, जब 1891 में युवक गोखले ने पूना सार्वजनिक सभा द्वारा सावधानी के साथ तैयार करके भेजे गये एक स्मरण-पत्र के बाद सरकार द्वारा दिये गये दो पंक्तियों के उत्तर पर अपनी निराशा व्यक्त की तो न्यायिक रानाडे ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की—

''आप अपने देश के इतिहास में हमारे स्थान को नहीं समझते। ये स्मरण-पत्र कहने को सरकार के नाम से सम्बोधित हैं। वास्तव में ये जनता को सम्बोधित है ताकि वह जान सके कि इन विषयों पर कैसे विचार करना चाहिए। यह काम किसी परिणाम की आशा किये बिना अभी अनेक वर्षों तक चलाया जाना चाहिए, क्योंकि इस तरह की राजनीति इस देश के लिए बिल्कुल नई वस्तु है।''

दूसरे, आरम्भिक राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करना चाहते थे ताकि जिस प्रकार के सुधार राष्ट्रवादी द्वारा सुझाये गये थे उन्हें लागू किया जाए। नरमपंथी राष्ट्रवादियों का विश्वास था कि ब्रिटिश जनता और संसद भारत के साथ न्याय तो करना चाहती थी, लेकिन उन्हें यहाँ की वास्तविक स्थिति की जानकारी नहीं थी। इसलिए भारतीय जनमत को शिक्षित

करने के साथ-साथ नरमपंथी राष्ट्रवादी ब्रिटिश जनमत को शिक्षित करने के प्रयास भी कर रहे थे। इस उद्देश्य से उन्होंने ब्रिटेन में जमकर प्रचार कार्य किया। भारतीय पक्ष को सामने रखने के लिए प्रमुख भारतीयों के दल ब्रिटेन भेजे गये। 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति बनायी गई। इस समिति ने 1890 में इण्डिया नामक एक पत्रिका भी निकालनी आरम्भ की। दादाभाई नौरोजी ने अपने जीवन और आय का एक बड़ा हिस्सा इंग्लैण्ड में रहकर वहाँ की जनता में भारत की माँगों का प्रचार करने में लगा दिया।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अध्ययनकर्त्ता कभी-कभी भ्रम में पड़ जाते हैं, जब वे पाते हैं कि प्रमुख भारतीय नेता अंग्रेजों के प्रति वफादारी की बड़ी-बड़ी कसमें खाते थे। इन कसमों का अर्थ हरगिज यह नहीं है कि वे सच्चे देशभक्त नहीं थे या वे कायर लोग थे। उनका दिल से विश्वास था कि ब्रिटेन के साथ भारत का राजनीतिक सम्बन्ध बने रहना इतिहास के उस चरण में भारत के हित में था। इसलिए उनकी योजना अंग्रेजों को भगाने की नहीं बल्कि ब्रिटिश शासन का रूपान्तरण करके उसे राष्ट्रीय शासन के समान बनाने की थी। बाद में जब उन्होंने ब्रिटिश शासन की बुराइयों को और सुधार की राष्ट्रवादी माँगों को स्वीकार करने में सरकार की असफलता को समझा तो उनमें से कई ने ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी की कसम खाना बन्द करके भारत के लिए स्वशासन की माँग उठानी शुरू कर दी। इसके अलावा उनमें से कई केवल इसलिए नरमपंथी थे क्योंकि वे समझते थे कि विदेशी शासकों को खुलकर चुनौती देने का समय अभी नहीं आया था।

जनता की भूमिका (Role of People)

संकुचित सामाजिक आधार प्रारम्भिक राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियादी कमजोरी थी। अभी जनता में इस आन्दोलन की पैठ नहीं हुई थी। वास्तव में जनता में नेताओं की कोई राजनीतिक आस्था नहीं थी। सक्रिय राजनीतिक संघर्ष छेड़ने की समस्याओं का वर्णन करते हुए गोपालकृष्ण गोखले ने कहा कि "देश में विभाजन और उपविभाजन की एक अन्तहीन शृंखला है, जनता का अधिकांश भाग अज्ञान से भरा हुआ और विचार और भावना के पुराने तरीकों से कसकर चिपका हुआ है और यह जनता हर प्रकार के परिवर्तन की विरोधी है और परिवर्तन को समझती नहीं है।" इस प्रकार नरमपंथी नेताओं का विश्वास था कि औपनिवेशिक शासन के खिलाफ जुझारु जन-संघर्ष तभी छेड़ा जा सकता है जबकि भारतीय समाज के बहुविध तत्त्वों को एक राष्ट्र के सूत्र में बाँधा जा चुका हो। लेकिन वास्तव में यह तो वह संघर्ष था जिनके दौरान भारतीय राष्ट्र का निर्माण हो सकता था। जनता के प्रति इस गलत दृष्टिकोण का एक परिणाम हुआ कि राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भिक चरण में जनता की एक निष्क्रिय भूमिका ही रही। इससे राजनीतिक नरमी का जन्म हुआ। जनता के समर्थन के अभाव में वे जुझारु राजनीतिक उपाय नहीं अपना सकते थे। हम आगे देखेंगे कि बाद के राष्ट्रवादी लोग नरमपंथियों से ठीक उसी अर्थ में भिन्न थे।

फिर भी प्रारम्भिक राष्ट्रीय आन्दोलन के संकुचित सामाजिक आधार से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह उन्हीं सामाजिक वर्गों के संकुचित हितों तक सीमित था जो इसमें शामिल थे। इसके कार्यक्रम और इसकी नीतियों भारतीय जनता के सभी वर्गों के हितों से जुड़ी थीं और औपनिवेशिक वर्चस्व के खिलाफ उदीयमान भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करती थी।

सरकार का रवैया (Attitude of Government)

शुरू से ही ब्रिटिश अधिकारी उभरते हुए राष्ट्रवादी आन्दोलन के खिलाफ और राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति शंकालु थे। वायसराय डफरिन ने ह्यूम को यह सुझाव दिया कि कांग्रेस राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक मामलों को देखेगी और इस तरह उसने राष्ट्रीय आन्दोलन को दिशा भ्रष्ट करना चाहा। लेकिन कांग्रेस के नेताओं ने ऐसा परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया। लेकिन जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय कांग्रेस अधिकारियों के हाथों का खिलौना नहीं बन सकती और यह धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रवाद का केन्द्र बिन्दु बनती जा रही थी। अब ब्रिटिश अधिकारी खुलकर राष्ट्रीय कांग्रेस और दूसरे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं की आलोचना और निन्दा करने लगे। डफरिन से लेकर नीचे तक के सभी ब्रिटिश अधिकारी राष्ट्रवादी नेताओं को "बेवफा बाबू", "राजद्रोही ब्राह्मण" और "हिंसक खलनायक" कहने लगे। कांग्रेस को "राजद्रोह का कारखाना" कहा जाने लगा। डफरिन ने 1887 में एक सार्वजनिक भाषण में राष्ट्रीय कांग्रेस पर हमला किया और उसे 'जनता' के एक बहुत ही सूक्ष्म हिस्से' का प्रतिनिधि बताकर उसकी हँसी उड़ाई।

लॉर्ड कर्जन ने 1890 में विदेश सचिव को बतलाया कि "कांग्रेस का महल भरभरा रहा है और भारत में रहते हुए मेरी मुख्य महत्त्वाकांक्षा यह है कि मैं शान्ति के साथ इसे मरने में सहयोग दें सकूँ।" भारतीय जनता की बढ़ती एकता उनके शासन के लिए एक बड़ा खतरा है, यह महसूस करके अंग्रेज अधिकारियों ने "बाँटो और राज करो" की नीति को और बहुत जमकर लागू किया।

उन्होंने सैय्यद अहमद खान, बनारस के राजा शिवप्रसाद और दूसरे ब्रिटिश समर्थक व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया कि वे कांग्रेस के खिलाफ आन्दोलन चलाएँ। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में भी फूट डालने का काम किया। उन्होंने एक तरफ छोटी-छोटी छूटें देने दूसरी तरफ निर्मम दमन करने की नीति अपनाई। फिर भी अधिकारियों का यह विरोध राष्ट्रीय आन्दोलन का विकास रोकने में असफल रहा।

आरम्भिक राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल्यांकन (Evaluation of Initial National Movement)

कुछ आलोचकों का विचार है कि राष्ट्रवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रारम्भिक चरण में अधिक सफलता नहीं मिली। जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आन्दोलन छेड़े उनमें से बहुत थोड़े सुधार ही सरकार ने लागू किये। इस आलोचना में बहुत कुछ सच्चाई है। लेकिन आरम्भिक राष्ट्रीय आन्दोलन को असफल घोषित करना भी आलोचकों के लिए सही नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जो काम उन्होंने हाथ में लिए थे, उसकी तात्कालिक कठिनाइयों को देखते हुए इस आन्दोलन का इतिहास बहुत उज्ज्वल है। यह अपने समय की सबसे प्रगतिशील शक्ति का सूचक था। यह एक व्यापक राष्ट्रीय जागृति लाने तथा जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र के सदस्य होने की भावना जगाने में सफल रहा। इसने भारतीय को उनके साझे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक नीतियों से जुड़े होने तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक साझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जागरूक किया और इस प्रकार उन्हें एक राष्ट्र में एकताबद्ध किया। इसने जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया, उनमें जनतन्त्र, राजनीतिक स्वतन्त्रताओं, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, उनमें आधुनिक दृष्टिकोण जगाया तथा ब्रिटिश शासन की बुराइयों को उनके सामने रखा।

सबसे बड़ी बात यह है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सही चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों ने अग्रगामी भूमिका निभाई। उन्होंने लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को देश की राजनैतिक रूप से पराधीन स्थिति से जोड़ा। साम्राज्यवाद की उनकी शक्तिशाली अर्थशास्त्रीय आलोचना ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बाद के सक्रिय जनसंघर्ष के दौरान राष्ट्रवादी आन्दोलन का एक प्रमुख अस्त्र बन गई। अपने आर्थिक आन्दोलनों के द्वारा ब्रिटिश शासन के निर्मम, शोषक चरित्र को बेनकाब करके उन्होंने उसके नैतिक आधारों को भी कमजोर किया। आरम्भिक राष्ट्रवादी आन्दोलन ने एक साझा राजनीतिक-आर्थिक कार्यक्रम भी पेश किया जिसके आधार पर भारतीय जनता एकजुट होने के बाद राजनीतिक संघर्ष चला सकी। इसने यह राजनीतिक सत्य सामने रखा कि भारत का शासन भारतीयों के हित में चलना चाहिए। इसने राष्ट्रवाद के प्रश्न को भारतीय जीवन का एक एक प्रमुख प्रश्न बना दिया। इसके अलावा, नरमपंथियों का राजनीतिक कार्य धर्म, भावुकता या खोखली भावना की दुहाई न देकर जनता के जीवन की ठोस वास्तविकता के ठोस अध्ययन और विश्लेषण पर आधारित था। आरम्भिक आन्दोलन की कमजोरियों को तो बाद की पीढ़ियों ने दूर कर दिया और उसकी उपलब्धियाँ आगे के वर्षों में एक और जोरदार राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बन गई। इसलिए हम कह सकते हैं कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरम्भिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनायी जिस पर राष्ट्रीय आन्दोलन आगे और भी विकसित हुआ। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत के निर्माताओं में ऊँचा स्थान मिलना चाहिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. 1921 की जनगणना के अनुसार, लाखों लोगों की मृत्यु ..... के कारण हुई।

(क) महामारी और अकाल (ख) युद्ध
(ग) दंगे (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (क) महामारी और अकाल

प्र.2. महात्मा गाँधी ..... में भारत लौटे।

(क) जनवरी 1916 (ख) जनवरी 1915 (ग) मार्च 1921 (घ) अप्रैल 1917

उत्तर (ख) जनवरी 1915

प्र.3. सत्याग्रह के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?

(क) सत्याग्रह कोई शारीरिक शक्ति नहीं है (ख) यह कमजोरों का हथियार है
(ग) एक सत्याग्रही शत्रु को पीड़ा नहीं पहुँचाता (घ) विकल्प (क) और (ग)

उत्तर (घ) विकल्प (क) और (ग)

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. रोलेट एक्ट के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?
(क) इसने सरकार को राजनीतिक गतिविधियों को दबाने की शक्तियाँ नहीं दीं
(ख) इसने राजनीतिक कैदियों को बिना मुकदमे के दो साल तक हिरासत में रखने की अनुमति नहीं दी
(ग) इसने राजनीतिक कैदियों को बिना मुकदमा चलाये दो साल तक हिरासत में रखने की अनुमति दी
(घ) गाँधीजी ने 1920 में रोलेट एक्ट के खिलाफ देशव्यापी सत्याग्रह शुरू करने का फैसला किया

उत्तर (ग) इसने राजनीतिक कैदियों को बिना मुकदमा चलाये दो साल तक हिरासत में रखने की अनुमति दी

प्र.5. कुख्यात जलियाँवाला बाग नरसंहार तब हुआ जब वार्षिक ..... मेला था।
(क) तीयन (ख) गुरुपर्व (ग) लोहड़ी (घ) बैसाखी

उत्तर (घ) बैसाखी

प्र.6. खिलाफत मुद्दे को उठाने के महात्मा गाँधी के निर्णय के पीछे मुख्य कारणों में से एक क्या था?
(क) हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अधिक एकता लाना
(ख) हिन्दुओं और ईसाइयों के बीच अधिक एकता लाना
(ग) ईसाइयों और मुसलमानों के बीच अधिक एकता लाना
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (क) हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच अधिक एकता लाना

प्र.7. हिन्द स्वराज (1909) पुस्तक के लेखक कौन हैं?
(क) भगत सिंह (ख) जवाहरलाल नेहरू (ग) सुभाषचन्द्र बोस (घ) महात्मा गाँधी

उत्तर (घ) महात्मा गाँधी

प्र.8. दिसम्बर 1920 में ..... में कांग्रेस सत्र में एक समझौता किया गया और असहयोग कार्यक्रम अपनाया गया।
(क) इलाहाबाद (ख) बॉम्बे (ग) नागपुर (घ) कलकत्ता

उत्तर (ग) नागपुर

प्र.9. असहयोग आन्दोलन के प्रभाव के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?
(क) 1921 और 1922 के बीच विदेशी कपड़े का आयात आधा हो गया
(ख) कई स्थानों पर व्यापारियों और व्यापारियों ने विदेशी वस्तुओं का व्यापार करने या विदेशी व्यापार को वित्त पोषित करने से इनकार कर दिया
(ग) भारतीय कपड़ा मिलों और हथकरघा का उत्पादन बढ़ गया
(घ) उपरोक्त सभी

उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

प्र.10. अवध में असहयोग आन्दोलन के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन गलत है?
(क) यहाँ असहयोग आन्दोलन तालुकदारों और जमींदारों के खिलाफ था
(ख) अवध में किसानों का नेतृत्व बाबा रामचन्द्र ने किया
(ग) किरायेदारों के पास कार्यकाल की कोई सुरक्षा नहीं थी
(घ) किसानों में बेगार को खत्म करने की माँग नहीं की

उत्तर (घ) किसानों में बेगार को खत्म करने की माँग नहीं की

प्र.11. निम्नलिखित में से किस कारण से आदिवासी लोगों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया?
(क) आदिवासी लोगों को अपने मवेशियों को चराने के लिए जंगलों में प्रवेश करने से रोका गया
(ख) जनजातीय लोगों को ईंधन की लकड़ी और फल इकट्ठा करने से रोका गया
(ग) आदिवासी लोगों के पारम्परिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया
(घ) उपरोक्त सभी

उत्तर (घ) उपरोक्त सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. बागान श्रमिकों को ..... के अनुसार बिना अनुमति के चाय बागान छोड़ने की अनुमति नहीं थी।
(क) 1859 का अन्तर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम (ख) 1866 का अन्तर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम
(ग) 1879 का अन्तर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम (घ) 1869 का अन्तर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम
उत्तर (क) 1859 का अन्तर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम

प्र.13. गाँधीजी ने ..... में असहयोग आन्दोलन से हटने का फैसला किया।
(क) जनवरी 1922 (ख) फरवरी 1922
(ग) फरवरी 1919 (घ) जनवरी 1919
उत्तर (ख) फरवरी 1922

प्र.14. ..... और ..... ने स्वराज पार्टी का गठन किया।
(क) सी०आर० दास और मोतीलाल नेहरू (ख) मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू
(ग) जवाहरलाल नेहरू और सी०आर० दास (घ) जवाहरलाल नेहरू और गाँधी
उत्तर (क) सी०आर० दास और मोतीलाल नेहरू

प्र.15. साइमन कमीशन ..... में भारत आया।
(क) 1928 (ख) 1930 (ग) 1932 (घ) 1942
उत्तर (क) 1928

प्र.16. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर कांग्रेस ने ..... में भारत के लिए 'पूर्ण स्वराज' या पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग को औपचारिक रूप दिया।
(क) दिसम्बर 1929 (ख) जनवरी 1929 (ग) दिसम्बर 1930 (घ) दिसम्बर 1928
उत्तर (क) दिसम्बर 1929

प्र.17. महात्मा गाँधी ने साबरमती में अपने आश्रम से दांडी तक अपना प्रसिद्ध नमक मार्च शुरू किया, जो ..... की दूरी तय करता था।
(क) 260 मील (ख) 240 मील (ग) 600 मील (घ) 500 मील
उत्तर (ख) 240 मील

प्र.18. महात्मा गाँधी ....., 1930 को दांडी पहुँचे।
(क) 6 अप्रैल (ख) 16 अप्रैल (ग) 6 मार्च (घ) 6 मई
उत्तर (क) 6 अप्रैल

प्र.19. गाँधी-इरविन समझौते पर ..... पर हस्ताक्षर किये गये थे।
(क) 5 अप्रैल, 1932 (ख) 5 मार्च, 1931 (ग) 5 मई, 1931 (घ) 5 जून, 1932
उत्तर (ख) 5 मार्च, 1931

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

राष्ट्रवाद की विचारधाराएँ
Theories of Nationalism

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारत के लोग रॉलेट एक्ट के विरोध में क्यों थे?
Why was the people of India against the Rowlatt Act?

उत्तर भारत के लोगों का रॉलेट एक्ट के विरोध में रहने का निम्नलिखित कारण था—

1. गाँधी जी ने 1919 में रॉलेट एक्ट (1919) के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन चलाया।
2. भारतीय सदस्यों द्वारा विरोध होने पर भी रॉलेट एक्ट को इम्पीरियल लेजिसलेटिव कांउसिल ने बहुत जल्दबाजी में पास कर दिया था। जिसके द्वारा सरकार को राजनीतिक गतिविधियों को कुचलने और राजनीतिक कैदियों को 2 साल तक बिना मुकदमा चलाये जेल में बन्द रखने का अधिकार मिल गया था।
3. महात्मा गाँधी ऐसे अन्याय पूर्ण कानूनों के विरुद्ध अहिंसक ढंग से नागरिक अवज्ञा चाहते थे। इसलिए लोगों ने रॉलेट एक्ट का विरोध किया।

प्र.2. गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन को वापस लेने का फैसला क्यों लिया?
Why did Gandhiji decided to withdraw the Non-cooperation movement?

उत्तर 1922 ई० में गोरखपुर में स्थित चोरी–चोरा में बाजार से गुजर रहा एक शान्तिपूर्ण जुलूस पुलिस के साथ हिंसक टकराव में बदल गया। इस घटना का समाचार मिलते ही गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन रोकने का आह्वान किया। क्योंकि महात्मा गाँधी जी ऐसे अन्याय पूर्ण कानूनों के विरुद्ध अहिंसक रूप से नागरिक की अवज्ञा चाहते थे।

प्र.3. सत्याग्रह के विचार का क्या मतलब है?
What does the idea of Satyagraha mean?

उत्तर 1. सत्याग्रह के विचार में सत्य की शक्ति पर आग्रह और सत्य की खोज पर जोर दिया जाता था। इसका अर्थ यह था, कि यदि आपका उद्देश्य सच्चा है, यदि आपका संघर्ष अन्याय के विरुद्ध है तो उत्पीड़क का मुकाबला करने के लिए आपको किसी शारीरिक बल्कि आवश्यकता नहीं है।

2. सत्याग्रह के विचार में प्रतिशोध या बदले की भावना लिए बिना सत्याग्रही केवल अहिंसा के बल पर ही अपने संघर्ष में सफल हो सकता है।
3. उत्पीड़क शत्रु को ही नहीं बल्कि सभी लोगों को हिंसा की अपेक्षा सत्य को स्वीकार करने पर विवश करने के स्थान पर सच्चाई को देखने और सहज भाव से स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

प्र.4. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on the Jallianwala Bagh massacre.

उत्तर 13 अप्रैल, 1919 को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ। यह जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड अमृतसर में हुआ था। यह हादसा बहुत ही खतरनाक और दर्दनाक था। उस दिन बहुत सारे ग्रामीण अमृतसर में वैशाखी के मेले में शामिल होने के लिए बाग के मैदान में इकट्ठे हुए थे। यह मैदान चारों तरफ से बंद था।

TOUCH n PASS

बाग शहर से बाहर होने के कारण लोगों को यह पता नहीं था, कि इलाके में मार्शल लॉ लागू किया जा चुका है। जनरल डायर हथियारबंद सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा और बाग के मुख्य द्वार के रास्ते निहत्थी भीड़ पर गोलियाँ चला दी। सैकड़ों लोग मारे गये। बाद में डायर ने बताया कि वह सत्याग्रहियों के मन में दहशत फैलाना चाहता था।

प्र.5. साइमन कमीशन पर टिप्पणी कीजिए।

Comment on the Simon Commission.

उत्तर यह लंदन में 1928 में हुआ था। ब्रिटेन की नई रोटी सरकार ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में एक वैधानिक आयोग का गठन किया जिसका उद्देश्य भारत में संवैधानिक व्यवस्था की कार्यशैली का अध्ययन करना था और उसके बारे में सुझाव देना था इस आयोग के सभी सदस्य अंग्रेज थे।

1928 में जब साइमन कमीशन भारत आया तो उसका स्वागत 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारों से किया गया। कांग्रेस, मुस्लिम लीग और अन्य सभी पार्टियों ने प्रदर्शनों में भाग लिया।

प्र.6. 1921 में असहयोग आन्दोलन में शामिल होने वाले सभी सामाजिक समूहों की सूची बनाइए।

Write all the social groups included in non-cooperation movement in 1921.

उत्तर 1921 ई० में असहयोग में शामिल होने वाले विभिन्न सामाजिक समूहों की सूची निम्नलिखित हैं—

1. मध्यवर्गीय लोग जैसे शिक्षक, वकील, विद्यार्थी आदि।
2. व्यापारी वर्ग।
3. मद्रास की 'जस्टिस पार्टी' छोड़कर अन्य सभी राजनीतिक दल।
4. अवध के किसान।
5. सीताराम राजू के नेतृत्व में आन्ध्र प्रदेश के किसान।
6. बागान के श्रमिक।

प्र.7. नमक सत्याग्रह पर एक टिप्पणी लिखिए।

Write a comment on the Salt Movement.

उत्तर सविनय अवज्ञा आन्दोलन नमक सत्याग्रह से आरम्भ हुआ। नमक कानून भंग करने के लिए गाँधीजी ने दांडी को चुना। 12 मार्च, 1930 को अपने 78 विश्वस्त सहयोगियों के साथ गाँधीजी ने साबरमती आश्रम से दांडी यात्रा आरम्भ की। 24 दिनों की लम्बी यात्रा के बाद 6 अप्रैल, 1930 को दांडी पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने समुद्र के पानी से नमक बनाया और शान्तिपूर्ण अहिंसक ढंग से नमक कानून भंग किया।

प्र.8. बारदोली सत्याग्रह का कारण क्या था? क्या यह सत्याग्रह सफल रहा?

What was the cause of the Bardoli Movement? Was the movement successful?

उत्तर बारदोली सत्याग्रह का कारण सरकार द्वारा किसानों पर बढ़ाये गए करों से था। बारदोली के किसानों ने सरदार बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में सरकार के विरोध में सत्याग्रह किया। पहले किसानों ने लगान में हुई 22% की कर वृद्धि का विरोध किया तथा सरकार से माँग किया कि सरकार प्रस्तावित लगान में वृद्धि को वापस ले। आन्दोलन में महिलाओं की भी सक्रिय भागीदारी रही। सरदार पटेल की गिरफ्तारी की आशंका को देखते हुए गाँधीजी 2 अगस्त, 1928 को बारदोली पहुँचे। गाँधीजी के प्रभाव के कारण सरकार ने लगान में वृद्धि को गलत बताया और बढ़ोत्तरी 22 प्रतिशत से घटाकर 6.03 प्रतिशत कर दिया। बारदोली सत्याग्रह की सफलता के बाद वहाँ की महिलाओं ने बल्लभ भाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि प्रदान की।

प्र.9. राजनीतिक नेता पृथक निर्वाचिका के सवाल पर क्यों बँटे हुए थे?

Why were the political leaders separated on Seperate Electorate?

उत्तर विभिन्न भारतीय राजनीतिक नेता समाज के अलग-अलग वर्गों का नेतृत्व कर रहे थे। डॉ० बी०आर० अम्बेडकर दलितों के नेता थे जबकि जिन्ना मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। सभी नेता अपने सम्प्रदाय-विशेष के जीवन स्तर में सुधार के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र और राजनीतिक अधिकार चाहते थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी इस तरह की माँगों के विरुद्ध थी क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता पर विपरीत प्रभाव पड़ता था। इसलिए इस माँग के विरोध में गाँधीजी एक बार आमरण अनशन पर भी बैठे थे। इस प्रकार ऊपर लिखित कारणों से ही राजनीतिक नेता पृथक निर्वाचित के सवाल पर बँटे हुए थे।

Touch 'n' PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. आन्ध्र प्रदेश के आदिवासी, बागान के श्रमिक एवं अवध के किसानों ने किन कारणों से असहयोग आन्दोलन में भाग लिया?
What were the reasons that tribals of Andhra Pradesh, plantation workers and farmers of Awadh took part in Non-Cooperation Movement?

उत्तर इन तीनों समूह ने निम्नलिखित कारणों से असहयोग आन्दोलन में भाग लिया—

(क) आन्ध्र प्रदेश के आदिवासी (Tribes of Andhra Pradesh)

1. प्रदेश की शुडेम पहाड़ियों में 1920 के दशक के आरम्भ में एक उग्र गुरिल्ला आन्दोलन फैल गया।
2. यहाँ अंग्रेजी सरकार ने बड़े जंगलों में लोगों के प्रवेश पर रोक लगा दी थी।
3. लोग इन जंगलों में न तो पशुओं को चरा सकते थे, न ही ईंधन और बीज आदि प्राप्त कर सकते थे। इससे न केवल उनकी रोजी-रोटी पर असर पड़ा था, बल्कि वे यह भी अनुभव कर रहे थे कि उनके परम्परागत अधिकार छीने जा रहे हैं। इस कारण से पहाड़ी लोगों में गुस्सा था।
4. जब लोगों को सड़क बनाने के लिए बेगार करने के लिए विवश किया गया तो उन्होंने विद्रोह कर दिया।
5. विद्रोहियों का नेतृत्व करने वाले अल्लूरी सीताराम राजू में लोगों का विश्वास था तथा लोग उसे ईश्वर का अवतार मानते थे।
6. राजू महात्मा गाँधी का गुणगान करता था। उसने लोगों को खादी पहनने और शराब न पीने के लिए प्रेरित किया। उनका कहना था कि भारत अहिंसा के बल पर नहीं बल्कि हिंसा के प्रयोग से ही आजाद हो सकता है।
7. गुडेम विद्रोहियों ने पुलिस पर हमले किये और अंग्रेज अधिकारियों को मारने की कोशिश की तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए गुरिल्ला युद्ध करते रहे।
8. 1924 ई० में राजू को फाँसी दे दी गई लेकिन उस समय तक वे लोकनायक बन चुके थे।

(ख) बागान के श्रमिक (Workers of Gardens or Farms)

1. श्रमिकों के लिए स्वतन्त्रता का अर्थ था कि वे अपने गाँवों के सम्पर्क में रहेंगे।
2. असम के बागान श्रमिकों के लिए आजादी का अर्थ था कि वे उन चारदीवारियों से जब चाहे आ-जा सकते हैं जिनमें उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया था।
3. 1859 के इंग्लैण्ड इमीग्रेशन एक्ट के अनुसार बागानों में काम करने वाले श्रमिकों को बिना अनुमति बागान से बाहर जाने की छूट नहीं थी।
4. असहयोग आन्दोलन के कारण हजारों मजदूर अपने अधिकारियों की अवहेलना करने लगे। उन्होंने बागान छोड़ दिये और घर चले गये।
5. उन्हें अब यह आशा हो गई थी कि गाँधी राज आने पर प्रत्येक को गाँव में जमीन मिल जाएगी।
6. रेलवे और स्टीमरों की हड़ताल के कारण वे रास्ते में ही फँस गये। उन्हें पुलिस ने पकड़ लिया और बुरी तरह पिटाई की।

(ग) अवध के किसान (Peasants of Awadh)

1. अवध के सन्यासी बाबा रामचन्द्र जो पहले फिजी में गिरमिटिया मजदूर के रूप में काम कर चुके थे, किसानों का नेतृत्व कर रहे थे।
2. उनका यह आन्दोलन उन तालुकदारों और जमींदारों के विरुद्ध था जो किसानों से बहुत अधिक लगान और अनेक प्रकार के कर ले रहे थे तथा उनसे बेगार भी करवाते थे।
3. पट्टेदारों के पट्टे निश्चित नहीं थे बल्कि उन्हें बार-बार पट्टे से हटा दिया जाता था ताकि उनका अधिकार न हो सके।
4. किसान चाहते थे कि लगान कम किया जाए, बेगार खत्म की जाए और दमनकारी जमींदारों का बहिष्कार किया जाए।
5. अनेक स्थानों पर जमींदारों को नाई-धोबी से वंचित रखने के लिए भी निर्णय लिये गये।

TOUCH 'n PASS

6. जून, 1920 में जवाहर लाल नेहरू ने अवध के गाँव में जाकर वहाँ के किसानों की व्यथा सुनी। अक्टूबर तक अनेक नेताओं के नेतृत्व में अवध किसान सभा का गठन हो गया और एक ही महीने में 300 से भी अधिक शाखाएँ बन गईं।
7. 1921 के असहयोग आन्दोलन में कांग्रेस के अवध के किसान संघर्ष को इस आन्दोलन में शामिल करने का प्रयास किया।

प्र.2. नमक यात्रा की चर्चा करते हुए स्पष्ट करें कि यह उपनिवेशवाद के खिलाफ प्रतिरोध का एक असरदार प्रतीक था।
Discussing the Salt March, clarify, that it was a effective symbol of resistance against the colonialism.

उत्तर देश को संगठित करने के लिए गाँधीजी ने नमक कानून तोड़कर शक्ति का परिचय दिया तथा 31 जनवरी, 1930 को वायसराय इरविन को पत्र लिखकर अपनी 11 माँगों का उल्लेख किया। गाँधीजी अपनी माँगों के द्वारा समाज के सभी वर्गों को अपने आन्दोलन में शामिल करना चाहते थे। गाँधीजी की सबसे महत्त्वपूर्ण माँग नमक कर को खत्म करने की थी, क्योंकि नमक का प्रयोग अमीर-गरीब सभी करते थे।

गाँधीजी का इरविन को लिखा गया पत्र एक चेतावनी की तरह था, क्योंकि उसमें लिखा गया था कि यदि उनकी माँगों को 11 मार्च तक पूरा नहीं किया गया तो कांग्रेस सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर देगी।

गाँधीजी ने नमक कानून को तोड़ने के लिए अपने 78 वालंटियरों के साथ 240 किलोमीटर की पैदल यात्रा 24 दिन में पूरी की। गाँधीजी अपने आश्रम से दांडी तक की पैदल यात्रा में जहाँ भी रुकते, हजारों लोग उनके भाषण सुनते। उन्होंने स्वराज का अर्थ स्पष्ट किया तथा लोगों को कहा कि अंग्रेजों का कहना न मानें। सफल नमक यात्रा वास्तव में सत्याग्रह और अहिंसा की जीत थी।

प्र.3. राष्ट्रवाद और देशभक्ति को समझाइए।
Explain Nationalism and Patriotism.

उत्तर

राष्ट्रवाद और देशभक्ति
(Nationalism and Patriotism)

राष्ट्रवाद एक सापेक्षिक राजनीतिक धारणा है जिसे साबित करने के लिए उनके साथ खड़े होने और उनकी विचारधारा को स्वीकार करने की जरूरत होती है जो खुद को राष्ट्रवाद के प्रवक्ता एवं राष्ट्रीय हितों के संरक्षक के तौर पर प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, 1920 के दशक में जर्मनी में हिटलर ने और इटली में मुसोलिनी ने खुद को, अपने दल को और अपने समर्थकों को राष्ट्रवादी घोषित करते हुए उन लोगों के खिलाफ मोर्चा खोला जो उनसे असहमत थे और उनकी नीतियों की आलोचना करते थे। इसीलिए राष्ट्रवाद की धारणा उसके विरोधियों के उत्पीड़न के साधन में तब्दील हो गई और इन्होंने अपने विरोधियों को देशद्रोही घोषित किया। आज के परिदृश्य में भारत के राजनीतिक माहौल को भी देखा जा सकता है जहाँ पूरा विमर्श देशभक्ति एवं देशद्रोह के इर्द-गिर्द केन्द्रित है और इस विमर्श में भाजपा, उसका नेतृत्व एवं उसके समर्थक खुद को राष्ट्रवादी एवं देशभक्त के रूप में पेश करते हुए अपने विरोधियों एवं आलोचकों से राष्ट्रवादी एवं देशभक्त होने का प्रमाण माँग रहे हैं। इसी प्रकार वर्तमान परिदृश्य में पाकिस्तान के राष्ट्रवाद को देखें, तो यह भारत-विरोध के धरातल पर खड़ा है और भारत का राष्ट्रवाद पाकिस्तान एवं चीन के विरोध के धरातल पर।

लेकिन, देशभक्ति साबित करने के लिए न तो किसी राजनीतिक दल की सदस्यता लेनी पड़ती है और न ही प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। यह राष्ट्रवाद की तरह सापेक्ष अवधारणा भी नहीं है। दरअसल देशभक्ति एक प्रकार से उस भूमि के प्रति आत्मीयता से भरे लगाव एवं कृतज्ञता बोध का परिणाम है जिसमें हमारा जन्म हुआ है, पालन-पोषण हुआ है और जिसके साथ हमारा भविष्य सम्बद्ध है। यह स्वत: स्फूर्त भाव है जो हमारे भीतर छुपा हुआ है और जिसके प्रदर्शन की जरूरत नहीं पड़ती है। यह सकारात्मक अवधारणा है जिसका स्वरूप अधिक-से-अधिक रक्षात्मक होता है। यह न तो आक्रामक होती है और न ही इसका स्वरूप उत्पीड़क होता है। इसमें दूसरे देश पर हावी होने या उसे नीचा दिखाने का भाव भी नहीं होता है। दोनों में सबसे महत्त्वपूर्ण फर्क यह है कि राष्ट्रवाद इस देश के सभी नागरिकों को देशभक्त नहीं मानता है।

प्र.4. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधीजी के योगदान की विवेचना करें।
Analyse the contribution of Gandhiji in Indian National Movement.

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में 1919-1947 का काल गाँधी युग के नाम से जाना जाता है। राष्ट्रीय आन्दोलन को गाँधीजी ने एक नई दिशा दी। सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह का प्रयोग कर गाँधीजी भारतीय राजनीति में छा गये। इन्हीं अस्त्रों का सहारा लेकर इन्होंने औपनिवेशिक सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलनों को जन-आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया। 1917-18 में उन्होंने

TOUCH 'n PASS

चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद में सत्याग्रह का सफल प्रयोग किया। 1920 ई० में गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। जिसमें बहिष्कार, स्वदेशी तथा रचनात्मक कार्यक्रमों पर बल दिया गया। 1930 में गाँधीजी ने सरकारी नीतियों के विरुद्ध दूसरा व्यापक आन्दोलन सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया। इसका आरम्भ उन्होंने 12 मार्च, 1930 को दांडी यात्रा से किया। गाँधीजी का 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन था जिसमें उन्होंने लोगों को प्रेरित करते हुए 'करो या मरो' का मन्त्र दिया। गाँधीजी के सतत् प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही 15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी प्राप्त हुई। वे एक राजनीतिक नेता के साथ-साथ प्रबुद्ध चिन्तन समाज सुधारक एवं हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे।

प्र.5. सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारणों की विवेचना करें।

Discuss about the causes of Civil Disobedience Movement.

उत्तर ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ गाँधीजी के नेतृत्व में 1930 ई० में शुरू किया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण कारण निम्नलिखित थे—

1. **साइमन कमीशन**—सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में बनाया गया यह 7 सदस्यीय आयोग था जिसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। भारत में साइमन कमीशन के विरोध का मुख्य कारण कमीशन में एक भी भारतीय को नहीं रखा जाना तथा भारत के स्वशासन के सम्बन्ध में निर्णय विदेशियों द्वारा किया जाना था।
2. **नेहरू रिपोर्ट**—कांग्रेस ने फरवरी, 1928 में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। समिति ने ब्रिटिश सरकार से 'डोमिनियन स्टेट' का दर्जा देने की माँग की। यद्यपि नेहरू रिपोर्ट स्वीकृत नहीं हो सकी, लेकिन साम्प्रदायिकता की भावना उभरकर सामने आई। अत: गाँधीजी ने इससे निपटने के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन का कार्यक्रम पेश किया।
3. **विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी**—1929-30 की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा पड़ा। भारत का निर्यात कम हो गया लेकिन अंग्रेजों ने भारत से धन का निष्कासन बन्द नहीं किया। पूरे देश का वातावरण सरकार के खिलाफ था। इस प्रकार सविनय अवज्ञा आन्दोलन हेतु एक उपयुक्त अवसर दिखाई पड़ा।
4. **समाजवाद का बढ़ता प्रभाव**—इस समय कांग्रेस के युवा वर्गों के बीच मार्क्सवाद एवं समाजवादी विचार तेजी से फैल रहे थे, इसकी अभिव्यक्ति कांग्रेस के अन्दर वामपंथ के उदय के रूप में हुई। वामपंथी दबाव को सन्तुलित करने के आन्दोलन के नये कार्यक्रम की आवश्यकता थी।
5. **क्रान्तिकारी आन्दोलनों का उभार**—इस समय भारत की स्थिति विस्फोटक थी। 'मेरठ षड्यन्त्र केस' और 'लाहौर षड्यन्त्र केस' ने सरकार विरोधी विचारधारा को उग्र बना दिया था। बंगाल में भी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ एक बार फिर उभरी।
6. **पूर्ण स्वराज्य की माँग**—दिसम्बर, 1929 के कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य की माँग की गई। 26 जनवरी, 1930 को पूर्ण स्वतन्त्रता दिवस मनाने की घोषणा के साथ ही पूरे देश में उत्साह की एक नई लहर जागृत हुई।
7. **गाँधी का समझौतावादी रुख**—आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व गाँधी ने वायसराय लॉर्ड इरविन के समक्ष अपनी 11 सूत्रीय माँग को रखा। परन्तु इरविन ने माँग मानना तो दूर गाँधी से मिलने से भी इन्कार कर दिया। सरकार का दमन चक्र तेजी से चल रहा था। अत: बाध्य होकर गाँधीजी ने अपना आन्दोलन दांडी मार्च आरम्भ करने का निश्चय किया।

प्र.6. असहयोग आन्दोलन के कारण एवं परिणाम का वर्णन करें।

Explain the causes and results of Civil Disobedience Movement.

उत्तर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में प्रारम्भ किया गया। प्रथम जन-आन्दोलन असहयोग आन्दोलन था। इस आन्दोलन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. **रॉलेट कानून**—1919 ई० में न्यायाधीश सिडनी रॉलेट की अध्यक्षता में रॉलेट कानून (क्रान्तिकारी एवं अराजकता अधिनियम) बना। इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये गिरफ्तार कर जेल में डाला जा सकता था तथा इसके खिलाफ वह कोई भी अपील नहीं कर सकता था।
2. **जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड**—13 अप्रैल, 1919 ई० को बैसाखी मेले के अवसर पर पंजाब के जलियाँवाला बाग में सरकार की दमनकारी नीति के खिलाफ लोग एकत्रित हुए थे। जनरल डायर के द्वारा वहाँ पर निहत्थी जनता पर गोली चलवाकर हजारों लोगों की जान ले ली गई।

TOUCH 'n' PASS

3. **खिलाफत आन्दोलन**—इसी समय खिलाफत का मुद्दा सामने आया। गाँधीजी ने इस आन्दोलन को अपना समर्थन देकर हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने और एक बड़ा सशक्त अंग्रेजी राज विरोधी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने का निर्णय लिया।

परिणाम—5 फरवरी, 1922 ई० को गोरखपुर के चौरी-चौरा नामक स्थान पर हिंसक भीड़ द्वारा थाने पर आक्रमण कर 22 पुलिसकर्मियों की हत्या कर दी गई। जिससे नाराज होकर गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन को तत्काल बन्द करने की घोषणा की। असहयोग आन्दोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। असहयोग आन्दोलन के अचानक स्थगित हो जाने और गाँधीजी की गिरफ्तारी के कारण खिलाफत के मुद्दे का भी अन्त हो गया। हिन्दू-मुस्लिम एकता भंग हो गई तथा सम्पूर्ण भारत में साम्प्रदायिकता का बोलबाला हो गया न ही स्वराज की प्राप्ति हुई और न ही पंजाब के अन्यायों का निवारण हुआ। असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप ही मोतीलाल नेहरू तथा चितरंजन दास के द्वारा स्वराज पार्टी की स्थापना हुई।

प्र.7. खिलाफत आन्दोलन क्यों हुआ? गाँधीजी ने इसका समर्थन क्यों किया?
Why did Khilafat Movement happen? Why did Gandhiji support it?

उत्तर तुर्की (ऑटोमन साम्राज्य की राजधानी) का खलीफा जो ऑटोमन साम्राज्य का सुल्तान भी था, सम्पूर्ण इस्लामी जगत का धर्मगुरु था। पैगम्बर के बाद सबसे अधिक प्रतिष्ठा उसी की थी। प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी के साथ तुर्की भी पराजित हुआ। पराजित तुर्की पर विजयी मित्र-राष्ट्रों ने कठोर सन्धि थोप दी। ऑटोमन साम्राज्य को विखण्डित कर दिया गया।

खलीफा और ऑटोमन साम्राज्य के साथ किये गये व्यवहार से भारतीय मुसलमानों में आक्रोश व्याप्त हो गया। वे तुर्की के सुल्तान एवं खलीफा की शक्ति और प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना के लिए संघर्ष करने को तैयार हो गये। इसके लिए खिलाफत आन्दोलन आरम्भ किया गया। 1919 में अली बन्धुओं (मोहम्मद अली और शौकत अली) ने बम्बई में खिलाफत समिति का गठन किया। आन्दोलन चलाने के लिए जगह-जगह खिलाफत कमेटियाँ बनाकर तुर्की के साथ किये गये अन्याय के विरुद्ध जनमत तैयार करने का प्रयास किया गया। गाँधीजी ने इस आन्दोलन को अपना समर्थन देकर हिन्दू-मुसलमान एकता स्थापित करने और एक बड़ा सशक्त राजविरोधी आन्दोलन आरम्भ करने का निर्णय लिया।

प्र.8. असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्वरूप में क्या अन्तर था? महिलाओं की सविनय अवज्ञा आन्दोलन में क्या भूमिका थी?
What was the difference between the pattern of Non-Cooperation Movement and Civil Disobedience Movement? What was the role of women in Civil Disobedience Movement?

उत्तर असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्वरूप में काफी विभिन्नता थी। असहयोग आन्दोलन में जहाँ सरकार के साथ असहयोग करने की बात थी, वहीं सविनय अवज्ञा आन्दोलन में न केवल अंग्रेजों का सहयोग न करने के लिए बल्कि औपनिवेशिक कानूनों का भी उल्लंघन करने के लिए आह्वान किया जाने लगा। असहयोग आन्दोलन की तुलना में सविनय अवज्ञा आन्दोलन काफी व्यापक जनाधार वाला आन्दोलन साबित हुआ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में पहली बार महिलाओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। वे घरों की चारदीवारी से बाहर निकलकर गाँधीजी की सभाओं में भाग लिया। अनेक स्थानों पर स्त्रियों ने नमक बनाकर नमक कानून भंग किया। स्त्रियों ने विदेशी वस्त्र एवं शराब की दुकानों की पिकेटिंग की। स्त्रियों ने चरखा चलाकर सूत काते और स्वदेशी को प्रोत्साहन दिया। शहरी क्षेत्रों में ऊँची जाति की महिलाएँ आन्दोलन में सक्रिय थीं तो ग्रामीण इलाकों में सम्पन्न परिवार की किसान स्त्रियाँ।

प्र.9. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में वामपंथियों की भूमिका को रेखांकित करें।
Outline the role of leflists in Indian National Movement.

उत्तर 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में ही भारत में साम्यवादी विचारधाराओं के अन्तर्गत बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, लाहौर, मद्रास आदि जगहों पर साम्यवादी सभाएँ बननी शुरू हो गई थी। उस समय इन विचारों से जुड़े लोगों में मुजफ्फर अहमद, एस०ए० डांगे, मौलवी बरकतुल्ला, गुलाम हुसैन आदि नाम प्रमुख हैं। इन लोगों ने अपने पत्रों के माध्यम से साम्यवादी विचारों का पोषण शुरू कर दिया था। परन्तु रूसी क्रान्ति की सफलता के बाद साम्यवादी विचारों का तेजी से भारत में फैलाव शुरू हुआ। उसी समय 1920 में एम०एन० राय ने ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। असहयोग आन्दोलन के दौरान पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्हें अपने विचारों को फैलाने का मौका मिला। अब ये लोग आतंकवादी राष्ट्रवादी आन्दोलनों से भी जुड़ने लगे थे। इसलिए असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद सरकार ने इन लोगों का दमन शुरू किया और पेशावर षड्यन्त्र केस

(1922-23), कानपुर षड्यन्त्र केस (1924) और मेरठ षड्यन्त्र केस (1929) के तहत लोगों पर मुकदमे चलाये। तब साम्यवादियों ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया और राष्ट्रवादी "साम्यवादी शहीद" कहे जाने लगे। इसी समय इन्हें कांग्रेसियों का समर्थन मिला क्योंकि सरकार द्वारा लाये गये "पब्लिक सेफ्टी बिल" को कांग्रेसी पारित होने नहीं दिये जाते थे, क्योंकि यह कानून कम्युनिस्टों के विरोध में था। इस तरह अब साम्यवादी आन्दोलन प्रतिष्ठित होता जा रहा था। अब तक कई मजदूर संघों का गठन हो चुका था। 1920 में AITUC की स्थापना हो गई थी तथा 1929 में एन०एम० जोशी ने AITUF का गठन कर लिया। इस तरह वामपंथ का प्रसार मजदूर संघों पर बढ़ रहा था। किसानों को भी साम्यवाद से जोड़ने का प्रयास हुआ। लेबर स्वराज पार्टी भारत में पहली किसान मजदूर पार्टी थी लेकिन अखिल भारतीय स्तर पर दिसम्बर, 1928 में अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी बनी। अक्टूबर, 1934 में बम्बई में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की गई। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान साम्यवादियों ने कांग्रेस का विरोध करना शुरू किया क्योंकि कांग्रेस उन उद्योगपतियों के समर्थन से चल रही थी जो मजदूरों का शोषण करते थे।

प्र.10. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड क्यों हुआ? इसने राष्ट्रीय आन्दोलन को कैसे बढ़ावा दिया?
Why did the jallianwala Bagh Massacre happen? How did it promote the National Movement?

उत्तर भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के उद्देश्य से सरकार ने 1919 में रॉलेट कानून (क्रान्तिकारी एवं अराजकता अधिनियम) बनाया। इस कानून के अनुसार सरकार किसी को भी संदेह के आधार पर गिरफ्तार कर बिना मुकदमा चलाये उसको दण्डित कर सकती थी तथा इसके खिलाफ कोई अपील भी नहीं की जा सकती थी। भारतीयों ने इस कानून का कड़ा विरोध किया। इसे 'काला कानून' की संज्ञा दी गई। अमृतसर में एक बहुत बड़ा प्रदर्शन हुआ जिसकी अध्यक्षता डॉ० सत्यपाल और डॉ० सैफुद्दीन किचलू कर रहे थे। सरकार ने दोनों को गिरफ्तार कर अमृतसर से निष्कासित कर दिया। जनरल डायर ने पंजाब में फौजी शासन लागू कर आतंक का राज स्थापित कर दिया। पंजाब के लोग अपने प्रिय नेता की गिरफ्तारी तथा सरकार की दमनकारी नीति के खिलाफ 13 अप्रैल, 1919 को वैसाखी मेले के अवसर पर अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक विराट सम्मेलन कर विरोध प्रकट कर रहे थे, जिसके कारण ही जनरल डायर ने निहत्थी जनता पर गोलियाँ चलवा दीं। यह घटना जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के नाम से जाना गया।

जलियाँवाला बाग की घटना ने पूरे भारत को आक्रोशित कर दिया। जगह-जगह विरोध प्रदर्शन और हड़ताल हुए। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस घटना के विरोध में अपनी 'सर' की उपाधी खिताब वापस लौटाने की घोषणा की। वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य शंकरन नायर ने इस्तीफा दे दिया। गाँधीजी ने कैसर-ए-हिन्द की उपाधि त्याग दी। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड ने राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई जान फूँक दी।

प्र.11. भारत में मजदूर आन्दोलन के विकास का वर्णन करें।
Describe the development of labour movement in India.

उत्तर 20वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में मजदूरों के आन्दोलन हुए तथा उनके संगठन बने। श्रमिक आन्दोलन को वामपंथियों का सहयोग एवं समर्थन मिला। शोषण के विरुद्ध श्रमिक वर्ग संगठित हुआ। अपनी माँगों के लिए इसने हड़ताल का सहारा लिया। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व, इसके दौरान एवं बाद में अनेक हड़तालें हुईं। हड़ताल को सुचारु रूप से चलाने के लिए मजदूरों ने अपने संगठन बनाये। 1920 में ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन का गठन लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में हुआ। विभिन्न श्रमिक संगठनों को इससे सम्बद्ध किया गया। आगे चलकर साम्यवादी भाव के कारण इस संघ में फूट पड़ गई और साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित संगठन—ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन फेडरेशन रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन हुआ। 1935 में तीनों श्रमिक संघ पुनः एकजुट हुए। तब से श्रमिक संघ विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रभाव में मजदूरों के हक की लड़ाई लड़ रहे हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राष्ट्रवाद में राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर टैगोर के विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe Tagore's views on national movement in nationalism.

उत्तर राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर टैगोर की दुविधा और उनके रुख को देशभक्ति की रूमानियत पर आधारित उनके बांग्ला उपन्यास 'घर-बाइरे' के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। इस उपन्यास का नायक निखिल प्रगतिशील सामाजिक सुधारों का

समर्थक है, पर जब मसला राष्ट्रवाद का आता है, तो उसका रुख थोड़ा नरम पड़ जाता है। इस मसले पर उसकी प्रेमिका बिमला अपने फैसले बदलने के लिए उस पर दबाव डालती है और यहाँ तक कि उसे छोड़कर चली जाती है। लेकिन प्रेमिका के दबाव के बावजूद निखिल अपने विचार नहीं बदलता और कहता है "मैं देश की सेवा करने के लिए हमेशा तैयार हूँ, लेकिन मेरी पूजा का हकदार सत्य है, जो मेरे लिए देश से भी ऊपर है। अपने देश को ईश्वर की तरह पूजने का मतलब है, उसे अभिशाप देना।" बिमला को भी राष्ट्रवादी भावनाओं और हिंसक गतिविधियों के बीच के सूक्ष्म सम्बन्ध-सूत्र का अहसास होता है और इसकी पृष्ठभूमि में मोहभंग टैगोर की तरह बिमला को भी राजनीति से उदासीन बना देता है। स्पष्ट है कि टैगोर ने इस उपन्यास के जरिये अति-राष्ट्रवाद के उन खतरों की ओर इशारा किया है जो बुनियादी मानवीय मूल्य एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना के प्रतिकूल है।

टैगोर का युगीन परिदृश्य—टैगोर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब भारत औपनिवेशिक पराधीनता का शिकार था। 20वीं सदी के पहले दशक के दौरान देश के भीतर एवं बाहर भारतीय राष्ट्रवाद ने भी क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद के उभार को देखा जिसका स्वरूप हिंसक था और जिसने कितने निर्दोषों की सिर्फ इसलिए बलि ली क्योंकि वे अंग्रेज थे। इस स्थिति ने टैगोर को भी विचलित किया। उन्होंने महसूस किया कि राष्ट्र, राष्ट्र-राज्य और राष्ट्रवाद की अवधारणा के मूल में घृणा है जो बुनियादी मानवीय मूल्यों के प्रतिकूल है।

उस समय का वैश्विक परिदृश्य तो और भी विचलित करने वाला था। उन्होंने देखा कि 17-20वीं सदी के दौरान वाणिज्यवाद एवं औद्योगिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि में पश्चिमी देशों में राष्ट्रवाद ने किस प्रकार उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का रूप ले लिया और इसकी पृष्ठभूमि में इसने अफ्रीकी एवं एशियाई देशों को गुलामी की ओर धकेलते हुए मानव एवं मानवता के इतिहास को कलंकित किया। इतना ही नहीं, इसने 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय देशों को जिस राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा की ओर धकेला, उसकी परिणति प्रथम विश्व युद्ध के रूप में हुई। लेकिन, राष्ट्रवाद का यह ज्वार यहीं पर नहीं थमा। यह इसके बाद भी जारी रहा और 1920 के दशक एवं इसके बाद इसने जर्मनी में नाजीवाद, इटली में फासीवाद एवं जापान में सैन्यवाद के रूप में राजनीतिक सर्वसत्तावादी निरंकुशता को जन्म देते हुए हिटलर एवं मुसोलिनी के राजनीतिक उभार को सम्भव बनाया। अन्ततः इसकी परिणति द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में हुई।

वैचारिक धरातल पर देखें, तो पश्चिमी राष्ट्रवाद की सीमाओं ने भी टैगोर को राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के प्रश्न पर पुनर्विचार के लिए उत्प्रेरित किया। ध्यातव्य है कि इटली के छोटे-छोटे नगर-राज्यों (City States) की पृष्ठभूमि में विकसित पश्चिमी राष्ट्रवाद की संकल्पना 'एक भाषा, एक जाति एवं एक राष्ट्र' की संकल्पना पर आधारित है। यह संकल्पना भारतीय परिस्थितियों के लिए बहुत उपयुक्त नहीं थी क्योंकि भारत एक बहुभाषा-भाषी देश था जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी रहते आये हैं और जहाँ पर्याप्त सांस्कृतिक वैविध्य है। ऐसी स्थिति में पश्चिमी राष्ट्रवाद की संकल्पना भारत के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं रह जाती है। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें टैगोर की राष्ट्र-विषयक धारणा ने आकार ग्रहण किया।

राष्ट्रवाद और टैगोर—राष्ट्रवाद की संकल्पना एक सांस्कृतिक संकल्पना है। इसके अनुसार समान भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों के उस समूह को राष्ट्र कहते हैं जो समान सांस्कृतिक विरासत धारण करते हैं और इसके कारण एक-दूसरे के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ाव महसूस करते हैं; जिन्हें लगता है कि वे एक ही नियति से बँधे हैं, जो एकसमान सामूहिक लक्ष्यों से प्रेरित होते हैं और उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लेकिन, टैगोर ने राष्ट्रवाद को देशभक्ति से भिन्न माना।

टैगोर ने राष्ट्रवाद की संकल्पना को यूरोपीय देन मानते हुए इसे सांस्कृतिक की बजाय एक राजनीतिक-आर्थिक संकल्पना के रूप में देखा। सन् 1913 में नोबल पुरस्कार मिलने के बाद टैगोर को विश्व-भ्रमण का अवसर मिला और इसी क्रम में सन् 1917 में राष्ट्रवाद के बुखार में तड़प रहे जापान की यात्रा के दौरान उन्होंने राष्ट्रवाद की तीखी आलोचना की थी जिसके कारण उन्हें जापान से बगैर भाषण दिये वापस आना पड़ा। इस यात्रा के दौरान जारी वक्तव्यों और भाषणों को सन् 2003 में संकलित करते हुए 'नेशनलिज्म' के नाम से प्रकाशित किया गया। सन् 1917 की जापान-यात्रा के दौरान 'नेशनलिज्म इन इण्डिया' नामक निबन्ध में टैगोर ने राष्ट्र-राज्य (Nation-State) की आलोचना करते हुए लिखा है कि "राष्ट्रवाद का राजनीतिक एवं आर्थिक संगठनात्मक आधार सिर्फ उत्पादन में वृद्धि तथा मानवीय श्रम की बचत कर अधिक सम्पन्नता हासिल प्राप्त करने का प्रयास है। राष्ट्रवाद की धारणा मूलतः राष्ट्र की समृद्धि एवं राजनीतिक शक्ति में अभिवृद्धि करने में प्रयुक्त हुई हैं। शक्ति की वृद्धि की इस संकल्पना ने देशों में पारस्परिक द्वेष, घृणा तथा भय का वातावरण उत्पन्न कर मानव जीवन को अस्थिर एवं असुरक्षित बना दिया है। यह सीधे-सीधे जीवन के साथ खिलवाड़ है, क्योंकि राष्ट्रवाद की इस शक्ति का प्रयोग बाह्य सम्बन्धों के साथ-साथ राष्ट्र की आन्तरिक स्थिति को नियन्त्रित करने में भी होता है। ऐसी परिस्थिति में समाज पर नियन्त्रण बढ़ना स्वाभाविक है। फलस्वरूप,

समाज तथा व्यक्ति के निजी जीवन पर राष्ट्र छा जाता है और एक भयावह नियन्त्रणकारी स्वरूप प्राप्त कर लेता है। दुर्बल और असंगठित पड़ोसी राज्यों पर अधिकार करने की कोशिश राष्ट्रवाद का ही स्वाभाविक प्रतिफल है। इससे पैदा हुआ साम्राज्यवाद अन्ततः मानवता का संहारक बनता है।''

राष्ट्रवाद का विध्वंसक रूप—फासीवाद—फासीवाद तथा साम्यवाद की तुलना करते हुए उन्होंने फासीवाद को साम्यवाद से कहीं अधिक खतरनाक माना और उसे 'असह्य निरंकुशवाद' की संज्ञा दी, क्योंकि उस व्यवस्था में हर चीज नियन्त्रित होती है। उन्होंने फासीवादियों को राष्ट्रवाद के पागलपन का प्रतीक मानते हुए वे कहते हैं कि फासीवाद के प्रवर्तन से पहले राष्ट्रवाद आर्थिक विस्तारवाद तथा उपनिवेशवाद से जुड़ा हुआ था। पर, बाद में मशीनीकरण के साथ यान्त्रिक सभ्यता के विकास ने राजनीतिक सर्वसत्तावाद के उदय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित की। इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा वातावरण तैयार हुआ जिसमें बहुत हद तक न तो मानवीय मूल्यों के लिए जगह रह गयी और न ही मानवीय संवेदनाओं के लिए। इस सन्दर्भ में देखें, तो टैगोर बेनितो मुसोलिनी की इस बात से बहुत हद तक सहमत प्रतीत होते हैं कि ''राष्ट्र राज्य का निर्माण नहीं करता, अपितु राज्य द्वारा राष्ट्र का निर्माण होता है।'' उन्होंने देखा कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद किस प्रकार राष्ट्रवाद ने राज्य की शक्ति को बढ़ाया और तद्नुरूप राज्य के द्वारा राष्ट्रवाद को काफी सराहा गया। इस बात की पुष्टि आज के परिप्रेक्ष्य से भी होती है। आज भी राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद शासन में मौजूद लोगों के हाथों को मजबूती प्रदान करने का साधन है और उनके द्वारा अक्सर इसका इस्तेमाल अपने संकीर्ण राजनीतिक हितों को साधने के लिए किया जाता है।

समाज को राज्य से अधिक महत्त्व—आधुनिक उदारवादी चिन्तक टैगोर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के प्रबल हिमायती हैं और शायद इसलिए भी उन्होंने राष्ट्रवाद को व्यक्ति की स्वतन्त्रता के रास्ते में बाधक मानते हुए उसकी आलोचना की है। वे समाज को मानवीय विकास के लिए आवश्यक बतलाते हुए उसे राष्ट्र की तुलना में कहीं अधिक प्रमुखता देते हैं। उनका मानना है कि जहाँ राष्ट्र व्यक्ति की रचनात्मकता को बाधित करता है, वहीं समाज इसे प्रोत्साहित करता है।

मानवता पर देशभक्ति को तरजीह—टैगोर राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति को मानवता एवं विश्वबन्धुत्व की संकल्पना के प्रतिकूल मानते थे। उनका मानना था कि ''देशभक्ति चहारदीवारी से बाहर के विचारों से जुड़ने की आजादी से हमें रोकती है। साथ ही, दूसरे देशों की जनता के दुख-दर्द को समझने की स्वतन्त्रता भी सीमित कर देती है।'' उन्होंने इसके लिए अपनी आलोचना का जवाब देते हुए कहा था कि ''देशभक्ति हमारा आखिरी आध्यात्मिक सहारा नहीं बन सकता, मेरा आश्रय मानवता है।'' टैगोर मानवता को राष्ट्रीयता से ऊपर रखते थे और उनका टैगोर का कहना था कि ''जब तक मैं जिन्दा हूँ, मानवता के ऊपर देशभक्ति की जीत नहीं होने दूँगा।''

यही कारण है कि उन्होंने एशिया की आजादी की हिमायत तो की, पर आजादी उनकी प्राथमिकता में शीर्ष पर नहीं थी। उन्होंने नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के प्रश्न को कहीं अधिक महत्त्व दिया और राजनीतिक आजादी के प्रश्न को उन्होंने उसकी तुलना में कहीं कम महत्त्व दिया। उस समय चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर भी वे बहुत उत्साहित नहीं थे, क्योंकि उनका यह विश्वास था कि भारत राजनीतिक आजादी से शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। उनका मानना था कि आर्थिक रूप से भारत भले ही पिछड़ा हो, पर उसे मानवीय मूल्यों की दृष्टि से पिछड़ा नहीं होना चाहिए। उन्होंने राष्ट्र की धारणा को भारत के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर खारिज करने की आवश्यकता पर बल दिया और भारत से यह अपेक्षा की कि वह पश्चिमी राष्ट्रवाद से दूर रहते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में अपनी महती भूमिका का निर्वाह करे और पूर्व की तरह मानवीय एकता के आदर्शों को हासिल करने के लिए समस्त विश्व का मार्गदर्शन करे।

राष्ट्रवाद और भारत—रवीन्द्रनाथ टैगोर राष्ट्रवाद के खिलाफ थे और उन्होंने राष्ट्रवाद को बहुत बड़ा खतरा मानते हुए कहा कि यह भारत की कई समस्याओं की जड़ है। उन्होंने भारत में राष्ट्रवाद की सम्भावनाओं को खारिज करते हुए इसे राष्ट्र-रहित देश माना और यूरोप से भारतीय परिस्थितियों की भिन्नता की ओर इशारा करते हुए कहा कि भारत विभिन्न प्रजातियों का देश था और इसके सामने इन प्रजातियों में समन्वय बनाये रखने की चुनौती थी, जबकि यूरोपीय देशों के सामने प्रजातियों के समन्वय की ऐसी कोई चुनौती नहीं थी। इस भिन्नता के मद्देनजर ही टैगोर ने राष्ट्रवाद को भारतीय परिस्थितियों के प्रतिकूल माना। उन्होंने यूरोपीय राष्ट्रों के लिए भविष्य के खतरों के रूप में इसकी पहचान करते हुए कहा कि इस भिन्नता के बावजूद यूरोपीय राष्ट्र राष्ट्रवाद रूपी मदिरा का सेवन कर अपनी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक एकता को खतरे में डाल रहे हैं और भविष्य में उन्हें भी प्रजातीय समन्वय की उन चुनौतियों का सामना करना होगा जिसका सामना सामाजिक एवं सांस्कृतिक वैविध्य के मद्देनजर भारत को करना पड़ रहा था। उस स्थिति में उन्हें या तो अन्य प्रजातियों के लिए अपने दरवाजे बन्द करने होंगे या फिर उन्हें कुचलते हुए

अधीनस्थ प्रजाति का रूप देना होगा। इससे भिन्न भारतीय समाज में मौजूद आत्मसातीकरण की प्रक्रिया की ओर इशारा करते हुए टैगोर ने बंग-भंग आन्दोलन (1905) के समय लिखे गये निबन्ध 'स्वदेशी समाज' में यह कहा कि "आर्यों ने जब भारत पर आक्रमण किया, तब किस तरह यहाँ की स्थानीय जातियों ने उन्हें अपने भीतर समा लिया। बाद में फिर मुसलमान आएँ, उन्हें भी इसी तरह अपना लिया गया।"

टैगोर ने एक राष्ट्र के रूप में भारत में अन्तर्निहित सम्भावनाओं को खारिज करते हुए कहा कि "भारत की समस्या राजनीतिक नहीं, सामाजिक है। यहाँ राष्ट्रवाद नहीं के बराबर है।" उन्होंने भारत की सामाजिक रूढ़ियों को राष्ट्रवाद के विकास में बाधक मानते हुए यह कहा कि भारत में पश्चिमी देशों जैसा राष्ट्रवाद पनप ही नहीं सकता, क्योंकि सामाजिक काम में अपनी रूढ़िवादिता का हवाला देने वाले लोग जब राष्ट्रवाद की बात करें, तो वह कैसे प्रसारित होगा? इस सन्दर्भ में अपनी बातों को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि "भारत में कभी सही मायने में देशभक्ति की भावना नहीं रही। बचपन से ही मुझे सिखाया गया था कि देश का सम्मान करना ईश्वर की पूजा और मानवता का आदर करने से ज्यादा जरूरी है। मैंने अब उस सबक को छोड़ दिया है और मेरा मानना है कि मेरे देशवासी अपने भारत को सही मायने में तभी आगे ला पाएँगे, जब वे अपने शिक्षकों की उस शिक्षा का विरोध करेंगे कि देश मानवता के आदर्शों से ज्यादा बड़ा है।"

राष्ट्रवाद का स्विस-मॉडल भी अनुकरणीय नहीं—भारतीय समाज की बहुधार्मिकता, बहुभाषीयता एवं बहुजातीयता को ध्यान में रखते हुए अक्सर राष्ट्रवाद के स्विस-मॉडल की प्रासंगिकता की बात की जाती है, लेकिन टैगोर ने इसे खारिज करते हुए कहा कि "स्विट्जरलैण्ड तथा भारत में काफी फर्क एवं भिन्नताएँ हैं। वहाँ व्यक्तियों में जातीय भेदभाव नहीं है और वे आपसी मेल-जोल रखते हैं तथा आपस में विवाह करते हैं, क्योंकि वे अपने को एक ही रक्त के मानते हैं। लेकिन, भारत में जन्माधिकार समान नहीं है। जातीय विभिन्नता तथा पारस्परिक भेदभाव के कारण भारत में उस प्रकार की राजनीतिक एकता की स्थापना करना कठिन दिखाई देता है, जो किसी भी राष्ट्र के लिए बहुत आवश्यक है।" वर्ण एवं जाति की रूढ़ियों और इसके रोटी-बेटी के सम्बन्ध पर आधारित होने के कारण भारत में वैसी एकता मुश्किल है। इसी आलोक में टैगोर का मानना है कि समाज द्वारा बहिष्कृत होने के भय से भारतीय डरपोक एवं कायर हो गये हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक स्वतन्त्रता उस समाज के प्रभुत्वशाली समूह के पक्ष में साबित होगी और यह एक ऐसे निरंकुश राज्य की सम्भावनाओं को बल प्रदान करेगा जिसमें राजनीतिक मतभेद रखने वाले भिन्न मतों के लोगों का जीना दूभर हो जाएगा। टैगोर की इस आशंका को आज के परिप्रेक्ष्य में देखें, तो यह शत-प्रतिशत सत्य साबित हो रही है। इसीलिए टैगोर का यह निष्कर्ष है कि न तो भारत में यूरोप जैसा राष्ट्रवाद है और न ही भारत में यूरोप जैसा राष्ट्रवाद कभी पनप सकता है।

राष्ट्रवाद की आलोचना के प्रमुख आधार—राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में टैगोर की धारणा भी **अल्बर्ट आइंस्टाइन** से मिलती-जुलती है। अल्बर्ट आइंस्टाइन के अनुसार, "राष्ट्रवाद एक बचकाना बीमारी है और यह मानव जाति का चेचक है।" टैगोर विश्व-बन्धुत्व के प्रबल हिमायती थे और इसीलिए उन्होंने राष्ट्रवाद की बजाय अन्तर्राष्ट्रवाद की वकालत की। उन्होंने राष्ट्रवाद को इसके रास्ते में मौजूद महत्त्वपूर्ण अवरोध के रूप में देखा और इसे मानव एवं मानवता के लिए खतरा बतलाया। उन्होंने तीन आधारों पर राष्ट्रवाद की आलोचना की—

1. राष्ट्र-राज्य की आक्रामक नीति,
2. प्रतिस्पर्धी वाणिज्यवाद की अवधारणा और
3. प्रजातिवाद।

उन्होंने राष्ट्र के विचार को जनता के स्वार्थ का ऐसा संगठित रूप माना है, जिसमें मानवीयता और आत्मत्व लेशमात्र भी नहीं रह पाता है। उनकी दृष्टि में, न तो राष्ट्र की शक्ति में वृद्धि पर कोई नियन्त्रण सम्भव है और न ही इसके विस्तार की कोई सीमा है। उसकी इस अनियन्त्रित शक्ति में ही मानवता के विनाश के बीज उपस्थित हैं। इसीलिए यह निर्माण का मार्ग नहीं, बल्कि विनाश का मार्ग है जो विभिन्न मानव-समुदायों के बीच घृणा, वैमनस्य और टकराव को उत्पन्न करता है। इसीलिए उन्होंने राष्ट्रवाद के खतरों की दिशा में संकेत करते हुए कहा कि "मानव की सहिष्णुता तथा उसमें स्थित नैतिकताजन्य परमार्थ की भावना राष्ट्र की स्वार्थपरायण नीति के चलते समाप्त हो जाएँगे।" उन्होंने शोषण के अमानवीय उपकरण के रूप में राष्ट्रवाद के इसी रूप की आलोचना की, जिसमें नृशंसता, रुग्णता तथा पृथकता दिखाई देती है। चूँकि राष्ट्रवाद के नाम पर राज्य-शक्ति का अनियन्त्रित प्रयोग अनेक अपराधों को जन्म देता है, इसीलिए युद्धोन्माद को बढ़ाता हुआ राष्ट्रवाद अपने समाज-विरोधी रूप में उपस्थित होता है। लेकिन, यह समाज का ही नहीं, व्यक्ति का भी विरोधी है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के समर्थक टैगोर को राष्ट्र के समक्ष व्यक्ति एवं

उसकी स्वतन्त्रता का समर्पण स्वीकार्य नहीं था। इसीलिए वे संकीर्ण राष्ट्रवाद का विरोध करते हुए इसे मानव की प्राकृतिक स्वच्छन्दता एवं आध्यात्मिक विकास के मार्ग में बाधा मानते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन में टैगोर की भूमिका—टैगोर राष्ट्र, राष्ट्र-राज्य और राष्ट्रवाद की संकल्पना के मुखर विरोधी थे, इसीलिए राष्ट्रीय आन्दोलन से उनकी दूरी स्वाभाविक थी। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति वे उदासीन रहे। उन्होंने वैचारिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर विमर्श को आगे बढ़ाते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्व को प्रभावित करते हुए उसके वैचारिक आधार को निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाई। दिसम्बर, 1911 में कलकत्ता में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने भाग लिया था और इसी अधिवेशन के दौरान उन्होंने पहली बार राष्ट्रगान गाया था। इससे पूर्व सन् 1905 में बंग-भंग आन्दोलन का विरोध करते हुए उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया और इसके विरोध में रक्षा-बन्धन दिवस मनाते हुए विरोध-प्रदर्शन का आह्वान किया। उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन के दौरान सन् 1905 में ही 'आमार सोनार बांग्ला' लिखकर जन्मभूमि के प्रति अपने प्रेम का इजहार किया और बांग्ला एकता का आह्वान किया। जब रॉलेट एक्ट के विरोध में आन्दोलन उठ खड़ा हुआ, तो उन्होंने अपने भाषणों और लेखों के माध्यम से ब्रिटिश शासन और उसकी दमनकारी नीतियों की घोर निन्दा की। आगे चलकर उन्होंने जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, 1919 की प्रतिक्रिया में 'नाईटहुड' का सम्मान त्यागते हुए इस घटना के प्रति अपना विरोध-प्रदर्शन किया और 'सर' की उपाधि अंग्रेजी सरकार को लौटा दी। लेकिन, सन् 1920 में जब असहयोग आन्दोलन के दौरान स्वदेशी पर जोर देते हुए विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आह्वान किया गया, तो उन्होंने विदेशी वस्त्रों को जलाये जाने की घटना की खुलकर आलोचना करते हुए कहा कि यह 'संसाधनों की निष्ठुर बर्बादी' है। सन् 1930 में जब सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आह्वान किया गया, तो उन्होंने उसका समर्थन किया।

राष्ट्रीय आन्दोलन को सशर्त समर्थन—राष्ट्रीय आन्दोलन से उनकी दूरी निर्विवाद थी और इसके पीछे उनकी यह मान्यता थी कि—

1. अति-राष्ट्रवाद और स्वदेशी का प्रबल आग्रह पश्चिम एवं विदेशी के पूरी तरह से नकार का आधार तैयार करेगा और ऐसी स्थिति में भारत खुद तक सीमित होकर रह जाएगा।
2. यह चाह सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं से भरे भारत जैसे देश में ईसाई, यहूदी, पारसी और इस्लाम धर्म के प्रति भी असहिष्णुता का माहौल सृजित करेगा, जबकि इन्होंने अलग-अलग समय पर भारतीय समाज एवं संस्कृति पर अपनी ऐसी छाप छोड़ी है जो इनके अस्तित्व से अभिन्न हो चुकी है।

स्पष्ट है कि टैगोर आजाद भारत की कल्पना करते थे और इसीलिए उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध किया, लेकिन आजादी से जुड़े आन्दोलनों को टैगोर का समर्थन बिना शर्त नहीं था। उन्होंने मानवतावाद को हमेशा देशभक्ति एवं राष्ट्रवाद से ऊपर रखा, इसीलिए उन्होंने सशस्त्र विद्रोह एवं क्रान्ति सहित किसी भी प्रकार के हिंसक आन्दोलन का खुलकर विरोध किया। यहाँ तक कि उन्होंने अतिरेक राष्ट्रवादी रुख की लगातार आलोचना की और राष्ट्रीय आन्दोलन के अतिरेकवादी राष्ट्रवाद के आग्रह ने उन्हें समकालीन राजनीति से दूर रहने के लिए विवश किया। लेकिन, सक्रिय राजनीति से दूर रहते हुए भी उन्होंने आजादी के आन्दोलन के वैचारिक आधार को तैयार करने और जरूरत पड़ने पर उसके एजेंडे के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब अछूतों के मसले पर गाँधी और अम्बेडकर के बीच मतभेद उभरकर सामने आये और ऐसा लगा कि उपनिवेशवाद-विरोधी संयुक्त मोर्चा खतरे में है, तो उन्होंने दोनों के बीच के मतभेद को कम करते हुए संकट के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। दूसरे शब्दों में कहें, तो जब-जब राष्ट्रीय आन्दोलन पर संकट के बादल मँडराए, बतौर अभिभावक उन्होंने उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उस संकट के समाधान में अपनी भूमिका का निर्वाह किया।

प्र.2. भारत की आत्मसातवादी और उदारवादी कल्पना में रविन्द्रनाथ टैगोर एवं गाँधी के विचारों की तुलना कीजिए।
Compare the ideas of Rabindranath Tagore and Gandhi in the assimilationist and liberal imagination of India.

उत्तर

भारत की आत्मसातवादी और उदारवादी कल्पना
(Imagination of Assimilationist and Liberal of India)

हालाँकि सामाजिक विचारकों, राष्ट्रवादी विद्वानों के मध्य इन सांस्कृतिक सम्पर्कों की आवश्यकता और परिणाम को लेकर पर्याय अन्तर थे, फिर भी वे इस बात से सहमत थे कि पूर्व-औपनिवेशिक युग न तो "अन्धकारमय" था और न ही 'गौरव से हीन" था। भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों, कवियों, विद्वानों, दार्शनिकों ने व्यापक रूप से भारतीय समाज में एकता को रेखांकित करने वाले पहलुओं पर प्रकाश डाला जो 'राष्ट्रत्व' प्राप्त करने में एक अग्रदूत था।

आर०जी० भंडारकर और बंकिमचन्द्र चटर्जी, रविन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और अन्य दूसरों के लेखों ने भारतीय एकता के राष्ट्रीय विमर्श की नींव रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। कुछ विद्वानों ने भारतीय राष्ट्रत्व की नींव को मजबूत करने के लिए भारतीय समाज की सभ्यतापरक एकता के पहलुओं को रेखांकित किया।

रविन्द्रनाथ टैगोर (Ravindra Nath Tagore)

टैगोर ने भारत की समावेश के योग्य, विश्वबन्धु, करुणामय, उदार और दार्शनिक रूप से सर्वोत्कृष्ट धर्मनिरपेक्ष रूप में कल्पना की है। इसको उन्होंने अपनी उत्कृष्ट कविता 'भारत तीर्थ' (Indian Pilgrimage) में अत्यधिक विस्तार से प्रतिपादित किया है, कविता में टैगोर ने लिखा है—

"ओह! माँ, मेरे मन को समुद्र के इस पवित्र तट पर धीरे-धीरे जागने दो। जहाँ पर विश्व की महान आत्माएँ श्रद्धा अर्पित करने के लिए एक साथ आई है। यहाँ फैली हुई बाँहों के साथ मानव रूप में हम परमात्मा को नमन करते हैं।.....यहाँ अपनी पूजनीय मातृभूमि को प्यार करते हैं जहाँ पर विश्व की महान आत्माएँ श्रद्धा अर्पित करने के लिए समुद्र के किनारे पर आई है।"

विदेशियों के भारत में आगमन के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है—"कोई नहीं जानता किसके निमन्त्रण ने इतनी सारी आत्माओं को बुलाया है जो नदी के अशान्त प्रवाह की तरह एकत्रित हुए है जो आया और खुद को दैवीय समुद्र में समाहित कर दिया/इस पवित्र में आर्यों, गैर-आर्यों, द्रविड़ों, अफगानों और मुगलों का आगमन हुआ और उन्होंने अपनी वैयक्तिकता को एक सर्वोच्च निकाय में पृथक कर लिया..... इस समुद्र तट से कोई भी खाली हाथ नहीं गया जहाँ पर महान आत्माएँ श्रद्धा अर्पित करने के लिए एक साथ आई है। जिन्होंने बड़े-बड़े पर्वतों और रेगिस्तानों को पार किया। अपने दिल से फौजी (युद्ध सम्बन्धी) संगीत की तरह तुम्हारे वैभव का गीत गा रहे हैं और अपने स्थान को स्वयं तुममें पाया। ..... अन्तर के बंधन की भविष्यवाणी को नकारते (दूर फेंकते) हुए, वे सार्वभौमिक भाईचारे में उभरे हैं।"

उन्होंने प्रत्येक को इस देश में एक उद्देश्य के साथ आमन्त्रित भी किया और उन्होंने लिखा है—

"आओं, ओह! आर्यों, आओ गैर-आर्यों, आओ हिन्दू और मुस्लिमों। आओ, आओ, ओह! अंग्रेजों, आओ ईसाईयों, आओ ब्राह्मणों, अपने हृदय को शुद्ध करो; दलितों और चंडालों (बाहरी जातियों) का हाथ पकड़ लो/सभी बुराइयों और अनादर को दूर करें। माँ के राज्याभिषेक के लिए जल्दी आओ, जहाँ "मंगल घट" को पवित्र जल से भरा जाना है जो महान आत्माओं के स्पर्श से अभिभूत हुआ है जो श्रद्धा अर्पित करने के लिए समुद्र के किनारे एक साथ आये हैं।"

टैगोर एक सार्वभौमिकतावादी और एक मानवतावादी थे। वह सभी रूढ़िवादिताओं/कट्टरताओं के खिलाफ थे जो भारतीय समाज में प्रचलित थी। वह समाज में सामाजिक बुराइयों और रूढ़िवादिता की आलोचना द्वारा भारत की एक आदर्श छवि को ढूँढ़ रहे थे। बहुत-सी कविताओं और अपने उपन्यासों के बहुत से चरित्रों में उन्होंने मुद्दा उठाया है। इसका पता लगाने के लिए शायद सबसे जटिल उपन्यास गोरा था, ब्राह्मण परिवार का दत्तक पुत्र जो केवल अपने जन्म और रूढ़िवादिता की निरर्थकता की वास्तविकता को जानने के लिए अति-रूढ़िवादी बन जाता है।

टैगोर एक आजाद भारत के पक्षधर थे (चाहते थे) उन्होंने अंग्रेजी ताकतों के द्वारा स्वतन्त्रता सेनानियों की निर्मम हत्याओं के खिलाफ मजबूत आवाज उठाई थी। जलियाँवाला बाग नरसंहार के परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी नाइट (Knight) की पदवी लौटा दी थी। उन्होंने लिखा "मेरी आवाज घुट गयी है, मेरी बाँसुरी ने अपनी लय (धुन) खो दी है, यह अँधेरी रात में जेल में होने जैसा है। तुमने मेरी दुनिया को बुरे सपनों के बोझ तले दबा दिया है। यही कारण है कि मैंने अश्रुपूर्ण भाव से पूछा—क्या तुमने क्षमा कर दिया, क्या तुमने प्रेम किया है, उन लोगों से जिन्होंने तुम्हारे द्वारा बनाये गये वातावरण को विषैला कर दिया है, जिन्होंने तुम्हारे चिराग की रोशनी को खत्म किया है।

टैगोर के दृष्टिकोण में भारतीय सभ्यता स्वभाव में 'समन्वयात्मक' थी। यह विविधता में एकता में स्थापित है, सभी सामाजिक और धार्मिक समूहों की विशिष्टता के महत्त्व को कम किये बिना जो समूह भारतीय समाज को बहुल और यौगिक आधार प्रदान करते हैं। इसके प्रत्यक्ष विरोध में पश्चिमी सभ्यता में आक्रामकता थी, जिसने विभिन्न संस्कृतियों को जबरन समरूप करने की कोशिश की—एक लक्षण जिसका टैगोर ने कड़ाई से विरोध किया।

गाँधी (Gandhi)

गाँधीजी ने भारतीय सभ्यता की आत्मसात प्रकृति के विचार को आगे बढ़ाया। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि स्वतन्त्रता आन्दोलन के उद्देश्य की आवश्यकता भारत से अंग्रेजों को खदेड़ना नहीं है। उनके लिए अंग्रेज भी भारतीय समाज में आत्मसात हो जाएँगे।

जैसे हजारों दूसरे प्रवासी इसमें आत्मसात हो गये हैं। गाँधीजी ने स्वीकार किया था कि भारत विविधता की एक भूमि है और इसलिए उन्होंने कभी भी 'भारतीय सभ्यता' को 'हिन्दू संस्कृति या हिन्दू सभ्यता' के द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया।

गाँधीजी को एक राष्ट्र के रूप में भारत की व्यापक और समावेशी समझ थी। भारतीय राष्ट्र से गाँधीजी का तात्पर्य आम (जनसाधारण) भारतीयों से है, जो उनके धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय या जातिगत अन्तरों के साथ-साथ नये उभरते मध्यम वर्ग से अलग है ..... (गाँधी : xiv)/उन्होंने आगे लिखा—भारत एक राष्ट्र नहीं रह सकता क्योंकि इसमें विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं। वास्तव में, यहाँ पर जितने व्यक्ति हैं उतने ही धर्म हैं, परन्तु जो लोग राष्ट्रीयता की भावना के प्रति जागरूक हैं एक-दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते हैं। अगर ऐसा करते हैं, वे एक राष्ट्र माने जाने लायक नहीं हैं।

वह आगे लिखते हैं—अगर हिन्दू विश्वास करते हैं कि भारत को केवल हिन्दुओं का देश होना चाहिए, वे स्वप्नलोक में रह रहे हैं। हिन्दू, मुस्लिम, पारसी और ईसाई जिन्होंने भारत को अपना देश बनाया है वे देश के साथी हैं और उन्हें केवल अपने हित के लिए एकता में रहना होगा (गाँधी, 52-53)।

गाँधीजी के गाँव पर विचार अद्वितीय है। गाँधीजी ग्रामीण और कुटीर उद्योगों द्वारा पूरक कृषि पर आधारित गाँवों की स्वायत्तता में विश्वास करते थे। वह औद्योगीकरण के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने लिखा—शब्द के आधुनिक अर्थ में भारत को औद्योगीकरण की आवश्यकता नहीं है। भारतीय कृषकों को क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं है ..... भारतीय कृषकों को एक पूरक उद्योग की आवश्यकता होती है। सबसे स्वाभाविक चरखे का परिचय करवाना है, न कि हथकरघे का हथकरघा हर घर में हो और एक सदी पहले भी ऐसा हुआ करता था (गाँधी, 115)। गाँधीजी प्रत्येक व्यक्ति की आत्मनिर्भरता, गरिमा और स्वायत्तता के लिए थे।

गाँधी जी ने राजनीतिक शक्ति और राज्य के बारे में लिखा है। वह लिखते हैं—"मेरे लिए राजनीतिक शक्ति एक लक्ष्य नहीं है परन्तु लोगों के जीवन के हर एक क्षेत्र में उनकी स्थिति को सुधारने का एक साधन है। राजनीतिक शक्ति का तात्पर्य राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व के द्वारा राष्ट्रीय जीवन को नियन्त्रित करने की क्षमता से है। अगर राष्ट्रीय जीवन जीवन स्वयं-नियन्त्रित होने के लिए अत्यधिक परिपूर्ण हो जाता है, तब प्रतिनिधित्व आवश्यक नहीं है। इसके बाद वहाँ प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति है। इस प्रकार के एक राज्य में प्रत्येक अपना स्वयं का शासक है। वह अपने आपको इस तरीके से शासित करता है कि वह कभी भी अपने पड़ोसी के लिए बाधा नहीं है। आदर्श राज्य में, इस प्रकार कोई राजनीतिक शक्ति नहीं है क्योंकि वहाँ कोई राज्य नहीं है। लेकिन आदर्श जीवन में कभी भी पूर्ण रूप से साकार नहीं होता है। इसीलिए थोरो का शास्त्रीय कथन है कि वह सरकार सबसे अच्छी है जो कम-से-कम नियन्त्रित करती है"

प्र.3. प्रथम विश्व युद्ध, खिलाफत और असहयोग आन्दोलन का विवरण दीजिए।
Describe First World War, Khilafat Movement and Civil Disobedience Movement.

उत्तर

पहला विश्व युद्ध, खिलाफत और असहयोग आन्दोलन
(First World War, Khilafat and Non-cooperation)

1919 के बाद के सालों में हम देखते हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन नये इलाकों तक फैल गया था, उसमें नये सामाजिक समूह शामिल हो गये थे और संघर्ष की नई पद्धतियाँ सामने आ रही थीं।

विश्व युद्ध ने एक नई आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पैदा कर दी थी। इसके कारण रक्षा व्यय में भारी इजाफा हुआ। इस खर्चे की भरपाई करने के लिए युद्ध के नाम पर कर्जे लिये गये और करों में वृद्धि की गई। सीमा शुल्क बढ़ा दिया गया और आयकर शुरू किया गया। युद्ध के दौरान कीमतें तेजी से बढ़ रही थीं। 1913 से 1918 के बीच कीमतें दोगुनी हो चुकी थीं जिसके कारण आम लोगों की मुश्किलें बढ़ गई थीं। गाँवों में सिपाहियों को जबरन भर्ती किया गया जिसके कारण ग्रामीण इलाकों में व्यापक गुस्सा था। 1918-19 और 1920-21 में देश के बहुत सारे हिस्सों में फसल खराब हो गई जिसके कारण खाद्य पदार्थों का भारी अभाव पैदा हो गया। उसी समय फ्लू की महामारी फैल गई। 1921 की जनगणना के मुताबिक दुर्भिक्ष और महामारी के कारण 120-130 लाख लोग मारे गये।

लोगों को उम्मीद थी कि युद्ध खत्म होने के बाद उनकी मुसीबतें कम हो जाएँगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

इसी समय एक नया नेता सामने आया और उसने संघर्ष का एक नया ढंग, एक नया तरीका पेश किया।

सत्याग्रह का विचार (Concept of Satyagraha)

महात्मा गाँधी जनवरी 1915 में भारत लौटे। इससे पहले वे दक्षिण अफ्रीका में थे। उन्होंने एक नये तरह के जनान्दोलन के रास्ते पर चलते हुए वहाँ की नस्लभेदी सरकार से सफलतापूर्वक लोहा लिया था। इस पद्धति को वे सत्याग्रह कहते थे। सत्याग्रह के विचार में

सत्य की शक्ति पर आग्रह और सत्य की खोज पर जोर दिया जाता था। इसका अर्थ यह था कि अगर आपका उद्देश्य सच्चा है, यदि आपका संघर्ष अन्याय के खिलाफ है तो उत्पीड़क से मुकाबला करने के लिए आपको किसी शारीरिक बल की आवश्यकता नहीं है। प्रतिशोध की भावना या आक्रामकता का सहारा लिए बिना सत्याग्रही केवल अहिंसा के सहारे भी अपने संघर्ष में सफल हो सकता है। इसके लिए दमनकारी शत्रु की चेतना को झिंझोड़ना चाहिए। उत्पीड़क शत्रु को ही नहीं बल्कि सभी लोगों को हिंसा के जरिए सत्य को स्वीकार करने पर विवश करने की बजाय सच्चाई को देखने और सहज भाव से स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस संघर्ष में अन्ततः सत्य की ही जीत होती है। गाँधीजी का विश्वास था कि अहिंसा का यह धर्म सभी भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँध सकता है।

भारत आने के बाद गाँधीजी ने कई स्थानों पर सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। 1917 में उन्होंने बिहार के चम्पारन इलाके का दौरा किया और दमनकारी बागान व्यवस्था के खिलाफ किसानों को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। 1917 में उन्होंने गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों की मदद के लिए सत्याग्रह का आयोजन किया। फसल खराब हो जाने और प्लेग की महामारी के कारण खेड़ा जिले के किसान लगान चुकाने की हालत में नहीं थे। वे चाहते थे कि लगान वसूली में ढील दी जाए। 1918 में गाँधीजी सूती कपड़ा कारखानों के मजदूरों के बीच सत्याग्रह आन्दोलन चलाने अहमदाबाद जा पहुँचे।

सत्याग्रह पर महात्मा गाँधी के विचार (Thought of Gandhiji on Satyagraha)

'कहा जाता है कि "निष्क्रिय प्रतिरोध" दुर्बलों का हथियार है। लेकिन इस लेख में जिस शक्ति की बात की गई है उसे केवल ताकतवर ही इस्तेमाल कर सकते हैं। यह निष्क्रिय प्रतिरोध की शक्ति नहीं है; इसके लिए तो सघन सक्रियता चाहिए। दक्षिण अफ्रीका का आन्दोलन निष्क्रिय नहीं बल्कि सक्रिय आन्दोलन था..।

'सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है। सत्याग्रही अपने शत्रु को कष्ट नहीं पहुँचाता है; वह अपने शत्रु का विनाश नहीं चाहता। ...सत्याग्रह के प्रयोग में दुर्भावना के लिए कोई स्थान नहीं होता।

'सत्याग्रह तो शुद्ध आत्मबल है। सत्य ही आत्मा का आधार होता है। इसीलिए इस बल को सत्याग्रह का नाम दिया गया है। आत्मा ज्ञान से हमेशा लैस होती है। इसमें प्यार की लौ जलती है...। अहिंसा सर्वोच्च धर्म है...।

'इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत विनाशकारी शस्त्रों के मामले में ब्रिटेन या यूरोप का मुकाबला नहीं कर सकता। अंग्रेज युद्ध के देवता की उपासना करते हैं। वे सब हथियारों से लैस हो सकते हैं, होते जा रहे हैं। भारत में करोड़ों लोग कभी हथियार लेकर नहीं चल सकते। उन्होंने अहिंसा के धर्म को आत्मसात् कर लिया है...।'

रॉलेट एक्ट (Rowlatt Act)

इस कामयाबी से उत्साहित गाँधीजी ने 1919 में प्रस्तावित रॉलेट एक्ट (1919) के खिलाफ एक राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह आन्दोलन चलाने का फैसला लिया। भारतीय सदस्यों के भारी विरोध के बावजूद इस कानून को इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल ने बहुत जल्दबाजी में पारित कर दिया था। इस कानून के जरिए सरकार को राजनीतिक गतिविधियों को कुचलने और राजनीतिक कैदियों को दो साल तक बिना मुकदमा चलाये जेल में बन्द रखने का अधिकार मिल गया था। महात्मा गाँधी ऐसे अन्यायपूर्ण कानूनों के खिलाफ अहिंसक ढंग से नागरिक अवज्ञा चाहते थे। इसे 6 अप्रैल को एक हड़ताल से शुरू होना था।

विभिन्न शहरों में रैली-जुलूसों का आयोजन किया गया। रेलवे वर्कशॉप्स में कामगार हड़ताल पर चले गये। दुकानें बन्द हो गईं। इस व्यापक जन-उभार से चिन्तित तथा रेलवे व टेलीग्राफ जैसी संचार सुविधाओं के भंग हो जाने की आशंका से भयभीत अंग्रेजों ने राष्ट्रवादियों पर दमन शुरू कर दिया। अमृतसर में बहुत सारे स्थानीय नेताओं को हिरासत में ले लिया गया। गाँधीजी के दिल्ली में प्रवेश करने पर पाबन्दी लगा दी गई। 10 अप्रैल को पुलिस ने अमृतसर में एक शान्तिपूर्ण जुलूस पर गोली चला दी। इसके बाद लोग बैंकों, डाकखानों और रेलवे स्टेशनों पर हमले करने लगे। मार्शल लॉ लागू कर दिया गया और जनरल डायर ने कमान सँभाल ली।

13 अप्रैल को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ। उस दिन अमृतसर में बहुत सारे गाँव वाले सालाना वैसाखी मेले में शिरकत करने के लिए जलियाँवाला बाग मैदान में जमा हुए थे। काफी लोग तो सरकार द्वारा लागू किये गये दमनकारी कानून का विरोध प्रकट करने के लिए एकत्रित हुए। यह मैदान चारों तरफ से बंद था। शहर से बाहर होने के कारण वहाँ जुटे लोगों को यह पता नहीं था कि इलाके में मार्शल लॉ लागू किया जा चुका है। जनरल डायर हथियारबंद सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा और जाते ही उसने मैदान से बाहर निकलने के सारे रास्तों को बंद कर दिया। इसके बाद उसके सिपाहियों ने भीड़ पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चला दीं। सैंकड़ों लोग मारे गये। बाद में उसने बताया कि वह सत्याग्रहियों के जहन में दहशत और विस्मय का भाव पैदा करके 'एक नैतिक प्रभाव' उत्पन्न करना चाहता था।

TOUCH 'n' PASS

जैसे-जैसे जलियाँवाला बाग की खबर फैली, उत्तर भारत के बहुत सारे शहरों में लोग सड़कों पर उतरने लगे। हड़तालें होने लगीं, लोग पुलिस से मोर्चा लेने लगे और सरकारी इमारतों पर हमला करने लगे। सरकार ने इन कार्यवाहियों को निर्ममता से कुचलने का रास्ता अपनाया। सरकार लोगों को अपमानित और आतंकित करना चाहती थी। सत्याग्रहियों को जमीन पर नाक रगड़ने के लिए, सड़क पर घिसटकर चलने और सारे साहिबों को सलाम मारने के लिए मजबूर किया गया। लोगों को कोड़े मारे गये और गाँवों (गुजराँवाला, पंजाब) पर बम बरसाये गये। हिंसा फैलते देख महात्मा गाँधी ने आन्दोलन वापस ले लिया।

भले ही रॉलेट सत्याग्रह एक बहुत बड़ा आन्दोलन था लेकिन अभी भी वह मुख्य रूप से शहरों और कस्बों तक ही सीमित था। महात्मा गाँधी पूरे भारत में और भी ज्यादा जनाधार वाला आन्दोलन खड़ा करना चाहते थे। लेकिन उनका मानना था कि हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे के नजदीक लाये बिना ऐसा कोई आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता। उन्हें लगता था कि खिलाफत का मुद्दा उठाकर वे दोनों समुदायों को नजदीक ला सकते हैं। पहले विश्व युद्ध में ऑटोमन तुर्की की हार हो चुकी थी। इस आशय की अफवाहें फैली हुई थीं कि इस्लामिक विश्व के आध्यात्मिक नेता (खलीफा) ऑटोमन सम्राट पर एक बहुत सख्त शान्ति सन्धि थोपी जाएगी। खलीफा की तात्कालिक शक्तियों की रक्षा के लिए मार्च 1919 में बम्बई में एक खिलाफत समिति का गठन किया गया था। मोहम्मद अली और शौकत अली बन्धुओं के साथ-साथ कई युवा मुस्लिम नेताओं ने इस मुद्दे पर संयुक्त जनकार्रवाही की सम्भावना तलाशने के लिए महात्मा गाँधी के साथ चर्चा शुरू कर दी थी। सितम्बर 1920 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने भी दूसरे नेताओं को इस बात पर राजी कर लिया कि खिलाफत आन्दोलन के समर्थन और स्वराज के लिए एक असहयोग आन्दोलन शुरू किया जाना चाहिए।

असहयोग (Non-cooperation)

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिन्द स्वराज (1909) में महात्मा गाँधी ने कहा था कि भारत में ब्रिटिश शासन भारतीयों के सहयोग से ही स्थापित हुआ था और यह शासन इसी सहयोग के कारण चल पा रहा है। अगर भारत के लोग अपना सहयोग वापस ले लें तो साल भर के भीतर ब्रिटिश शासन ढह जाएगा और स्वराज की स्थापना हो जाएगी।

असहयोग का विचार आन्दोलन कैसे बन सकता था? गाँधीजी का सुझाव था कि यह आन्दोलन चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ना चाहिए। सबसे पहले लोगों को सरकार द्वारा दी गई पदवियाँ लौटा देनी चाहिए और सरकारी नौकरियों, सेना, पुलिस, अदालतों, विधायी परिषदों, स्कूलों और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहिए। अगर सरकार दमन का रास्ता अपनाती है तो व्यापक सविनय अवज्ञा अभियान भी शुरू किया जाए। 1920 की गर्मियों में गाँधीजी और शौकत अली आन्दोलन के लिए समर्थन जुटाते हुए देशभर में यात्राएँ करते रहे।

कांग्रेस में बहुत सारे लोग इन प्रस्तावों पर सशंकित थे। वे नवम्बर 1920 में विधायी परिषद के लिए होने वाले चुनावों का बहिष्कार करने में हिचकिचा रहे थे। उन्हें भय था कि इस आन्दोलन में लोग हिंसा कर सकते हैं। सितम्बर से दिसम्बर तक कांग्रेस में भारी खींचतान चलती रही। कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि आन्दोलन के समर्थकों और विरोधियों के बीच सहमति नहीं बन पाएगी। आखिरकार दिसम्बर 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में एक समझौता हुआ और असहयोग कार्यक्रम पर स्वीकृति की मोहर लगा दी गई।

प्र.4. असहयोग आन्दोलन के भीतर अलग-अलग धाराओं का वर्णन कीजिए।
Describe the different streams within the Non-Cooperation Movement.

उत्तर

आन्दोलन के भीतर अलग-अलग धाराएँ
(Different Streams in Movement)

असहयोग-खिलाफत आन्दोलन जनवरी 1921 में शुरू हुआ। इस आन्दोलन में विभिन्न सामाजिक समूहों ने हिस्सा लिया लेकिन हरेक की अपनी-अपनी आकांक्षाएँ थीं। सभी ने स्वराज के आह्वान को स्वीकार तो किया लेकिन उनके लिए उसके अर्थ अलग-अलग थे।

शहरों में आन्दोलन (Movement in Cities)

आन्दोलन की शुरुआत शहरी मध्यवर्ग की हिस्सेदारी के साथ हुई। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल-कॉलेज छोड़ दिये। हेडमास्टरों और शिक्षकों ने इस्तीफे सौंप दिये। वकीलों ने मुकदमे लड़ना बन्द कर दिया। मद्रास के अलावा ज्यादातर प्रान्तों में परिषद् चुनावों का बहिष्कार किया गया। मद्रास में गैर-ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई जस्टिस पार्टी का मानना था कि काउंसिल में प्रवेश के जरिए उन्हें वे अधिकार मिल सकते हैं जो सामान्य रूप से केवल ब्राह्मणों को मिल पाते हैं इसलिए इस पार्टी ने चुनावों का बहिष्कार नहीं किया।

आर्थिक मोर्चे पर असहयोग का असर और भी ज्यादा नाटकीय रहा। विदेशी सामानों का बहिष्कार किया गया, शराब की दुकानों की पिकेटिंग की गई और विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाने लगी। 1921 से 1922 के बीच विदेशी कपड़ों का आयात आधा रह गया था। उसकी कीमत 102 करोड़ से घटकर 57 करोड़ रह गई। बहुत सारे स्थानों पर व्यापारियों ने विदेशी चीजों का व्यापार करने या विदेशी व्यापार में पैसा लगाने से इन्कार कर दिया। जब बहिष्कार आन्दोलन फैला और लोग आयातित कपड़े को छोड़कर केवल भारतीय कपड़े पहनने लगे तो भारतीय कपड़ा मिलों और हथकरघों का उत्पादन भी बढ़ने लगा।

कुछ समय बाद शहरों में यह आन्दोलन धीमा पड़ने लगा। इसके कई कारण थे। खादी का कपड़ा मिलों में भारी पैमाने पर बनने वाले कपड़ों के मुकाबले प्राय: महँगा होता था और गरीब उसे नहीं खरीद सकते थे। वे मिलों के कपड़े का लम्बे समय तक बहिष्कार कैसे कर सकते थे? ब्रिटिश संस्थानों के बहिष्कार से भी समस्या पैदा हो गई। आन्दोलन की कामयाबी के लिए वैकल्पिक भारतीय संस्थानों की स्थापना जरूरी थी ताकि ब्रिटिश संस्थानों के स्थान पर उनका प्रयोग किया जा सके। लेकिन वैकल्पिक संस्थानों की स्थापना की प्रक्रिया बहुत धीमी थी। फलस्वरूप, विद्यार्थी और शिक्षक सरकारी स्कूलों में लौटने लगे और वकील दोबारा सरकारी अदालतों में दिखाई देने लगे।

ग्रामीण इलाकों में विद्रोह (Revolt in Rural Areas)

शहरों से बढ़कर असहयोग आन्दोलन देहात में भी फैल गया था। युद्ध के बाद देश के विभिन्न भागों में चले किसानों व आदिवासियों के संघर्ष भी इस आन्दोलन में समा गये।

अवध में संन्यासी बाबा रामचन्द्र किसानों का नेतृत्व कर रहे थे। बाबा रामचन्द्र इससे पहले फिजी में गिरमिटिया मजदूर के तौर पर काम कर चुके थे। उनका आन्दोलन तालुकदारों और जमींदारों के खिलाफ था जो किसानों से भारी-भरकम लगान और तरह-तरह के कर वसूल कर रहे थे। किसानों को बेगार करनी पड़ती थी। पट्टेदार के तौर पर उनके पट्टे निश्चित नहीं होते थे। उन्हें बार-बार पट्टे की जमीन से हटा दिया जाता था ताकि जमीन पर उनका कोई अधिकार स्थापित न हो सके। किसानों की माँग थी कि लगान कम किया जाए, बेगार खत्म हो और दमनकारी जमींदारों का सामाजिक बहिष्कार किया जाए। बहुत सारे स्थानों पर जमींदारों को नाई-धोबी की सुविधाओं से भी वंचित करने के लिए पंचायतों ने नाई-धोबी बंद का फैसला लिया। जून 1920 में जवाहर लाल नेहरू ने अवध के गाँवों का दौरा किया, गाँववालों से बातचीत की और उनकी व्यथा समझने का प्रयास किया। अक्टूबर तक जवाहर लाल नेहरू, बाबा रामचन्द्र तथा कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में अवध किसान सभा का गठन कर लिया गया। महीने भर में इस पूरे इलाके के गाँवों में संगठन की 300 से ज्यादा शाखाएँ बन चुकी थीं। अगले साल जब असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ तो कांग्रेस ने अवध के किसान संघर्ष को इस आन्दोलन में शामिल करने का प्रयास किया लेकिन किसानों के आन्दोलन में ऐसे स्वरूप विकसित हो चुके थे जिनसे कांग्रेस का नेतृत्व खुश नहीं था। 1921 में जब आन्दोलन फैला तो तालुकदारों और व्यापारियों के मकानों पर हमले होने लगे, बाजारों में लूटपाट होने लगी और अनाज के गोदामों पर कब्जा कर लिया गया। बहुत सारे स्थानों पर स्थानीय नेता किसानों को समझा रहे थे कि गाँधीजी ने ऐलान कर दिया है कि अब कोई लगान नहीं भरेगा और जमीन गरीबों में बाँट दी जाएगी। महात्मा का नाम लेकर लोग अपनी सारी कार्यवाहियों और आकांक्षाओं को सही ठहरा रहे थे।

आदिवासी किसानों ने महात्मा गाँधी के संदेश और स्वराज के विचार का कुछ और ही मतलब निकाला। उदाहरण के लिए, आन्ध्र प्रदेश की गूडेम पहाड़ियों में 1920 के दशक की शुरुआत में एक उग्र गुरिल्ला आन्दोलन फैल गया। कांग्रेस इस तरह के संघर्ष को कभी स्वीकार नहीं कर सकती थी। अन्य वन क्षेत्रों की तरह यहाँ भी अंग्रेजी सरकार ने बड़े-बड़े जंगलों में लोगों के दाखिल होने पर पाबन्दी लगा दी थी। लोग इन जंगलों में न तो मवेशियों को चरा सकते थे न ही जलावन के लिए लकड़ी और फल बीन सकते थे। इससे पहाड़ों के लोग परेशान और गुस्सा थे। न केवल उनकी रोजी-रोटी पर असर पड़ रहा था बल्कि उन्हें लगता था कि उनके परम्परागत अधिकार भी छीने जा रहे हैं। जब सरकार ने उन्हें सड़कों के निर्माण के लिए बेगार करने पर मजबूर किया तो लोगों ने बगावत कर दी। उनका नेतृत्व करने वाले अल्लूरी सीताराम राजू एक दिलचस्प व्यक्ति थे। उनका दावा था कि उनके पास बहुत सारी विशेष शक्तियाँ हैं—वह सटीक खगोलीय अनुमान लगा सकते हैं, लोगों को स्वस्थ कर सकते हैं तथा गोलियाँ भी उन्हें नहीं मार सकतीं। राजू के व्यक्तित्व से चमत्कृत विद्रोहियों को विश्वास था कि वह ईश्वर का अवतार है। राजू महात्मा गाँधी की महानता के गुण गाते थे। उनका कहना था कि वह असहयोग आन्दोलन से प्रेरित हैं। उन्होंने लोगों को खादी पहनने तथा शराब छोड़ने के लिए प्रेरित किया। साथ ही उन्होंने यह दावा भी किया कि भारत अहिंसा के बल पर नहीं बल्कि केवल बल प्रयोग के जरिए ही आजाद हो सकता है। गूडेम विद्रोहियों ने पुलिस थानों पर हमले किये, ब्रिटिश अधिकारियों को मारने की कोशिश की और स्वराज प्राप्ति के लिए गुरिल्ला युद्ध चलाते रहे। 1924 में राजू को फाँसी दे दी गई। राजू अपने लोगों के बीच लोकनायक बन चुके।

TOUCH 'n' PASS

बागानों में स्वराज (Swaraj in Plantation)

महात्मा गाँधी के विचारों और स्वराज की अवधारणा के बारे में मजदूरों की अपनी समझ थी। असम के बागानी मजदूरों के लिए आजादी का मतलब यह था कि वे उन चारदीवारियों से जब चाहे आ-जा सकते हैं जिनमें उनको बन्द करके रखा गया था। उनके लिए आजादी का मतलब था कि वे अपने गाँवों से सम्पर्क रख पाएँगे। 1859 के इनलैंड इमिग्रेशन एक्ट के तहत बागानों में काम करने वाले मजदूरों को बिन इजाजत बागान से बाहर जाने की छूट नहीं होती थी और यह इजाजत उन्हें विरले ही कभी मिलती थी। जब उन्होंने असहयोग आन्दोलन के बारे में सुना तो हजारों मजदूर अपने अधिकारियों की अवहेलना करने लगे। उन्होंने बागान छोड़ दिये और अपने घर को चल दिये। उनको लगता था कि अब गाँधी राज आ रहा है इसलिए अब तो हरेक को गाँव में जमीन मिल जाएगी। लेकिन वे अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच पाए। रेलवे और स्टीमरों की हड़ताल के कारण वे रास्ते में ही फँसे रह गये। उन्हें पुलिस ने पकड़ लिया और उनकी बुरी तरह पिटाई हुई।

इन स्थानीय आन्दोलनों की अपेक्षाओं और दृष्टियों को कांग्रेस के कार्यक्रम में परिभाषित नहीं किया गया था। उन्होंने तो स्वराज शब्द का अपने-अपने हिसाब से अर्थ निकाल लिया था। उनके लिए यह एक ऐसे युग का द्योतक था जब सारे कष्ट और सारी मुसीबतें खत्म हो जाएँगी। फिर भी, जब आदिवासियों ने गाँधीजी के नाम का नारा लगाया और 'स्वतन्त्र भारत' की हुँकार भरी तो वे एक अखिल भारतीय आन्दोलन से भी भावनात्मक स्तर पर जुड़े हुए थे। जब वे महात्मा गाँधी का नाम लेकर काम करते थे या अपने आन्दोलन को कांग्रेस के आन्दोलन से जोड़कर देखते थे तो वास्तव में एक ऐसे आन्दोलन का अंग बन जाते थे जो उनके इलाके तक ही सीमित नहीं था।

प्र.5. भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारकों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
Describe in detail about the factors for the rise of Nationalism in India.

उत्तर

भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारक
(Emerging Factors of Indian Nationalism)

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आन्दोलन का आरम्भ हुआ। दिसम्बर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव पड़ी। आगे चलकर इसी के नेतृत्व में विदेशी शासन से स्वतन्त्रता के लिए भारतीयों ने एक लम्बा और साहसी संघर्ष किया।

विदेशी प्रभुत्व के परिणाम (Results of Foreign Supremacy)

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब रूप में उदित हुआ। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता दी। ब्रिटिश शासन और उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष परिणामों ने ही भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के लिए भौतिक, नैतिक और बौद्धिक परिस्थितियाँ तैयार कीं।

इस आन्दोलन की जड़ें भारतीय जनता के हितों और भारत में ब्रिटिश नीतियों के टकराव में थीं। अंग्रेजों ने अपने हितों को पूरा करने के लिए ही भारत को अपने अधीन बनाया था। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वे भारत का शासन चला रहे थे। वे अक्सर ब्रिटेन के लाभ के लिए भारतीयों की भलाई को भी ध्यान में नहीं रखते थे। धीरे-धीरे भारतीयों ने अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों और अंग्रेजों के दूसरे प्रमुख वर्गों के अधिकारों के लिए उनकी अपनी भावनाओं का बलिदान दिया जा रहा है। स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण बनता गया और भारत में आन्दोलन का आधार यही तथ्य था। यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्त्व बन चुका था। इससे भी बड़ी बात यह है कि अधिक-से-अधिक भारतीय इस तथ्य को स्वीकार करने लगे थे और उनकी यह संख्या बढ़ती जा रही थी।

भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समूह ने धीरे-धीरे यह देखा कि उसके हित अंग्रेज शासकों के हाथों में असुरक्षित है। किसान देख रहे थे कि सरकार मालगुजारी के नाम पर उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा उनसे ले लेती थी। सरकार और उसकी पुलिस, उसकी अदालतें और उसके अधिकारी, सभी उन जमींदारों और भूस्वामियों के समर्थक और रक्षक जो किसान से कसकर लगान वसूलते थे, वे उन व्यापारियों और सूदखोरों के रक्षक थे जो तरह-तरह से किसान को धोखा देते, उसका शोषण करते और उसकी जमीन उससे छीन लेते थे। जब कभी किसान जमींदारों और सूदखोरों के दमन के खिलाफ उठ खड़े होते थे, तो पुलिस और सेना व्यवस्था के नाम पर उनको कुचल दिया करती थी।

दस्तकार और शिल्पी यह महसूस कर रहे थे कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही थी और उनके पुनर्वास के लिए कुछ नहीं कर रही थी। आगे चलकर बीसवीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के

मजदूरों ने पाया कि सारी जबानी हमदर्दी के बावजूद सरकार पूँजीपतियों का, खासकर विदेशी पूँजीपतियों का ही साथ देती थी। जब कभी मजदूर ट्रेड यूनियन बनाने तथा हड़तालों, प्रदर्शनों और अन्य संघर्षों के द्वारा स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करते, सरकार का पूरा तन्त्र उनके विरुद्ध उठ खड़ा होता। इसके अलावा उन्होंने यह भी महसूस किया कि बढ़ती बेरोजगारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से सम्भव है और यह कार्य केवल एक स्वाधीन सरकार कर सकती है।

भारतीय समाज के दूसरे समूह भी कुछ कम असन्तुष्ट नहीं थे। शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को समझने के लिए नये-नये प्राप्त आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। पहले जिन लोगों ने 1857 में ब्रिटिश शासन का समर्थन इस आशा में किया कि विदेशी होने के बावजूद यह शासन देश को एक आधुनिक और औद्योगिक देश बनाएगा, वे अब धीरे-धीरे निराश होने लगे थे। आर्थिक दृष्टि से उन्हें आशा थी कि ब्रिटिश पूँजीवाद ने जैसे ब्रिटेन में उत्पादक शक्तियों को विकसित किया था, उसी प्रकार वह भारत की शक्तियों को भी विकसित करेगा। लेकिन उन्होंने यह पाया कि ब्रिटेन के पूँजीवाद के इशारों पर भारत में ब्रिटिश शासन ने जो नीतियाँ अपनाई वे देश को आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा या अल्पविकसित बनाये हुई थीं और उसकी उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक हो रही थीं।

राजनीतिक स्तर पर शिक्षित भारतीय समुदाय को यह लगा कि अंग्रेजों ने पहले भारत को स्वशासन का मार्ग दिखाने के जो भी दावे किये थे, उन सबको वे भूल चुके थे। अधिकांश ब्रिटिश अधिकारियों और राजनीतिक लोगों ने खुली घोषणा की थी कि अंग्रेज भारत में बने रहेंगे। इसके अलावा भाषण, प्रेस तथा व्यक्ति को और अधिक स्वतन्त्रता देने की जगह उन पर अधिकाधिक प्रतिबन्ध लगाये जा रहे थे। अंग्रेज अधिकारियों और लेखकों ने भारतीयों को जनतन्त्र या स्वशासन की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया था। संस्कृति के क्षेत्र में भी शासक उच्च शिक्षा और आधुनिक विचारों के प्रसार के बारे में अधिकाधिक नकारात्मक, शत्रुतापूर्ण रवैया अपना रहे थे।

उभरते हुए भारतीय पूँजीपति वर्ग में बहुत धीरे-धीरे राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना विकसित हुई। लेकिन इस वर्ग ने भी धीरे-धीरे पाया कि यह साम्राज्यवाद के कारण नुकसान उठा रहा था। सरकार की व्यापार, चुंगी कर और यातायात सम्बन्धी नीतियों के कारण इसके विकास में भारी बाधाएँ आ रही थीं। नया और कमजोर वर्ग होने के नाते तथा इसे अपनी कमजोरियों की भरपाई के लिए सरकार की सक्रिय सहायता की जरूरत थी। इसके बजाय सरकार और उसकी नौकरशाही उन विदेशी पूँजीपतियों का साथ दे रहे थे जो अपने विशाल संसाधनों के साथ भारत आकर यहाँ के सीमित औद्योगिक क्षेत्र को हथिया रहे थे। भारतीय पूँजीपतियों का विशेष विरोध विदेशी पूँजीपतियों की सख्त प्रतियोगिता के प्रति था। इस तरह भारतीय पूँजीपतियों ने भी महसूस किया कि उनके स्वतन्त्र विकास और साम्राज्यवाद के बीच एक अन्तर्विरोध था और यह कि एक राष्ट्रीय सरकार ही भारतीय व्यापार और उद्योगों के तीव्र विकास की परिस्थितियाँ तैयार कर सकती थी।

भारतीय समाज में केवल जमींदार, भूस्वामी और राजे-महाराजे ही ऐसे वर्ग थे जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से मेल खाते थे और इसलिए वे अन्त तक विदेशी शासन का साथ देते रहे। लेकिन इन वर्गों से भी बहुत से लोग राष्ट्रीय आन्दोलन में आये। उस समय के राष्ट्रवादी वातावरण में देशभक्ति की भावना ने बहुतों को प्रभावित किया। इसके अलावा प्रजातीय भेदभाव और श्रेष्ठता की नीतियों ने प्रत्येक विचारशील, स्वाभिमानी भारतीय में घृणा जगाकर उसे उठ खड़ा किया, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न रहा हो। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं ब्रिटिश शासन के विदेशी चरित्र ने भी राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया को जन्म दिया। कारण यह है कि विदेशी दासता गुलाम जनता के दिलों में हमेशा ही देशभक्ति की भावनाएँ पैदा करती है।

संक्षेप में, विदेशी साम्राज्यवाद का अपना चरित्र और भारतीय जनता पर उसका हानिकारक प्रभाव, इन बातों के कारण ही भारत में एक प्रतिद्वन्द्वी आन्दोलन का धीरे-धीरे जन्म और विकास हुआ। यह आन्दोलन एक राष्ट्रीय आन्दोलन था क्योंकि यह समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों को प्रेरित कर रहा था कि वे अपने मतभेद भुलाकर अपने शत्रु के खिलाफ एकजुट हों।

देश का प्रशासकीय और आर्थिक एकीकरण
(Administrative and Economic Unification of Countries)

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास आसानी से हुआ। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे पूरे देश में सरकार की एकसमान, आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी और इस तरह इसका प्रशासकीय एकीकरण हो चुका था। ग्रामीण और स्थानीय आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश और अखिल भारतीय पैमाने पर आधुनिक व्यापार और उद्योग की स्थापना के कारण भारत का आर्थिक जीवन निरन्तर एक इकाई के रूप में ढलता चला गया और देश के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित परस्पर सम्बद्ध हो गये। उदाहरण के लिए, भारत के किसी एक हिस्से में अकाल फूटता या वस्तुओं की कमी होती है तो दूसरे सभी भागों में भी

खाद्य/सामग्री की कीमतों और उपलब्धता पर उसका प्रभाव पड़ता था। इसके अलावा रेलवे, तार और एकीकृत डाक व्यवस्था के आरम्भ ने भी देश को एकजुट बना दिया था और जनता, विशेष रूप से नेताओं के पारस्परिक सम्पर्क को बढ़ावा दिया था। इस सिलसिले में भी, विदेशी शासन का अस्तित्व ही एकता का कारण बन गया, हालाँकि यह शासन सामाजिक वर्ग, जाति, धर्म या क्षेत्र का भेद किये बिना पूरी भारतीय जनता का दमन करता था। पूरे देश के लोगों ने देखा कि वे एक ही शत्रु अर्थात् ब्रिटिश शासन के हाथों पीड़ित थे। एक तरफ तो एक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण बन गया और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष और उस संघर्ष के दौरान उपजी एकजुटता की भावना ने भारतीय राष्ट्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमी विचार और शिक्षा (Western Thoughts and Education)

उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा के प्रसार के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में भारतीयों ने एक आधुनिक, बुद्धिसंगत, धर्मनिरपेक्ष, सार्वजनिक और राष्ट्रवादी राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। वे यूरोपीय राष्ट्रों के समसामयिक राष्ट्रवादी आन्दोलनों का अध्ययन, उनकी प्रशंसा और उनकी अनुकरण करने के प्रयत्न भी करने लगे। रूसो, पेन, जॉन स्टुअर्ट मिल और दूसरे पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गये जबकि मैजिनी, गैरीबाल्डी और आयरिश के राष्ट्रवादी नेता उनके राजनीतिक आदर्श हो गये। विदेशी दासता के अपमान की चुभन को सबसे पहले इन्हीं शिक्षित भारतीयों ने महसूस किया। विचारों से आधुनिक बनकर इन लोगों ने विदेश शासन की बुराइयों के अध्ययन की योग्यता भी प्राप्त कर ली। उन्हें एक आधुनिक, मजबूत, समृद्ध और एकताबद्ध भारत की कल्पना से प्रेरणा प्राप्त होती रही। कालान्तर में, इन्हीं में से बेहतरीन तत्त्व राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता और संगठनकर्त्ता बने।

हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझनी चाहिए कि राष्ट्रीय आन्दोलन आधुनिक शिक्षा प्रणाली की उपज नहीं था, बल्कि वह ब्रिटेन और भारत के हितों के टकराव से उत्पन्न हुआ था। इस प्रणाली ने यह किया कि शिक्षित भारतीयों को पाश्चात्य विचार अपनाकर राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्व को सँभालने तथा उसे एक जनतान्त्रिक और आधुनिक दिशा देने में समर्थ बनाया। वास्तविकता यह है कि स्कूलों और कॉलेजों में अधिकारीगण विदेशी शासन के प्रति विनम्रता और सेवा का भाव ही जगाने के प्रयत्न करते थे। राष्ट्रवादी विचार तो आधुनिक विचारों के सामान्य प्रसार के कारण आये। चीन और इण्डोनेशिया जैसे दूसरे एशियाई देशों में और पूरे अफ्रीका में भी आधुनिक और राष्ट्रवादी विचार फैले हालाँकि वहाँ आधुनिक स्कूलों और कॉलेजों की संख्या बहुत कम थी।

आधुनिक शिक्षा ने शिक्षित भारतीयों के दृष्टिकोण तथा एक सीमा तक एकजुटता और समानता पैदा की। इस सिलसिले में अंग्रेजी भाषा की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। यह आधुनिक विचारों के प्रसार का साधन बन गया। यह देश विभिन्न भाषायी क्षेत्रों के शिक्षित भारतीयों के बीच यह बन गई। यह देश के विभिन्न भाषायी क्षेत्रों के शिक्षित भारतीयों के बीच विचारों का आदान-प्रदान तथा सम्पर्क का माध्यम बन गई। लेकिन जल्दी ही अंग्रेजी साधारण जनता में आधुनिक ज्ञान के प्रसार में बाधक भी बन गई। यह शिक्षित नागरिक वर्ग को साधारण जनता खासकर ग्रामीण जनता से अलग रखने का काम भी करने लगी। भारत के राजनीतिक नेताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह समझा। दादाभाई नौरोजी, सैय्यद अहमद खान, और जस्टिस रानाडे से लेकर तिलक और गाँधीजी तक सभी ने शिक्षा प्रणाली में भारतीय भाषाओं को एक बड़ी भूमिका दिये जाने की माँग पर आन्दोलन किये। वास्तव में जहाँ तक साधारण जनता का सवाल था, आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं, उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा सबसे अधिक तो भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय प्रेस के कारण हुआ।

प्रेस तथा साहित्य की भूमिका (Role of Press and Literature)

वह प्रमुख साधन प्रेस था जिसके द्वारा राष्ट्रवादी भारतीयों ने देशभक्ति की भावनाओं का, आधुनिक आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक विचारों का प्रचार किया तथा एक अखिल भारतीय चेतना जगाई। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी समाचार पत्र निकले। उनके पन्नों पर सरकारी नीतियों की लगातार आलोचना होती थी, भारतीय दृष्टिकोण को सामने रखा जाता था लोगों को एकजुट होकर राष्ट्रीय कल्याण के काम करने को था, और जनता के बीच स्वशासन, जनतन्त्र, संशोधन, आदि के विचारों को लोकप्रिय बनाया जाता था। देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादी कार्यकर्त्ताओं को भी परस्पर विचारों के आदान-प्रदान करने में प्रेस ने समर्थ बनाया।

उपन्यासों, निबन्धों, देशभक्तिपूर्ण काव्य आदि के रूप में राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में प्रमुख भूमिका निभाई। बंगला में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय और रवीन्द्रनाथ टैगोर, असमी में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, मराठी में विष्णु शास्त्री चिपलुनकर तमिल में सुब्रमण्य भारती, हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उर्दू-अल्ताफ हुसैन हाली इस काल के कुछ प्रमुख राष्ट्रवादी लेखक थे।

भारत के अतीत की खोज (Search of Past of India)

कई भारतीय इस कदर पस्त हो चुके थे कि वे अपनी स्वशासन की क्षमता में एकदम भरोसा खो बैठे थे। इसके अलावा उस समय के अधिकांश ब्रिटिश अधिकारी और लेखक लगातार यह बात दोहराते रहते थे कि भारतीय लोग कभी भी अपना शासन चलाने के योग्य नहीं थे कि हिन्दू और मुस्लिम आपस में लड़ते रहे हैं, कि भारतीयों के भाग्य में ही विदेशियों के अधीन रहना लिखा है, कि उनका धर्म और सामाजिक जीवन पतित और असभ्य रहे हैं और इस कारण वे लोकतन्त्र या स्वशासन तक के काबिल नहीं है। इस प्रचार का जवाब देकर कई राष्ट्रवादी नेताओं ने आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगाने के प्रयत्न किये। वे गर्व से भारत की सांस्कृतिक धरोहर की ओर संकेत करते और आलोचकों का ध्यान अशोक, अकबर और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे शासकों ने विद्वानों कला, वास्तुकला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और राजनीति में भारत की राष्ट्रीय धरोहर की फिर से खोज करने में जो कुछ किया उससे इन राष्ट्रवादी नेताओं को बल और प्रोत्साहन मिला। दुर्भाग्य से कुछ राष्ट्रवादी नेता दूसरे छोर तक चले गये और भारत के अतीत की कमजोरियों और पिछड़ेपन से आँखें चुराकर गैर-आलोचनात्मक ढंग से उसे महिमा मंडित करने लगे। विशेष रूप से प्राचीन भारत की उपलब्धियों के प्रचार करने तथा मध्यकालीन भारत की उतनी ही महान उपलब्धियों को अनदेखा करने की प्रवृत्ति ने भी बहुत नुकसान पहुँचाया। इसके कारण हिन्दुओं में साम्प्रदायिक भावनाओं के विकास को प्रोत्साहन मिला। साथ ही इसकी जवाबी प्रवृत्ति के रूप में मुसलमान सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रेरणा पाने के लिए अरबों और तुर्कों के इतिहास की ओर नजर करने लगे। इसके अलावा, पश्चिम के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की चुनौती का जवाब देते समय बहुत से भारतीय यह बात भी भूल गये थे कि भारत की जनता कई क्षेत्रों में सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी थी। इससे गर्व और आत्मसन्तोष की एक झूठी भावना पनपी जो भारतीयों को अपने समाज के आलोचनात्मक अध्ययन से रोकती थी। इसके कारण सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन के खिलाफ संघर्ष कमजोर हुआ और कई भारतीय दूसरी जातियों के स्वस्थ और नये विचारों और नये प्रवृत्तियों से विमुख रहे।

शासकों का जातीय दंभ (Cast Arrogance of Rulers)

भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक गौण लेकिन महत्त्वपूर्ण कारण जातीय श्रेष्ठता का वह दंभ था जो भारतीयों के प्रति कई अंग्रेजों के व्यवहार में पाया जाता था। इस जातीय दंभ का एक कड़वा और प्रचलित रूप तब देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेज का पक्ष लेती थी। जैसा कि जी०ओ० ट्रेवेलियन ने 1864 में लिखा है—"हमारे अपने देश के एक व्यक्ति का बयान भी अदालतों में अनेक हिन्दुओं से अधिक महत्त्व रखता है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें शक्ति का एक भयानक साधन एक बेईमान और चालाक अंग्रेज के हाथों में पहुँच जाता है।" यह जातीय दंभ जाति, धर्म प्रान्त या वर्ग का भेदभाव किये बिना तमाम भारतीयों को एकसमान हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगों के क्लबों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उस डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी, जिसमें यूरोपीय यात्री जा रहे हों। इससे उनके राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ और अंग्रेजों के मुकाबले वे अपने-आपको एक जनगण के रूप में देखने लगे।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. राष्ट्रवाद शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

(क) एशिया (ख) अफ्रीका
(ग) यूरोप (घ) लैटिन अमेरिका

उत्तर (ग) यूरोप

प्र.2. राष्ट्रवाद शब्द की उत्पत्ति किन राज्यों के उदय का उत्पादन है?

(क) राष्ट्र-राज्यों के (ख) गैर राष्ट्र-राज्यों के
(ग) लोकतान्त्रिक राज्यों के (घ) गैर लोकतान्त्रिक राज्यों के

उत्तर (क) राष्ट्र-राज्यों के

प्र.3. सबसे पहले राष्ट्रीयता का आधार क्या था?

(क) धर्म (ख) भाषा (ग) संस्कृति (घ) निवास स्थान

उत्तर (क) धर्म

TOUCH 'n PASS

प्र.4. 18वीं शताब्दी में किस राज्य की क्रान्ति ने राष्ट्र राज्य के उदय और विकास को एक नई दिशा दी?

(क) जर्मनी की क्रान्ति (ख) फ्रांस की क्रान्ति
(ग) इटली का एकीकरण (घ) इनमें से कोई भी नहीं

उत्तर (ख) फ्रांस की क्रान्ति

प्र.5. यूरोप में राष्ट्र राज्य का निर्माण किसके संयुक्त प्रभाव से हुआ?

(क) धर्म सुधार (ख) पुनर्जागरण
(ग) व्यापारिक क्रान्ति (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.6. फ्रांस में किसने शक्तिशाली केन्द्रीकृत राज्य की स्थापना की?

(क) हेनरी सप्तम (ख) फिलिप्स द्वितीय
(ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई भी नहीं

उत्तर (ग) (क) और (ख) दोनों

प्र.7. यूरोप में किस क्रान्ति ने भारत में नवजागरण के बीज बोए?

(क) राष्ट्रवादी क्रान्ति (ख) पुनर्जागरण क्रान्ति
(ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई भी नहीं

उत्तर (ख) पुनर्जागरण क्रान्ति

प्र.8. उदारवादी चिन्तन ने भारत के किन क्षेत्रों पर प्रभाव नहीं डाला?

(क) धर्मनिरपेक्षता (ख) आर्थिक औद्योगिक प्रगति
(ग) संविधानवाद (घ) राष्ट्रवाद

उत्तर (घ) राष्ट्रवाद

प्र.9. किसने राज्य विहीन समाज की कल्पना की?

(क) महात्मा गाँधी (ख) रविन्द्रनाथ टैगोर
(ग) विनोबा भावे (घ) रहमत अली

उत्तर (ग) विनोबा भावे

प्र.10. पश्चिमी देशों के प्रभाव भारत के किन क्षेत्रों पर नहीं पड़े?

(क) भारत के मौलिक चिन्तन (ख) भारत की आत्मा
(ग) भारत की संस्कृति (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.11. बौद्धिक पुनर्जागरण ने किस तरह भारत को प्रभावित किया?

(क) विचारधारा को (ख) धर्म और समाज
(ग) राजनीतिक आधुनिकीकरण (घ) ये सभी

उत्तर (घ) ये सभी

प्र.12. भारत में कौन से राष्ट्रवादी चिन्तक ने 'निबंधमाला' पत्रिका की रचना की?

(क) बंकिम चन्द्र चटर्जी (ख) विष्णु शास्त्री चिपलुंकर
(ग) अयादि स्वामी (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ख) विष्णु शास्त्री चिपलुंकर

TOUCH 'n PASS

प्र.13. समाजवाद राज्य के अन्तर्गत राज्य का उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण से मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ा?

(क) मनुष्य की कार्य करने की प्रेरणा बढ़ेगी
(ख) मनुष्य की कार्य करने की प्रेरणा घटेगी
(ग) कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (ख) मनुष्य की कार्य करने की प्रेरणा घटेगी

प्र.14. निम्न कथनों पर विचार कीजिए।

1. समाजवाद शब्द सोशलिज्म शब्द का हिन्दी रूपान्तर है।
2. समाजवाद एक राजनीतिक सिद्धान्त है।
3. समाजवादी राज्य व्यक्ति की अपेक्षा राज्य को अधिक महत्त्व देता है
4. पूँजीवादियों के विचार में पूँजीपति श्रमिकों में संघर्ष अनिवार्य है।

(क) केवल 1 (ख) केवल 2
(ग) केवल 3 (घ) केवल 4

उत्तर (घ) केवल 4

प्र.15. भारत में लोकतान्त्रिक परम्परा कब से विद्यमान है?

(क) प्राचीन काल (ख) मध्यकाल
(ग) उत्तर मध्यकाल (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) प्राचीन काल

प्र.16. वी०डी० सावरकर ने किस प्रकार के विचार प्रस्तुत किये?

(क) राष्ट्रवाद (ख) उग्र राष्ट्रवाद
(ग) उपराष्ट्रवाद (घ) द्वि-राष्ट्रवाद

उत्तर (ग) उपराष्ट्रवाद

प्र.17. सर्वोदय की अवधारणा का पक्ष किस राष्ट्रवादी ने दिया?

(क) बालगंगाधर तिलक (ख) महात्मा गाँधी
(ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (ग) (क) और (ख) दोनों

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

उदारवादी काल
Liberals Period

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उदारवादी विचारक कौन थे?
Who were liberal thinkers?

उत्तर वाल्टेयर, लॉक, रुसो, कॉण्ट, एडम स्मिथ, मिल, जैफरसन, माण्टेस्कयू, लॉस्की, बार्कर जैसे विचारकों को उदारवाद का महत्त्वपूर्ण विचारक माना जाता है।

प्र.2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उदारवादी और उग्रवादी में कब और कहाँ विभक्त हुई?
When and where Indian National Congress split into liberal and Extremist?

उत्तर सन् 1907 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हुआ जिसमें कांग्रेस गरम दल और नरम दल नामक दो दलों में बँट गयी। इसी को सूरत विभाजन कहते हैं।

प्र.3. कांग्रेस के प्रारंभिक काल के शासन के क्षेत्रों में कोई चार माँगे बताइए।
Mention any four demands in the field if early rule of Congress.

उत्तर कांग्रेस ने अपने प्रारंभिक काल में शासन के समस्त क्षेत्रों में जो माँगें सरकार के सामने पेश की उनमें से चार निम्नलिखित प्रमुख थीं—

1. धारा-सभाओं का विस्तार हो तथा उनमें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि सदस्य हों।
2. केन्द्रीय एवं प्रान्तीय धारा-सभाओं में भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि हो।
3. न्याय प्रशासन में जूरी प्रथा का प्रयोग हो।
4. भारत-सचिव की कौंसिल एवं प्रिवी-कौंसिल में भारतीयों को स्थान मिले, भारतीयों को उच्च सैनिक शिक्षा दी जाए एवं राजकीय सेवाओं का भारतीयकरण हो।

प्र.4. उदारवादी या वैधानिक युग किसे कहते हैं?
What is liberal/legal Era?

उत्तर राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम चरण उदारवादी युग या सुधारवादी या वैधानिक युग कहा जाता है। इसे कांग्रेस का शैशवकाल कहते हैं। 1885 से 1905 ई० तक कांग्रेस पर उदारवादियों का एकाधित्व था, जो ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की नीति के समर्थक थे। इस समय कांग्रेस का लक्ष्य भारतीय शासन में छोटे-मोटे सुधार प्राप्त करना था। उनके अस्त्र प्रस्ताव एवं प्रतिनिधि मण्डल थे। वे नरम नीति का अनुसरण करते थे। इसलिए वे उदारवादी कहलाए एवं उनका कार्यक्रम राजनीतिक भिक्षा वृत्ति के नाम से विख्यात हुआ। इस समय के उदारवादी नेता दादा भाई नौरोजी, उमेश चन्द्र बनर्जी, सुरेन्द्र, नाथ बनर्जी, फीरोज शाह मेहता, लाल मोहन घोष, रासबिहारी घोष, गोपालकृष्ण गोखले आदि थे।

प्र.5. सर फीरोजशाह मेहता के कार्यों को संक्षेप में लिखिए।
Summarise the works Sir Firozshah Mehta.

उत्तर सर फीरोजशाह भी एक उदारवादी नेता थे। दादाभाई नौरोजी के वे अनन्य अनुयायी थे। इंग्लैण्ड से विद्याध्ययन के पश्चात् वे 1868 ई० में भारत लौटे एवं जन सेवा कार्यों में लग गए। अन्य उदारवादी नेताओं की तरह ही सर मेहता अंग्रेजों की न्यायप्रियता, सत्यता तथा ईमानदारी में विश्वास करते थे। 1890 ई० में वे कांग्रेस के छठे अधिवेशन में सभापति निर्वाचित हुए और

TOUCH 'n' PASS

उन्होंने लॉर्ड सेलिसबरी के इस विचार का खण्डन किया कि प्रतिनिधि शासन पूर्वी परम्पराओं अथवा पूर्व के निवासियों की मन:स्थिति के अनुकूल नहीं हैं। सर फीरोजशाह का कार्यक्षेत्र बंबई कारपोरेशन, वायसराय की कौंसिल, बंबई प्रान्तीय सभा, कांग्रेस की समितियाँ एवं प्रतिनिधि मण्डल इत्यादि थे। सन् 1909 ई० में उन्होंने सूरत अधिवेशन के समय नरम दल वालों का साथ दिया एवं 1909 ई० में पुन: कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सन् 1915 ई० में उनका देहान्त हो गया।

प्र.6. उदारवादियों की कार्य प्रणाली को समझाइए।

Explain the mode of operation of liberals.

उत्तर उदारवादियों को नरमपंथी के नाम से भी जाना जाता था। उनकी कार्य-प्रणाली एक विशिष्ट तरीके की थी, जिसमें वे अपने प्रतिवेदनों, भाषणों और लेखों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार एवं उनके द्वारा स्थापित अंग्रेजी राज की प्रशंसा करते थे और अपनी माँगों को उनके पास रखते थे। वे अपनी उन माँगों को समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं के माध्यम से स्पष्ट करते थे ताकि जनता पर भी उनके कार्यों का प्रभाव पड़े।

प्र.7. प्रथम उदारवादी चरण को परिभाषित कीजिए।

Define first phase of moderate phase.

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के एक नए युग का आरंभ हो गया। चूँकि कांग्रेस का शुरुआती नेतृत्व जिन नेताओं ने किया, उनका स्वभाव सरल एवं कार्य-प्रणाली उदार प्रकृति की थी, इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन के प्रथम चरण को उदारवादी चरण के नाम से जाना जाता है। कांग्रेस के आरंभिक 20 वर्षों के काल को उदारवादी राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस काल में कांग्रेस की नीतियाँ काफी उदार थीं। इस समय कांग्रेस पर समृद्धशाली मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का प्रभाव था, जिनमें अधिकतर पत्रकार, वकील, इंजीनियर एवं डॉक्टर इत्यादि प्रमुख थे। ये उदारवादी नेता अंग्रेजी सरकार के प्रति निष्ठावान थे तथा उन्हें अपना शत्रु नहीं मानते थे। दादाभाई नौरोजी के इन शब्दों से अंग्रेजों के प्रति उनकी भावनाओं की मूर्त अभिव्यक्ति का पता चलता है—"हम ब्रिटिश प्रजा हैं, हम अपने हक की माँग कर सकते हैं। अगर हमें ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं से वंचित रखा जाता है तो फिर भारत को अंग्रेजों के स्वामित्व में रहने से क्या लाभ? यह तो एक और एशियाई निरंकुश शासन मात्र होगा।"

इस समय के उदारवादी नेताओं में फिरोज़शाह मेहता, बदरुद्दीन, तैयबजी, व्योमेश चंद्र बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बोस और रमेशचंद्र दत्त प्रमुख थे। कालांतर में द्वारिकानाथ गांगुली, एम०जी० रानाडे, वीर राघवाचारी, आनंद चारलू और गोपालकृष्ण गोखले भी इसमें शामिल हो गए।

प्र.8. राष्ट्रीय आंदोलन में जन साधारण की क्या भूमिका रही?

What was the role of common people in National Movement?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उदारवादी काल में कांग्रेस का जनाधार सीमित था तथा जन सामान्य ने इसमें शिथिल या निष्क्रिय भूमिका निभायी। इसका मुख्य कारण था कि प्रारंभिक राष्ट्रवादी जन साधारण के प्रति ज्यादा विश्वस्त नहीं थे। उनका मानना था कि भारतीय समाज अनेक जातियों एवं उपजातियों में बंटा हुआ है तथा इनके विचार एवं सोच संकीर्णता से ओत-प्रोत हैं, फलत: प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने उनकी उपेक्षा की। उदारवादियों का मत था कि राजनीतिक परिदृश्य पर उभरने से पहले जातीय विविधता के कारकों में एकीकरण आवश्यक है। लेकिन ये इस महत्त्व को नहीं समझ सके कि इस कारक में विविधता के बावजूद उसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंभिक चरण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रारंभिक राष्ट्रवादी किन्हें कहते हैं तथा 'नरमपंथी' नाम की उत्पत्ति कैसे हुई?

What are early nationalist called and how did the name moderate originate?

उत्तर प्रारंभिक राष्ट्रवादी, जिन्हें उदारवादी के रूप में भी जाना जाता है, 1885 और 1907 के बीच सक्रिय भारत में राजनीतिक नेताओं का एक समूह था। उनके उद्भव ने भारत में संगठित राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत को चिह्नित किया। फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी कुछ महत्त्वपूर्ण उदारवादी नेता थे। वकीलों, शिक्षकों और सरकारी अधिकारियों सहित शिक्षित मध्यवर्गीय पेशेवरों से लिए गए समूह के सदस्यों के साथ, उनमें से कई इंग्लैण्ड में शिक्षित थे।

TOUCH 'n PASS

उन्हें "प्रारंभिक राष्ट्रवादी" के रूप में जाना जाता है क्योंकि वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए "संवैधानिक और शांतिपूर्ण साधनों को अपनाते हुए सुधारों की माँग करने में विश्वास करते थे। प्रारंभिक राष्ट्रवादियों को ब्रिटिश न्याय, निष्पक्षता, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा पर पूरा भरोसा था, जबकि उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए एक वरदान है। प्रारंभिक राष्ट्रवादी खुले विचारों वाली और उदारवादी राजनीति में कट्टर विश्वासी थे।

उनके उत्तराधिकारी, "दृढ़तावादी", 1905 से 1919 तक अस्तित्व में थे और उनके बाद गांधीवादी युग के राष्ट्रवादी थे, जो 1919 से 1947 में भारतीय स्वतंत्रता तक अस्तित्व में थे।

"नरमपंथी" नाम की उत्पत्ति (Origin of name of Liberal)

1885 में भारत के प्रारंभिक राष्ट्रवादियों का पहला अधिवेशन—सुधार की माँगों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक संवैधानिक और शांतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। वे ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति मित्रवत रहे लेकिन उनका मानना था कि देश की सरकार में भारतीयों की उचित और वैध भूमिका होनी चाहिए। हालाँकि उन्होंने ब्रिटिश शासन के ढाँचे के भीतर संवैधानिक और अन्य सुधारों के लिए कहा, लेकिन उन्हें उस देश की न्याय और निष्पक्षता की भावना पर पूरा भरोसा था। उनका यह भी मानना था कि भारत के साथ ब्रिटिश संबंधों को जारी रखना दोनों देशों के हित में हैं। प्रारंभिक अवस्था में, राष्ट्रवादियों ने इंग्लैण्ड के साथ अपने जुड़ाव को एक फायदा माना। ब्रिटिश शासन ने जाति व्यवस्था सहित विभिन्न सांस्कृतिक विसंगतियों को दूर करके और सती प्रथा को समाप्त करके बहुत अच्छा किया था। या "विधवा बलिदान" जो पहले भारतीय समाज में व्याप्त था। पश्चिमी विचार, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य और इतिहास से प्रभावित, प्रारंभिक राष्ट्रवादियों की माँगों को अत्यधिक नहीं बल्कि अपेक्षाकृत उदारवादी प्रकृति का माना जाता था।

प्र.2. प्रारंभिक राष्ट्रवाद की गतिविधियों एवं उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।
Mention activities and achievements of early nationalism.

उत्तर प्रारंभिक राष्ट्रवाद के संस्थापक एओ ह्यूम सर विलियम वेडरबर्न और दादाभाई नौरोजी के साथ प्रारंभिक राष्ट्रवादी टकराव के बजाए धैर्य और सुलह में विश्वास करते थे, व्यवस्थित प्रगति और संवैधानिकता को अपनाते थे। जिसका अर्थ है अपने लक्ष्य को प्राप्त करना। लोगों को शिक्षित करने, राजनीतिक चेतना जगाने और अपनी माँगों के पक्ष में शक्तिशाली जनमत बनाने के लिए उन्होंने वार्षिक अधिवेशनों का आयोजन किया। जुलूस और बैठकें आयोजित की गईं, भाषण दिए गए और विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सवालों पर चर्चा हुई। इन चर्चाओं के बाद, संकल्प पारित किए गए। उन्होंने सरकार को सौंपने से पहले याचिकाओं और ज्ञापनों का मसौदा भी तैयार किया। प्रारंभिक राष्ट्रवादी अपनी भावनाओं को सरकार तक पहुँचाना चाहते थे, ताकि धीरे-धीरे अधिकारियों को उनके दृष्टिकोण पर लाया जा सके। ब्रिटिश सरकार को प्रभावित करने और ब्रिटिश जनता और उसके राजनीतिक नेताओं को प्रबुद्ध करने के लिए, प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने प्रमुख भारतीय नेताओं के प्रतिनिधिमंडल को इंग्लैण्ड भेजा। 1889 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समितिकी स्थापना की और उसके बाद 1890 में समिति द्वारा भारत नामक एक पत्रिका शुरू की गई।

उपलब्धियाँ (Achievements)

उस समय की सबसे प्रगतिशील ताकत के रूप में उनकी भूमिका के बावजूद, शुरुआती राष्ट्रवादियों को उनकी सफलता की कमी के कारण व्यापक आलोचना मिली। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा उनके साथ अवमानना की जाती थी और उनकी माँगे पूरी नहीं की जाती थीं।

ऐसी आलोचना के बावजूद, प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने अपने कुछ लक्ष्यों को प्राप्त किया। उन्होंने लोगों के बीच एक राष्ट्रीय जागृति पैदा की जिसने भारतीयों को आम राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हितों के बंधनों के प्रति जागरूक किया जो उन्हें एकजुट करते थे। उन्होंने लोकतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाकर लोगों को राजनीति में प्रशिक्षित किया। प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने भारत में ब्रिटिश शासन की वास्तविक प्रकृति को उजागर करके अग्रणी कार्य किया। उन्होंने लोगों को ब्रिटिश उपनिवेशवाद की आर्थिक सामग्री और चरित्र का एहसास कराया। ऐसा करके उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन की नींव को कमजोर कर दिया। उनके राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमों ने इस विचार को स्थापित किया कि भारतीयों के हित में भारत पर शासन किया जाना चाहिए। आरंभिक राष्ट्रवादियों के प्रयासों से लोक सेवा आयोग की नियुक्ति जैसे विभिन्न सामाजिक सुधारों को भी लागू किया गया। लंदन और भारत में भारतीय सिविल सेवा के लिए एक साथ परीक्षा की अनुमति देने

वाले हाउस ऑफ कॉमन्स (1893) का एक संकल्प तथा भारतीय व्यय पर वेल्बी आयोग की नियुक्ति (1895) में की गई। उन्होंने 1892 का भारतीय परिषद् अधिनियम भी पारित किया। इन उपलब्धियों ने, बाद के वर्षों में चरमपंथी नेताओं द्वारा राष्ट्रवादी आंदोलनों के आधार के रूप में कार्य किया।

प्र.3. स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले प्रमुख नेताओं का परिचय संक्षेप में दीजिए।

Briefly introduce the major leaders who fought for independence.

उत्तर

सुरेंद्रनाथ बनर्जी
(Surendranath Banarji)

एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन बनाने के लिए, बनर्जी ने 1883 में कोलकाता में भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया। बैनर्जी ने 1886 में भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विलय कर दिया क्योंकि दोनों संगठनों के उद्देश्य समान थे। उन्होंने 1895 और 1902 में कांग्रेस के दो सत्रों की अध्यक्षता की।

गोपाल कृष्ण गोखले (Gopal Krishan Gokhlay)

गोपाल कृष्ण गोखले, जिन्हें "गांधी के राजनीतिक गुरु" के रूप में जाना जाता है, क्योंकि उन्होंने महात्मा गांधी को अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए भारत के चारों ओर घूमने के लिए निर्देशित किया था, ब्रिटिशों के खिलाफ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सामाजिक और राजनीतिक नेताओं में से एक थे। भारत में साम्राज्य। गोखले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता और सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के संस्थापक थे। सोसाइटी के साथ-साथ कांग्रेस और अन्य विधायी निकायों के माध्यम से उन्होंने सेवा की, गोखले ने भारतीय स्व-शासन और सामाजिक सुधार के लिए अभियान चलाया। वह कांग्रेस पार्टी के उदारवादी गुट के नेता थे जिसने मौजूदा सरकारी संस्थानों के साथ काम करके सुधारों की वकालत की थी।

एओ ह्यूम (A.O. Hume)

जबकि प्रारंभिक राष्ट्रवादी एक अखिल भारतीय राजनीतिक निकाय के गठन की ओर बढ़ रहे थे, अंग्रेज एओ ह्यूम, जो भारतीय सिविल सेवा से सेवानिवृत्त थे, ने एक ऐसे संगठन की आवश्यकता देखी जो वर्तमान प्रशासनिक कमियों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करे और सुधार के उपाय सुझाए।

उन्हें 1884 में ह्यूम ने भारतीय नेताओं के परामर्श से भारतीय राष्ट्रीय संघ की नींव रखी, लेकिन पुणे में प्लेग के प्रकोप के कारण इसे स्थगित कर दिया गया था। बाद में, दादाभाई नौरोजी के सुझाव पर, नाम बदलकर "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" कर दिया गया और 28 दिसंबर, 1885 को संगठन की नींव रखी गई।

दादाभाई नौरोजी (Dada Bhai Nauroji)

दादाभाई नौरोजी, जिन्हें "ग्रैंड ओल्ड मैन ऑफ इंडिया" के नाम से जाना जाता है, ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव में सक्रिय भाग लिया और 1886, 1893 में और 1906 में मध्यम चरण के बाद तीन बार इसके अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटेन में बिताया। उन्होंने लंदन इंडियन सोसाइटी की स्थापना की, जिसका उपयोग वे भारतीयों की दुर्दशा के बारे में ब्रिटिश लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने के लिए करते थे। उनकी पुस्तक **पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया** ने इस बात की पड़ताल की कि कैसे ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत का आर्थिक शोषण किया गया था।

प्र.4. उदारवादी और उनकी कार्यविधि को समझाइए।

Explain liberals and their working method.

उत्तर 1885 ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई, जोकि एक राष्ट्रीय संस्था थी। इस सम्बन्ध में पं० मदनमोहन मालवीय ने कहा था, "भारत ने अपनी आवाज इस महान संस्था में पाई।" कांग्रेस की स्थापना के समय उदारवादी राष्ट्रीय नेताओं ने इसकी बागडोर अपने हाथ में ले ली। आरम्भिक 20 वर्षों तक कांग्रेस की नीति अत्यन्त उदार रही। इसलिए इस युग को इतिहास में उदारवादी राष्ट्रीयता का युग (1885-1905 ई०) के नाम से पुकारा जाता है। इस युद्ध में उदारवादी नेता इण्डियन नेशनल कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। उनका मानना था कि संवैधानिक तरीकों से भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है। वे अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास करते थे। ब्रिटिश सरकार भी इन्हें भारत के प्रभावशाली नेता मानती

TOUCH 'n PASS

थी। उदारवादी नेताओं में दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, पं० मदन मोहन मालवीय एवं उमेश चन्द्र बैनर्जी आदि प्रमुख थे।

उदारवादी नेताओं पर ब्रिटिश विचारधारा, साहित्य एवं सभ्यता का बहुत अधिक प्रभाव था। वे इंग्लैण्ड की संस्थाओं के प्रशासक थे और अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास रखते थे। उनका यह मानना था कि ब्रिटिश शासन भारतवर्ष के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है। उसने भारत में शिक्षा एवं संचार के साधनों को विकसित किया है। न्याय व्यवस्था को कुशल बनाया है। वे ब्रिटिश शासन को भारत के लिए वरदान मानते थे। इस प्रकार वे अंग्रेज सरकार के अन्धे भक्त थे उनका विश्वास था कि यदि वे प्रार्थना पत्रों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपनी माँगे प्रस्तुत करेंगे, तो वह उन्हें स्वीकार कर लेगी, क्योंकि उसे भारत तथा उसमें रहने वाले लोगों के प्रति विशेष सहानुभूति है। अत: इस युग में कांग्रेस ने सुधारवादी कार्यक्रमों को अपनाया। उसने जनता की माँगों की प्रार्थना पत्रों तथा प्रतिनिधि मण्डलों के द्वारा सरकार तक पहुँचाया तथा प्रशासन में सुधार सम्बन्धी अनेक प्रस्ताव पास किए। जी०आर० प्रधान के अनुसार, "कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों के प्रस्तावों में हम अत्यन्त उदार माँगे पाते हैं। कांग्रेस के संस्थापक आकाश में उड़ने वाले आदर्शवादी नहीं थे, बल्कि वे व्यावहारिक सुधारक थे तथा उदारवाद की भावनाओं और सिद्धान्तों से ओत-प्रोत थे। वे स्वतन्त्रता की ओर धीरे-धीरे कदम बढ़ाना चाहते थे। इसलिए उनकी माँगें बहुत ऊँची थी। उन्होंने सुधार के ऐसे उदार प्रस्तावों को रखा, जिसका कम-से-कम विरोध हो।" कांग्रेस के नेताओं ने इस उदारवादी काल में नरम नीति अपनाई थी। वे प्रार्थनापत्रों, प्रतिवेदनों, स्मरण पत्रों, एवं शिष्ट मण्डलों के माध्यम से सरकार के समक्ष अपनी माँगें रखते थे। उनकी भाषा बड़ी नरम और संयत होती थी। इसलिए उग्रवादियों ने इसे 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' की संज्ञा दी है।

प्र.5. प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए एवं ब्रिटिश सरकार का इसके प्रति क्या रुख रहा? उल्लेख कीजिए।

Evaluate the works of early nationalists and what was the attitude of the British governments towards it. Explain.

उत्तर

प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के कार्यों का मूल्यांकन
(Evaluation of the work of Initial Nationalists)

कुछ आलोचकों के मतानुसार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में नरमपंथियों का नाममात्र का योगदान था इसीलिए वे अपने चरण में कोई ठोस उपलब्धि हासिल नहीं कर सके। इन आलोचकों का दावा है कि अपने प्रारंभिक चरण में कांग्रेस शिक्षित मध्य वर्ग अथवा भारतीय उद्योगपतियों का ही प्रतिनिधित्व करती थी। उनकी अनुनय-विनय की नीति को आंशिक सफलता ही मिली तथा उनकी अधिकांश माँगे सरकार ने स्वीकार नहीं कीं। नि:संदेह इन आलोचनाओं में पर्याप्त सच्चाई है। किन्तु नरमपंथियों की कुछ उपलब्धियाँ भी थीं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता जैसे—

1. उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज को नेतृत्व प्रदान किया।
2. साझा हित के सिद्धांतों पर आम सहमति बनाने एवं जागृति लाने में वे काफी हद तक सफल रहे। उन्होंने भारतवासियों में इस भावना की ज्योति जलाई कि सभी के एक ही शत्रु (अंग्रेज) हैं तथा सभी भारतीय एक ही राष्ट्र के नागरिक हैं।
3. उन्होंने लोगों को राजनीतिक कार्यों में दक्ष किया तथा आधुनिक विचारों को लोकप्रिय बनाया।
4. उन्होंने उपनिवेशवादी शासन की आर्थिक शोषण की नीति को उजागर किया।
5. नरमपंथियों के राजनीतिक कार्य दृढ़ विश्वासों पर अविलम्बित थे।
6. उन्होंने इस सच्चाई को सार्वजनिक किया कि भारत का शासन, भारतीयों के द्वारा उनके हित में हो।
7. उन्होंने भारतीयों में राष्ट्रवाद एवं लोकतांत्रिक विचारों एवं प्रतिनिधि कार्यक्रम विकसित किया, जिससे बाद में राष्ट्रीय आंदोलन को गति मिली।
8. उन्हीं के प्रयासों से विदेशों विशेषकर इंग्लैण्ड में भारतीय पक्ष को समर्थन मिल सका।

ब्रिटिश सरकार का रुख (Attitude of British Government)

कांग्रेस के जन्म के प्रारंभिक वर्षों में ब्रिटिश सरकार और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में कुछ समय के लिए सहयोगात्मक रुख बना रहा। उदारवादियों का विश्वास था कि भारत की स्थिति को ब्रिटिश शासन के अधीन रहकर ही सुधारा जा सकता है। किन्तु 1887 के पश्चात् कांग्रेस और सरकार के रिश्तों में कड़वाहट आने लगी। नरमपंथियों का भ्रम शीघ्र ही टूट गया क्योंकि शासन का

TOUCH 'n PASS

वास्तविक स्वरूप उनके सामने आ गया। इस काल में कांग्रेस ने सरकार की आलोचना और तीव्र कर दी फलत: दोनों के आपसी संबंध और खराब हो गये। इसके पश्चात् सरकार ने कांग्रेस विरोधी रुख अख्तियार कर लिया तथा वह राष्ट्रवादियों को 'राजद्रोही ब्राह्मण' एवं 'देशद्रोही विप्लवकारी' जैसी उपमाएँ देने लगी। लार्ड डफरिन ने कांग्रेस को 'राष्ट्रद्रोहियों की संस्था' कहकर पुकार। कालांतर में सरकार ने कांग्रेस के प्रति 'फूट डालो एवं राज करो' की नीति अपना ली। सरकार ने विभिन्न कांग्रेस विरोधी तत्त्वों यथा सर सैय्यद अहमद खान, बनारस नरेश राजा शिव प्रसाद सिंह इत्यादि को कांग्रेस के कार्यक्रमों की आलोचना करने हेतु उकसाया तथा कांग्रेस के विरोधी संगठन 'संयुक्त भारत राष्ट्रवादी संगठन (यूनाइटेड इंडियन पेट्रियोट्रिक एसोसिएशन)' की स्थापना में मदद की। सरकार ने सम्प्रदाय एवं विचारों के आधार पर राष्ट्रवादियों में फूट डालने का प्रयास किया तथा उग्रवादियों को उदारवादियों के विरुद्ध भड़काया।

किन्तु अपने इन प्रयासों के पश्चात् भी ब्रिटिश सरकार राष्ट्रवाद के उफान को रोकने में सफल नहीं हो सकी।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के उद्देश्यों, आलोचनाओं एवं औपनिवेशिक प्रशासन की प्रतिक्रिया का वर्णन कीजिए।
Describe the objectives of early nationalists criticism and the response of the colonial administration.

उत्तर

उद्देश्य
(Objectives)

प्रारंभिक राष्ट्रवादी भारत के लोगों को एकजुट करने की दृष्टि से कुछ राजनीतिक और आर्थिक सुधार चाहते थे।

संवैधानिक सुधार (Constitutional Reforms)

यह मानते हुए कि भारत को अंतत: लोकतांत्रिक स्वशासन की ओर बढ़ना चाहिए, प्रारंभिक राष्ट्रवादी भारत के शासन में एक बड़ा हिस्सा चाहते थे। उन्होंने अपने लक्ष्य की तत्काल प्राप्ति की तलाश नहीं की क्योंकि उन्हें डर था कि सरकार उनकी गतिविधियों को दबा देगी। इसके बजाए उन्होंने क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से आजादी हासिल करने का लक्ष्य रखा।

उनकी संवैधानिक माँगें थीं—

1. भारतीय परिषद् अधिनियम को समाप्त करना।
2. केंद्रीय और प्रांतीय दोनों विधान परिषदों और विधान सभाओं का विस्तार।
3. इन परिषदों में स्थानीय निकायों जैसे चैंबर्स ऑफ कॉमर्स, विश्वविद्यालयों आदि द्वारा चुने गए कुछ सदस्यों को शामिल करके और उन्हें अधिक अधिकार देकर भारतीयों की सदस्यता में वृद्धि। उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीय नियंत्रण की माँग की और "प्रतिनिधित्व के बिना कराधान नहीं" का नारा दिया।
4. 20वीं शताब्दी की शुरुआत तक, उन्होंने कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में स्वशासी उपनिवेशों के समान ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वराज (स्व-शासन) की माँग की।
5. वायसराय और राज्यपालों की कार्यकारी परिषद् में भारतीयों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व।
6. 1861 के अधिनियम द्वारा बनाई गई विधान परिषदों का सुधार और विस्तार। उन्होंने इन परिषदों की सदस्यता में वृद्धि की माँग की और बजट सहित सभी विधायी और वित्तीय मामलों को इन परिषदों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
7. विधान परिषदों के सदस्य सीधे भारत के लोगों द्वारा चुने जायें।
8. प्रशासन की कार्यकारी और न्यायिक शाखाओं का पूर्ण पृथक्करण।
9. पूर्ण स्वशासन ऑस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे स्वशासी ब्रिटिश उपनिवेशों पर आधारित है।

प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms)

नरमपंथियों ने प्रशासनिक क्षेत्र में निम्नलिखित माँगें रखीं—

1. इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ भारतीय सिविल सेवा परीक्षा की माँग।
2. कार्यपालिका और न्यायपालिका का पूर्ण पृथक्करण। उन्होंने यह माँग भारतीयों को पुलिस और नौकरशाही की मनमानी से बचाने के लिए की थी।

TOUCH 'n' PASS

3. नगर निकायों की शक्तियों में वृद्धि और उन पर सरकारी नियंत्रण में कमी।
4. शस्त्र अधिनियम और लाइसेंस अधिनियम का निरसन।
5. प्रशासनिक सेवाओं के उच्च ग्रेड में भारतीयों का व्यापक रोजगार।
6. जनता के बीच प्राथमिक शिक्षा का प्रसार।
7. पुलिस व्यवस्था को ईमानदार, कुशल और लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें सुधार करना।

नागरिक अधिकारों की रक्षा (Protection of Civil Rights)

प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने नागरिक अधिकारों का बचाव किया जब भी ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कम करने की कोशिश की। स्वतंत्रता के लिए उनका संघर्ष शुरू से ही राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न अंग बन गया। 1897 में, तिलक और कई अन्य नेताओं को गिरफ्तार किया गया और भड़काऊ भाषण देने की कोशिश की गई। प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने निवारक निरोध अधिनियम के उन्मूलन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बहाली और इकठ्ठा होने और संघ बनाने के अधिकार की माँग की। वे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की स्वतंत्रता पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को भी हटाना चाहते थे।

आलोचना (Criticisms)

प्रारंभिक राष्ट्रवादियों द्वारा प्रस्तावों को पारित करने और याचिकाएँ भेजने के तरीकों को आलोचकों द्वारा अपर्याप्त के रूप में देखा गया, जिन्होंने तर्क दिया कि वे अपनी ताकत पर भरोसा करने और औपनिवेशिक शासन को सीधे चुनौती देने के बजाए अंग्रेजों की उदारता पर निर्भर थे। कुछ इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि आरंभिक राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश सरकार को गलत समझा और उनका मानना था कि औपनिवेशिक प्रशासन और राष्ट्रवादी आंदोलन दोनों के मौलिक हितों को बाद के पक्ष में हल किया जा सकता है। प्रारंभिक राष्ट्रवादी जनता को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में इस तरह खींचने में विफल रहे कि उनका प्रभाव क्षेत्र शहरी शिक्षित भारतीयों तक ही सीमित रहा। विशेष रूप से, उनके नेतृत्व में वकीलों जैसे पेशेवर समूहों के सदस्य ही शामिल थे, डॉक्टर, पत्रकार और शिक्षक।

औपनिवेशिक प्रशासन की प्रतिक्रिया (Reaction of Colonial Administration)

लॉर्ड डफरिन शुरुआत में, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के कार्यों को अनुकूल रूप से देखा और उनके प्रति कोई शत्रुता व्यक्त नहीं की। इसके अलावा, कुछ सरकारी अधिकारियों ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के पहले सत्र में भाग लिया और इसके विचार-विमर्श में भाग लिया। राष्ट्रवादियों को 1886 में कलकत्ता में भारत के वायसराय, लॉर्ड डफरिन द्वारा आयोजित एक गार्डन पार्टी में आमंत्रित किया गया था और 1887 में चेन्नई के गवर्नर द्वारा आयोजित एक अन्य पार्टी में जल्द ही आधिकारिक दृष्टिकोण बदल गया; लॉर्ड डफरिन ने एलन ह्यूम को सुझाव देकर राष्ट्रीय आंदोलन को मोड़ने की कोशिश की कि प्रारंभिक राष्ट्रवादियों को राजनीतिक मामलों के बजाए सामाजिक मामलों में खुद को समर्पित करना चाहिए। हालाँकि, औपनिवेशिक प्रशासन के हाथों एक उपयोगी उपकरण के रूप में उभरने के बजाए, प्रारंभिक राष्ट्रवादी धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रवाद का केंद्र बन गए। 1887 में, डफरिन ने एक भाषण में प्रारंभिक राष्ट्रवादियों पर हमला किया और इसे भारतीय लोगों के केवल एक सूक्ष्म अल्पसंख्यक का प्रतिनिधित्व करने के रूप में उपहास किया। भारत में औपनिवेशिक अधिकारियों ने राष्ट्रवादियों की आलोचना की और इसके नेताओं को "विश्वासघाती बाबू" और "हिंसक खलनायक" कहा। अगले वर्ष लॉर्ड डफरिन ने बंगाल में जनसंख्या के निम्न वर्गों की स्थितियों पर रिपोर्ट प्रकाशित की (जिसे डफरिन रिपोर्ट के रूप में जाना जाता है), जिसने बंगाल में गरीबों की दुर्दशा पर प्रकाश डाला। जिसका उपयोग तब प्रारंभिक राष्ट्रवादियों द्वारा इस दावे का मुकाबला करने के लिए किया गया था कि ब्रिटिश शासन भारतीय समाज के सबसे गरीब सदस्यों के लिए फायदेमंद रहा है। अंत में, 1890 में सरकारी कर्मचारियों को प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के साथ विचार-विमर्श में भाग लेने या उनकी बैठकों में भाग लेने से मना किया गया था।

असफलता (Failures)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर कुछ युवा तत्त्व प्रारंभिक राष्ट्रवादियों की उपलब्धियों से असंतुष्ट थे और उनके द्वारा घोषित शांतिपूर्ण संवैधानिक आंदोलन के तरीकों के मुखर आलोचक थे। युवा सदस्यों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का मुकाबला करने के लिए यूरोपीय क्रांतिकारी तरीकों को अपनाने की वकालत की, जबकि मुख्यधारा के प्रारंभिक राष्ट्रवादी क्राउन के प्रति वफादार रहे, उनकी आत्म-सरकार को दृढ़ विश्वास की कमी थी। प्रारंभिक राष्ट्रवादी अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहे, नेताओं

TOUCH 'n PASS

के दूसरे समूह को मुखर या अतिवादी राष्ट्रवादियों के रूप में जाना गया। मुखर राष्ट्रवादियों के सबसे प्रमुख नेता बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय थे और बिपिन चंद्र पाल, जिन्हें सामूहिक रूप से लाल-बाल-पाल तिकड़ी के रूप में जाना जाता है।

प्र.2. कांग्रेस की लोकप्रियता एवं कांग्रेस के प्रति सरकार के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
Discuss the popularity of Congress and the outlook of the Government towards Congress.

उत्तर

कांग्रेस की लोकप्रियता
(Popularity of Congress)

1885 ई० में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें 72 प्रतिनिधि शामिल हुए थे, क्योंकि उस समय वह केवल बुद्धिजीवियों की संस्था थी। परन्तु धीरे-धीरे उसकी लोकप्रियता बढ़ी और देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था का रूप ग्रहण कर लिया। परिणामस्वरूप उसकी शक्ति में निरन्तर वृद्धि होती गई। यही कारण था उसके अधिवेशन में भाग लेने वालों की संख्या 1886 में 406, 1887 में 600 तथा 1888 में 1228 हो गई। यह प्रगति निरन्तर जारी रही, क्योंकि इसने एक अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया था। 1906 में यह कहा जा सकता था कि कांग्रेस भारत के भारी बहुमत का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है। कांग्रेस की प्रगति के सम्बन्ध में बी० पट्टाभि सीतारमैया का मत है, "जिस प्रकार एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे से होता है, उसी प्रकार महान संस्थाओं का आरम्भ भी बहुत साधारण होता है। जीवन के प्रारम्भ में वे अत्यन्त वेग के साथ दौड़ती है, परन्तु ज्यों-ज्यों व्यापक होती है। त्यों-त्यों उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ती है त्यों-त्यों उनमें सहायक नदियाँ मिलती जाती हैं तथा वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न बनाती जाती है। यही उदाहरण हमारी कांग्रेस पर भी लागू होता है।"

कांग्रेस के प्रति सरकार का दृष्टिकोण (Outlook of Government towards Congress)

1885 ई० में जब कांग्रेस की स्थापना हुई उस समय उसे भारतीय गवर्नर लॉर्ड डफरिन का आशीर्वाद प्राप्त था। इसका जन्मदाता भी एक अंग्रेज अधिकारी ए०ओ० ह्यूम था। इसलिए इसके प्रथम अधिवेशन में कई सरकारी अधिकारियों ने भाग लिया। दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इस अवसर पर भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड डफरिन ने इसमें सम्मिलित होने वाले प्रतिनिधियों को राजकीय भवन में एक भोज दिया। इसका तीसरा अधिवेशन 1887 ई० में मद्रास में हुआ। इस अवसर पर मद्रास के गवर्नर ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों को राजकीय भवन में एक प्रीतिभोज पर आमन्त्रित किया। इस प्रकार आरम्भ के तीन वर्षों में अंग्रेज सरकार की नीति कांग्रेस के प्रति उदारता एवं सहानुभूति की रही। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन के विकास को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

परन्तु जैसे-जैसे कांग्रेस की शक्ति में वृद्धि होती गई और कांग्रेस के द्वारा प्रशासनिक सुधारों की माँग प्रबल की जाने लगी। अब कांग्रेस ने सरकार के कार्यों की आलोचना करनी आरम्भ कर दी थी। इसका परिणाम यह हुआ की सरकार ने अपना समर्थन वापस ले लिया और कांग्रेस के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। लॉर्ड डफरिन भी कांग्रेस का कटु आलोचक बन गया। क्योंकि वह भारतीयों की समानता की माँग स्वीकार नहीं करना चाहता था। अब अंग्रेज सरकार कांग्रेस को भारत में अपना शत्रु मानती थी और उसको किसी प्रकार का प्रोत्साहन देने के पक्ष में नहीं थी।

लॉर्ड डफरिन ने कांग्रेस को राजनीतिक स्वरूप प्रदान किया था। उसने कांग्रेस की निन्दा करते हुए कहा, "मुझे उसका भारतीय जनता के प्रतिनिधित्व का दावा बेबुनियाद लगता है। कांग्रेस तो एक ऐसे नगण्य अल्पमत का प्रतिनिधित्व करती है। जिसको एक शानदार और विभिन्न रूपों वाले साम्राज्य के शासन की बागडोर हर्गिज नहीं दी जा सकती।" इस सम्बन्ध में आंग्ल भारतीय समाचार पत्र ने यहाँ तक लिखा है, "यह तो छिपे वेश में एक ऐसी राजद्रोही संस्था है जिसे न तो जनता का प्रतिनिधित्व प्राप्त है और न ही उसका कोई मूल्य है।"

कांग्रेस के प्रथम तीन अधिवेशनों में ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण रूप से सहयोग दिया था। 1888 ई० में सरकार ने कांग्रेस के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित करना आरम्भ कर दिया। 1888 ई० में इलाहाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन के लिए उत्तर प्रदेश की सरकार ने उचित स्थान देने से इन्कार कर दिया; लेकिन दरभंगा नरेश ने 'लाहौर कौंसिल हाउस' खरीदकर अधिवेशन के लिए कांग्रेस को दे दिया। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के गवर्नर सर आकलैंड ने एक आदेश पत्र द्वारा अंग्रेजों और सरकारी कर्मचारियों का कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेना निषिद्ध कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने देशी नरेशों और सुल्तानों से भी कांग्रेस से दूर रहने को कहा। 1890 ई० में बंगाल सरकार ने एक आदेश में कहा गया था, "भारत सरकार के आदेशों के अधीन कांग्रेस की बैठकों में, दर्शक के रूप में भी सरकारी अधिकारियों की उपस्थिति वांछनीय नहीं है और इस प्रकार की बैठकों में उनके भाग लेने को निषेध किया जाता है।"

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को निर्बल बनाने के लिए मुसलमानों को उसके विरोध में संगठित होने की प्रेरणा दी। 1888 ई० में कांग्रेस के अधिवेशन में शेख राजा हुसैन खाँ ने इस सम्बन्ध में कहा था, "ये मुसलमान नहीं, वरन् उनके सरकारी आका हैं, जो कांग्रेस का विरोध करते हैं।" 1895 ई० के बाद अंग्रेज सरकार का कांग्रेस के प्रति रुख निरन्तर कठोर होता गया। कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के कार्यों की आलोचना करती थी। इसलिए सरकार ने इस संस्था का दमन करने का हर सम्भव प्रयास किया। भारत मंत्री लॉर्ड हेमिल्टन के निर्देशन में लॉर्ड कर्जन की सरकार ने धनी भारतीयों पर कांग्रेस से दूर रहने के लिए दबाव डाला और कांग्रेस विरोधी तत्त्वों को उपहार तथा उपाधियाँ दी। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने कांग्रेस की शक्ति को क्षीण करने के लिए हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास को प्रोत्साहन देना शुरू कर दिया। अंग्रेजों ने 1888 ई० में सर सैय्यद अहमद खाँ से "एंग्लो मुस्लिम डिफेंस ऐसोसिएशन" की स्थापना इसलिए करवाई, ताकि कांग्रेस को निर्बल बनाया जा सके। अंग्रेजों ने कांग्रेस को हिन्दुओं की संस्था कहकर मुसलमानों की अपने हितों की रक्षा के लिए प्रथम संगठन बनाने की आवश्यकता पर जोर देकर उक्त संस्था बनवाई। इस प्रकार, अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई। फिर भी कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था बनी रही। अनेक राष्ट्रवादी मुसलमानों ने कांग्रेस का ही साथ दिया।

इस प्रकार कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण आरम्भ में सहानुभूतिपूर्ण था परंतु कुछ समय बाद ही उसने शत्रुता का रूप ग्रहण कर लिया। रैम्जे मेकडोनल्ड के शब्दों में, "प्रारम्भ में यह मित्रतापूर्ण थी लेकिन बाद में इसने कटु विरोध का रूप धारण कर लिया।" ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस का दमन करने का हर सम्भव प्रयास किया, परन्तु उसकी शक्ति में कमी होने की बजाए वृद्धि होती गई। इसका प्रमुख कारण यह था कि कांग्रेस को मध्यम वर्ग का सहयोग प्राप्त हो चुका था। इसलिए ब्रिटिश सरकार को अपने उद्देश्य में असफलता हाथ लगी। डॉ० आर०सी० मजूमदार कहते हैं, "ब्रिटिश सरकार तथा नौकरशाही के कांग्रेस विरोधी षड्यंत्र अपने उद्देश्य की पूर्ति में इसलिए सफल न हुए, क्योंकि ये यह बात जानने में असमर्थ रहे कि कांग्रेस की शक्ति का मूल आधार मध्यम वर्ग है, धनी दानी लोग नहीं।" कूपलैण्ड ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "कांग्रेस का जन्म भारत में ब्रिटिश शासन के शत्रु के रूप में नहीं अपितु मित्र के रूप में हुआ था। यह तो बाद के कटु अनुभवों का फल था कि राष्ट्रीय शक्तियों ने अहिंसात्मक आंदोलन का संगठन करके ब्रिटिश शासकों को भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया।"

उदारवादियों की माँगे (Demands of Moderates)

उदारवादी नेताओं ने 1885 ई० से लेकर 1905 ई० तक कांग्रेस के माध्यम से ब्रिटिश सरकार के समक्ष निम्नलिखित माँगे प्रस्तुत की—

1. भारतीय शासन की जाँच करने के लिए एक रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जाए।
2. इण्डिया कौंसिल को समाप्त किया जाए।
3. धारा सभाओं का विस्तार हो, जिनमें आम जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि सम्मिलित किए जाए और उन्हें प्रश्न पूछने का अधिकार दिया जाए।
4. प्रेस पर लगाए गए प्रतिबन्धों को हटाया जाए।
5. स्थानीय संस्थाओं को अधिक शक्तियाँ देना तथा उन पर सरकारी नियंत्रण कम करना।
6. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारा सभाओं में भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि की जाए, ताकि प्रतिनिधि शासन स्थापित हो सके।
7. राजकीय सेवाओं में उच्च सार्वजनिक पदों पर भारतीयों को अंग्रेजों के समान अवसर दिए जाए।
8. औद्योगिक शिक्षा 'कुटीर उद्योग' का प्रचार करने के लिए देश में टेक्नीकल स्कूल तथा कॉलेज खोले जाएँ।
9. भारत में सैनिक शिक्षा देने के लिए कॉलेज खोले जाएँ।
10. पुराने उद्योग पुनर्जीवित करना तथा कुछ नये उद्योग स्थापित करना, ताकि कृषि पर दबाव कम हो एवं बेरोजगारी दूर हो।
11. कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग किया जाए।
12. न्याय व्यवस्था पर 'ज्यूरी' का अधिकार हो तथा उसके निर्णयों को मान्यता दी जाए।
13. शस्त्र कानून (आर्म्स एक्ट) में परिवर्तन किया जाए।
14. शासन तथा सेना सम्बन्धी खर्च कम किया जाए।

TOUCH 'n PASS

15. विदेशी वस्तुओं पर अधिक कर लगाया जाए।
16. भारत सचिव की कौंसिल में तथा प्रिवी कौंसिल में भारतीयों को स्थान दिए जाए।
17. भारत मंत्री के वेतन का भुगतान ब्रिटिश कोष से किया जाए।
18. भारत की निर्धनता के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर किया जाए।

इन माँगों के अतिरिक्त सामान्य जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए निम्न माँगे और प्रस्तुत की गयी थी।

1. नमक कर में कटौती की जाए।
2. ऐसे कानून बनाना, ताकि जमींदार किसानों का शोषण नहीं कर सकें।
3. किसानों के बोझ को हल्का करने के लिए भूमि कर में कमी की जाए।
4. जनता पर लगे हुए करों में कमी की जाए।
5. कृषि के विकास के लिए सिंचाई की व्यवस्था की जाए।
6. कृषि बैंक खोले जाएँ, जहाँ से किसानों को कम ब्याज पर ऋण प्राप्त हो सके।
7. तीसरे दर्जे के रेल यात्रियों को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान की जाएँ।
8. पुलिस व्यवस्था में सुधार किया जाए।
9. विदेश में रहने वाले भारतीयों की रक्षा की व्यवस्था की जाए।
10. विदेशों में अनाज के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया जाए आदि।

उदारवादियों की कार्यविधि—उदारवादी नेता प्रतिवर्ष कांग्रेस का अधिवेशन बुलाते थे और उसमें प्रस्ताव पारित करते थे। इन प्रस्तावों को समाचार पत्रों तथा भाषणों के माध्यम से जन-साधारण तक पहुँचाते थे। वे समय-समय पर सरकार को प्रार्थना-पत्र तथा प्रस्ताव भी पेश करते थे। वे अपनी माँगे सरकार के समक्ष अत्यन्त नम्रतापूर्वक पेश करके उनको पूरी करने का निवेदन करते थे। इन स्मरण पत्रों तथा याचिकाओं में कहा जाता था, "हम हमारी लोकप्रिय सरकार से प्रार्थना करते हैं कि ..... उपर्युक्त सुधारों को लागू करने की कृपा कर हमें अनुग्रहित करें।" यहाँ तक कि कांग्रेस अपने शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड भेजती थी, ताकि वे ब्रिटिश अधिकारियों को भारतीयों की माँगों के बारे में अवगत करा सकें। कांग्रेस का इस समय यही तरीका ठीक था, क्योंकि इसका शैशव काल था। इसलिए इस युग में इससे अधिक की आशा कांग्रेस से नहीं की जा सकती थी।

उदारवादियों का इंग्लैण्ड में प्रचार—दादा भाई नौरोजी, ए०ओ० ह्यूम तथा मि० बेडरबर्न जैसे उदारवादी नेताओं का यह विश्वास था कि कांग्रेस का इंग्लैण्ड में अधिक-से-अधिक प्रचार करना चाहिए। ऐसा करने से इंग्लैण्ड के लोगों को भारत की वास्तविक स्थिति के बारे में ज्ञान होगा और कांग्रेस की सफलता बढ़ेगी। उदारवादियों ने अपनी माँगें मनवाने के लिए इंग्लैण्ड में अपनी संस्थाएँ स्थापित की। 1887 ई० में दादा भाई नौरोजी ने लंदन में 'भारतीय सुधार समिति' की स्थापना की। इस समिति के उद्देश्यों के बारे में नौरोजी ने कहा, "क्योंकि शासन सत्ता का प्रमुख स्रोत इंग्लैण्ड में है, इसलिए इंग्लैण्ड में कांग्रेस द्वारा किए गए कोई भी वैधानिक प्रयत्न अधिक प्रभावशाली और लाभदायक होंगे।" दादा भाई नौरोजी ने विलियम डिग्वी की अध्यक्षता में इंग्लैण्ड में 1888 ई० में 'इण्डियन एजेन्सी' की स्थापना की जो 1889 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश समिति बन गयी। अनेकों प्रतिष्ठित अंग्रेज इस समिति के सदस्य बन गए। इस समिति ने 'इण्डिया' नामक मासिक समाचार पत्र जारी किया, जो राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियों के सम्बन्ध में विश्वसनीय सूचना देता था। इसके माध्यम से इंग्लैण्ड के लोगों को भारतीयों की परिस्थितियों से अवगत कराया जाता था। इस समाचार पत्र को इंग्लैण्ड में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

इस काल में कांग्रेस समय-समय पर अपने प्रतिनिधिमण्डल भी इंग्लैण्ड भेजती रही, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश अधिकारियों से भारतीयों की तकलीफें दूर करवाना था। 1890 ई० में कांग्रेस की ओर से एक प्रतिनिधिमण्डल भेजा गया, जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डब्ल्यू०सी० बनर्जी, ए०ओ० ह्यूम आदि थे। इन महान व्यक्तियों ने इंग्लैण्ड के विभिन्न नगरों में भाषण दिए और भारतीय समस्याओं से इंग्लैण्ड को अवगत कराया। इसी प्रकार बिपिन चन्द्र पाल ने 1899 ई० में इंग्लैण्ड की यात्रा की और भारत के पक्ष में बहुमूल्य प्रचार किया। कांग्रेस द्वारा इंग्लैण्ड में प्रचार का यह परिणाम निकला कि इंग्लैण्ड में भारतीय हितों से सहानुभूति रखने वाले एक प्रभावशाली वर्ग का निर्माण हो गया।

TOUCH 'n' PASS

उदारवादियों के विचार (Thoughts of Moderates)

आरम्भिक 20 वर्षों में यानि 1885 से 1905 तक कांग्रेस पूर्णतया उदारवादी नेताओं के नियंत्रण में रही। इस युग के नेताओं के प्रमुख विचारों का अध्ययन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—

1. **ब्रिटिश शासन के प्रति भक्तिभाव**—कांग्रेस के अधिकतर आरम्भिक नेता पाश्चात्य सभ्यता की उपज थे। अत: वे पाश्चात्य सभ्यता तथा विचारों से पूर्ण रूप से प्रभावित थे। वे ब्रिटिश शासन के प्रशंसक तथा राजभक्त थे। उनका यह मानना था कि ब्रिटिश शासन ने शिक्षा, यातायात व संचार आदि साधनों का विकास किया है, जिसके कारण भारत आधुनिक युग में प्रवेश कर सका है। यही कारण था कि वे उदारवादी नेता ब्रिटिश शासन को भारत के लिए वरदान मानते थे। ब्रिटिश राज के उपकारों के प्रति उदारवादी नेताओं के हृदय में कृतज्ञता का भाव था। इस प्रकार वे अपने देश के प्रति भक्ति के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार के प्रति भी राजभक्ति रखते थे। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर वोमेश चन्द्र बनर्जी ने ब्रिटिश शासन के प्रति भक्ति भाव करते हुए कहा था कि, "मैं सब उपस्थित सज्जनों के मत को व्यक्त कर रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि अंग्रेजी सरकार को मरे और यहाँ बैठे हुए मेरे मित्रों की अपेक्षा अधिक गहरे और पक्के राजभक्त व्यक्ति मिलना असम्भव है।"
   कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने अपने सहयोगियों की भावना को व्यक्त करते हुए कहा था, "आओ, हम पुरुषों की तरह बोलें और घोषणा कर दें कि हम पूर्णरूपेण राजभक्त हैं।" ब्रिटिश सरकार भी उदारवादियों की राजभक्ति से भलीभाँति परिचित थी। अत: उसने समय-समय पर उनको पदवियों और उपाधियों से सम्मानित किया। ब्रिटिश सरकार इन नेताओं का सम्मान करती थी।
2. **अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास**—उदारवादी युग के अधिकांश कांग्रेसी नेताओं का अंग्रेजी की सत्यता एवं न्यायप्रियता में अटूट विश्वास था। उनके विचार में अंग्रेज लोग स्वतंत्रता प्रेमी हैं और जब उन्हें यह विश्वास हो जाएगा कि भारतीय स्वशासन के योग्य बन गए हैं, तब उससे निश्चय ही वंचित नहीं रखेंगे। वस्तुत: इस विश्वास ने ही उनमें राजभक्ति की भावना को जन्म दिया था। यही कारण था कि कांग्रेस शुरू से ही अंग्रेजी सरकार की सहानुभूति तथा ब्रिटिश जनमत के समर्थन को जीतने के लिए प्रयास करती रही।
   डॉ० पटाभि सीतारमैया के अनुसार "उदारवादी नेता इस बात पर विश्वास करते थे कि अंग्रेज स्वभाव से न्यायप्रिय होते हैं। अत: यदि उन्हें भारतीय दृष्टिकोण का सही ज्ञान करा दिया गया तो वे भारतीय दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेंगे।" उदारवादी नेता गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था, "अंग्रेज जाति की न्यायप्रियता तथा उदारता में हमारी अबाध निष्ठा है।" फिरोजशाह मेहता ने भी 1890 ई० में कहा था, "मुझे इस बात में तनिक संदेह नहीं है कि ब्रिटिश अन्त में जाकर हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" सर टी० माधवराज ने कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के अवसर पर कहा था, "कांग्रेस ब्रिटिश शासन का सर्वोच्च शिखर और ब्रिटिश जाति का कीर्तिमुकुट है।"
   सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का कहना था कि "अंग्रेजों के न्याय, बुद्धि तथा दया की भावना में हमारा दृढ़ विश्वास है। संसार की महानतम प्रतिनिधि सभा, संसदों की जननी, ब्रिटिश कामन्स सभा के प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा है। अंग्रेजों के सर्वत्र प्रतिनिध्यात्मक आदेश पर ही शासन की रचना की।" कांग्रेस के बारहवें अधिवेशन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए रहीम तुल्ला सयानी ने कहा था कि "अंग्रेजों से बढ़कर सच्चरित्र व सच्ची जाति इस सूर्य के प्रकाश के नीचे नहीं बसती।" दादा भाई नौरोजी ने अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास करते हुए कहा था कि "यद्यपि जान बुल (ब्रिटिश राष्ट्र) तनिक बुद्धि के हैं, परन्तु उसे एक बार कोई बात सुझा दी जाए कि वह अच्छी और उचित है तो आप उसे कार्यरूप में परिणत किए जाने के प्रति विश्वस्त हो सकते हैं। दादा भाई नौरोजी यह कहा करते थे, "मैं आशा करता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है जब अंग्रेज स्वेच्छा से भारत से चले जाएँगे।" उदारवादी नेताओं के उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि उन्हें किस हद तक अंग्रेजों की स्वतंत्रता और न्यायप्रियता में विश्वास था।
3. **ब्रिटेन से स्थायी सम्बन्ध की स्थापना भारत के हित में**—उदारवादी नेता पाश्चात्य संस्कृति तथा विचारों के पोषक थे। अत: उनकी धारणा थी कि ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध बनाए रखना भारत के हित में है। ब्रिटेन के परिणामस्वरूप ही भारत में प्रगतिशील सभ्यता का उदय हुआ। अंग्रेजी साहित्य, शिक्षा पद्धति, यातायात एवं संचार के साधनों की व्यवस्था, न्याय प्रणाली और स्थानीय स्वशासन आदि को भारत के लिए ब्रिटिश राज का वरदान समझते थे। उनका मानना था कि भारत में

TOUCH 'n PASS

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने, देश की रक्षा करने और उसे प्रगति की ओर ले जाने में ब्रिटिश शासन ही समर्थ है। उनका यह भी मानना था कि आंग्ल विचार और दर्शन लोगों में स्वतंत्रता और लोकतंत्र के प्रति आदर उत्पन्न करता है। अत: यह भारत के हित में है कि ब्रिटेन से उसका अटूट सम्बन्ध बना रहे।

गोपाल कृष्ण गोखले ने 1905 ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा था, "हमें यह मानना पड़ेगा कि ब्रिटिश शासन विदेशी होने के कारण अपनी कमियों के होते हुए भी देशवासियों की प्रगति में एक बड़ा साधन रहा है उसके जारी रहने का अर्थ उस शांति तथा व्यवस्था के जारी रहने से है, जिन्हें केवल यही कायम रख सकता है, और जिसके साथ हमारे श्रेष्ठ हित बँधे हैं।" फिरोजशाह मेहता ने कांग्रेस के छठे अधिवेशन में अध्यक्ष पद पर भाषण देते हुए कहा था, "इंग्लैण्ड और सारे भारत का सम्बन्ध इन दोनों देशों और समस्त विश्व की आने वाली पीढ़ियों के लिए वरदान होगा।" दादा भाई नौरोजी ने भी कहा था, "कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने वाली संस्था नहीं है, यह तो ब्रिटिश सरकार की नींव को दृढ़ करना चाहती है।" यही कारण है कि श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा था, "इस युग के नेता अपने को ब्रिटिश प्रजा मानने में गौरव अनुभव करते हैं।"

4. **क्रमिक सुधार में विश्वास**—उदारवादी नेता राजनीतिक क्षेत्र में क्रमबद्ध विकास की धारणा में विश्वास रखते थे। वे इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि एकदम प्रतिनिध्यात्मक शासन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। उनका मानना था कि यदि भारतीयों को शासन में भाग लेने के अवसर मिलते रहे तो उनको स्वशासन का अच्छा प्रशिक्षण मिल जाएगा, जिससे स्वायत्त शासन या स्वतंत्रता की माँग सफल हो सकेगी। अत: वे प्रशासन में आवश्यक सुधारों, विधायी परिषदों, सेवाओं, स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं और रक्षा सेवाओं में सुधार से ही संतुष्ट थे। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के अनुसार "भारतीयों को तत्कालीन रूप में केवल यह आशंका है कि सरकार के आधार को अधिक विस्तृत किया जाए और जनता का उसमें समुचित भाग हो।" 1906 ई० के कांग्रेस के अधिवेशन में स्वराज्य अथवा स्वशासन की माँग की थी, लेकिन वह स्वशासन भी ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में प्राप्त किया जाना था। यह भी स्वीकार किया गया है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लम्बी अवधि तक भारतीयों को प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इस प्रकार उदारवादी नेता क्रमिक, वैधानिक और प्रशासनिक सुधार चाहते थे। वे किसी भी प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन के विरुद्ध थे। आर०जी० प्रधान ने उदारवादियों के विचारों और कार्य पद्धति पर टीका करते हुए लिखा है कि यदि हम कांग्रेस की प्रारम्भिक कार्यवाहियों को देखें तो पाते हैं कि उनकी माँगें अत्यधिक नरम थी। कांग्रेस के प्रारम्भिक संगठन और समर्थक आदर्शवादी नहीं, वरन व्यवहारिक सुधारवादी थे और वे क्रमबद्ध सुधार के मार्ग में विश्वास करते थे।

5. **उदारवादियों का राजनीतिक लक्ष्य**—उदारवादी नेता केवल कतिपय प्रशासनिक सुधार ही नहीं चाहते थे बल्कि उनका अन्तिम लक्ष्य भारतीयों के लिए स्वशासन की प्राप्ति था। उन्हें ब्रिटेन के राजनीतिक विचारों और संस्थाओं की पूर्ण जानकारी थी। अत: वे प्रजातंत्र, स्वशासन और संसदीय शासन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीयों को स्वशासन का पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त हो चुका था। अब भारत स्वशासन के लिए पूर्ण रूप से तैयार था। इस सम्बन्ध में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा था कि स्वतंत्र संस्थाएँ मानसिक और नैतिक अनुशासन की सर्वोत्तम शिक्षण संस्थाएँ हैं। श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में कहा था, "स्वशासन एक प्राकृतिक देन है, ईश्वरीय शक्ति की कामना है। प्रत्येक राष्ट्र को स्वयं ही अपने भाग्य का निर्णय करना चाहिए। यही प्रकृति का नियम है।" उनका यह भी मानना था कि "स्वशासन भारतीयों के लिए कोई नई व्यवस्था नहीं तथा स्वतंत्र संस्थाएँ देश के बौद्धिक और नैतिक संयम की सबसे अच्छी पाठशालाएँ होती हैं। इनके बिना स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन सम्भव नहीं है।"

6. **संवैधानिक साधनों में विश्वास**—उदारवादियों का संवैधानिक साधनों में पूर्ण विश्वास था। वे सरकार से किसी भी कीमत पर लड़ने को तैयार नहीं थे। वे हिंसा के उग्र विरोधी थे और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए क्रांतिकारी मार्ग नहीं अपनाना चाहते थे। वे अपनी माँगों को अत्यन्त नरम और शिष्ट भाषा में प्रार्थना पत्रों, स्मृति पत्रों एवं प्रतिनिधि मण्डलों के माध्यम से सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करते थे और उनको मानने का आग्रह करते थे। आलोचक इसे 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' कहकर पुकारते हैं। पट्टाभि सीतारमैया ने उदारवादियों की वैधानिक पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा है, "उदारवादी अधिकारियों के समक्ष देश और जनता के दुखों और कष्टों को ठोस तथ्य के रूप में रखते थे और उनके पक्ष में अकाट्य तर्क पेश करते थे तथा वे शासन से इस बात की प्रार्थना करते थे कि वह उनकी माँगों को शीघ्र से शीघ्र पूरा

TOUCH 'n' PASS

करने का आश्वासन दे। इस प्रकार स्पष्ट है कि उदारवादी सरकार से संघर्ष करने के पक्ष में नहीं थे। पं० मदनमोहन मालवीय ने इसी भावना को व्यक्त करते हुए कांग्रेस के तृतीय अधिवेशन में कहा था, "हमें सरकार से बार-बार निवेदन करना चाहिए कि वह हमारी माँगों पर शीघ्रता से विचार करे तथा फिर हम अपनी इन सुधार सम्बन्धी माँगों को स्वीकार करने पर जोर दें।" उदारवादी नेता अपनी माँगे मनवाने के लिए याचना करने में किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं करते थे। दादाभाई नौरोजी ने 1906 ई० में कांग्रेस अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा था, "शान्तिप्रिय विधि ही इंग्लैण्ड के राजनीतिक, सामाजिक और औद्योगिक इतिहास की जीवन और आत्मा है। इसलिए हमें भी उस सभ्य, शान्तिप्रिय, और नैतिक शक्ति रूपी अस्त्र को प्रयोग में लाना चाहिए।

प्र.3. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उदारवादियों की दुर्बलताओं एवं सफलताओं का वर्णन कीजिए।
Describe the weaknesses and successes of the liberals in the Indian National Movement.

उत्तर

उदारवादियों की दुर्बलताएँ
(Weakness of Moderates)

अनेक इतिहासकारों की मान्यता है कि उदारवादी युग का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में कोई विशेष स्थान नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह था कि इस युग में कांग्रेस को जनसाधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ था और उसके नेताओं द्वारा अपनाए गए साधन भी प्रभावशाली नहीं थे। इसलिए वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहे। उदारवादी नेताओं के हृदय में देशभक्ति की भावना विद्यमान थी, दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करने में वे गौरव का अनुभव करते थे। वस्तुत: उनकी देशभक्ति का राजभक्ति से मेलजोल हो जाने के कारण देशभक्ति आँशिक रह गई थी। उदारवादियों का ब्रिटिश जाति की न्यायप्रियता एवं उदारता में अगाध विश्वास था। उनका यह सोचना गलत था कि ब्रिटिश राज स्वयं भारत के हित में है। उदारवादी यह समझने में असफल रहे कि अंग्रेज अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देंगे। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था न कि भारत का विकास करना। अंग्रेजों ने भारत में शिक्षा, यातायात व संचार के साधनों का विकास इसलिए किया था ताकि उनके साम्राज्य की सुरक्षा हो सके। उन्होंने कुछ शिक्षित भारतीयों को प्रशासन में नियुक्त किया तो उसका उद्देश्य बुद्धिजीवी और चेतनशील भारतीयों को राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक् रखना था।

इसके अतिरिक्त उदारवादी नेता अपनी माँगों के लिए सरकार से याचना करते थे परंतु सरकार की उनकी माँगों के प्रति कोई रुचि नहीं थी। अधिकतर उदारवादी नेता धनी थे किन्तु वे कोई प्रत्यक्ष कार्यवाही नहीं कर सकते थे। इस युग के नेता किसी प्रकार का बलिदान करने को तैयार नहीं थे। इसके अतिरिक्त वे सरकार से संघर्ष करने के पक्ष में नहीं थे। गुरमुख निहालसिंह ने लिखा है कि, "सम्भवत: गोखले को छोड़कर कांग्रेस के नरम नेताओं में स्वतंत्रता के लिए व्यक्तिगत बलिदान करने और आपत्तियाँ सहने को कोई तैयार नहीं था।" परिणामस्वरूप उदारवादियों की माँगों पर ब्रिटिश प्रशासन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि अंग्रेज सत्य और न्याय के स्थान पर शक्ति और दबाव की भाषा ही समझते थे।

उदारवादियों की सफलता या देन (Success or Contribution of Moderates)

उदारवादियों के विचार और कार्य पद्धति की आलोचना करते हुए अधिकांश इतिहासकारों ने कहा है कि उदारवादी युग का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। कारण यह है कि उदारवादी अपने लक्ष्य की प्राप्ति में असफल रहे। लेकिन उदारवादी युग को इस तरह महत्त्वहीन कहकर टाल देना अनुचित होगा। वस्तुत: जिन परिस्थितियों में उदारवादियों ने कांग्रेस का पोषण किया, वह व्यवहारिक दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त था। यदि कांग्रेस की जड़े जन साधारण में जमने से पूर्व ही ब्रिटिश राज के अन्त या भारत की स्वतंत्रता की बात कहनी प्रारम्भ कर दी जाती तो इसका कांग्रेस के अस्तित्व पर विपरीत प्रभाव पड़ता। अत: उदारवादियों ने जो मार्ग अपनाया, वह नितान्त स्वाभाविक तथा विवेकपूर्ण था। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उदारवादी समय की गति के अनुसार आगे बढ़ने से पीछे नहीं रहे। प्रशासन में क्रमिक सुधारों की माँग को उन्होंने धीरे-धीरे स्वशासन की माँग के रूप में बदल दिया। उदारवादियों की भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण देन हैं—

1. **ब्रिटिश शासन के दोष स्पष्ट करना**—कांग्रेस के आरम्भिक अधिवेशनों में ब्रिटिश सरकार की खुली आलोचना की जाती थी। जैसे-जैसे वे दोष स्पष्ट होते गए, वैसे-वैसे कांग्रेस में उग्रवादी तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता रहा। सारांश यह है कि आगे

चलकर उग्रवादी तत्त्व विदेशी शासन के विरुद्ध लड़ने के लिए खुलकर सामने आ गए। इस प्रकार कांग्रेस अपने आरम्भिक दिनों में सरकार का एक प्रतिपक्ष बन गई, किन्तु यह कोई मित्रतापूर्ण परामर्शदाता प्रतिपक्ष न बनी, अपितु वह एक ऐसा प्रतिपक्ष बनी जिसने सरकार की हैसियत और अधिकार को चुनौती दी।

2. **भारतीय राष्ट्रीयता के प्रणेता**—उदारवादियों ने ही सर्वप्रथम भारत में राष्ट्रीय एकता के विकास की आधारशिला रखी थी। सर्वप्रथम उन्होंने ही देशवासियों को शिक्षा दी कि साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता जैसी संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता की भावना को अपने हृदय में विकसित करे। परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ पड़ी और स्वशासन तथा प्रशासनिक सुधारों की माँग की जाने लगी। इस दृष्टि से उदारवादियों को भारतीय राष्ट्रीयता का जनक कहना सर्वथा उचित है। श्री गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में "प्रारम्भिक कांग्रेस ने राज्यभक्ति की प्रतिज्ञाओं, नरम नीति, आवेदन ही नहीं अपितु भिक्षावृत्ति के बावजूद भी उन दिनों राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक शिक्षा, भारतीयों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने तथा उनमें सामान्य राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने में कठिन परिश्रम किया था।
3. **राजनीतिक शिक्षा**—इस युग की तीसरी महत्त्वपूर्ण देन यह है कि भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला। इस आंदोलन के कारण भारत के भिन्न-भिन्न कोने के लोगों में पारस्परिक सम्पर्क हुआ और उनके महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार का आदान-प्रदान होने लगा। परिणामस्वरूप से संयुक्त रूप से सुधार और स्वशासन के लिए माँग करने लगे। उन्होंने भारतीयों का ध्यान व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं की स्थापना की ओर आकर्षित किया। इसके परिणामस्वरूप लोगों में प्रजातंत्र की भावना का विकास हुआ। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनको जनमत को प्रभावित करने के क्षेत्र में भी पर्याप्त सफलता हाथ न लगी। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "उदारवादियों की कार्य पद्धति का उपहास उड़ाए जाने के बावजूद भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के लिए आवश्यक मानवीय शक्ति और अन्य साधनों की व्यवस्था की है।" डॉ० रासबिहारी घोष ने लिखा है कि हमें उनके कार्यों और कर्त्तव्य भावना की प्रशंसा करनी चाहिए।
4. **स्वतंत्रता संग्राम के आधार का निर्माण**—भारतीय स्वतंत्रता की नींव डाल देने का श्रेय उदारवादी युग के नेताओं को ही है। उन्होंने अपने कार्य-कलापों से एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की, जिसके आधार पर ही भविष्य में स्वतंत्रता हेतु विभिन्न आंदोलन किए जा सके। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लिखा है कि उदारवादियों ने ही हमको इस योग्य बनाया है कि हम स्वतंत्रता की माँग सरकार के समक्ष रख सकें। के०एम० मुन्शी लिखते हैं, "यदि पिछले तीस वर्षों में कांग्रेस के रूप में एक अखिल भारतीय संस्था देश के राजनीतिक क्षेत्र में कार्यरत न होती तो ऐसी अवस्था में गाँधीजी का कोई भी महान आंदोलन सफल नहीं होता।" उदारवादियों की भीरूता और भिक्षावृत्ति की प्रवृति के बारे में डॉ० पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है, "जिस समय भारत के राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने पदार्पण किया, उस समय वे अकेले थे। उन्होंने जो नीतियाँ अपनाई उनके लिए हम उन्हें कोई दोष नहीं दे सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में छ: फुट नीचे जो ईंट, चूना और पत्थर गड़े हैं, क्या उन पर दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो आधार है, जिसके ऊपर सारी इमारत खड़ी हो सकती है। सर्वप्रथम उपनिवेशिक स्वशासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, उसके बाद स्वराज तथा सबसे शीर्ष पर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिले एक के बाद एक बन सकी हैं।"
5. **भारतीय परिषद् अधिनियम (1892)**—भारत प्रशासन में सुधारों के लिए उदारवादियों द्वारा अनेक माँगे रखी गयीं, उन माँगों को आंशिक रूप से पूरा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1892 ई० में 'भारतीय परिषद् अधिनियम' पारित किया। उसके अनुसार भारतीयों को पहले की तुलना में अधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए। गुरुमुख निहालसिंह ने लिखा है कि, "1892 का अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रयत्नों का परिणाम था।"

डॉ० कश्यप ने इस अधिनियम के आधार पर कांग्रेस की सफलता का मूल्यांकन किया है। उन्होंने लिखा है, "यद्यपि 1892 के अधिनियम द्वारा विद्यान परिषदों के सदस्यों को दिए गए अधिकार अत्यन्त सीमित थे तथा अब भी उन्हें मतदान करने, प्रस्ताव अथवा विधेयक उपस्थित करने तथा पूरक प्रश्न आदि के आवश्यक अधिकार नहीं मिले थे, किन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि 1892 के अधिनियम में यह स्वीकार कर लिया गया था कि विद्यान परिषदों का कार्य केवल मात्र विधायी अथवा परामर्श देने का नहीं था और इस दृष्टि से यह अधिनियम प्रतिनिधिक सरकार की ओर प्रमुख कदम था। पहली बार इस अधिनियम ने शासन में कुछ प्रतिनिधित्व अंक का समावेश किया तथा भारतीय सदस्यों को भी

सरकारी विधेयकों तथा बजट जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार प्रकट करने तथा सरकार के कृत्यों के बारे में प्रश्न पूछने के कुछ-न-कुछ अधिकार प्रदान किए। निसंदेह यह अधिनियम संवैधानिक सुधारों की दिशा में प्रगति का चरण था। किन्तु आज जब हम देखते हैं तो यह लगता है कि जो कुछ किया गया वह सारहीन तथा खोखला था। विद्यान परिषदों के गैर सरकारी सदस्यों के भाषणों में तत्कालीन समाचार पत्रों में छपे लेखों तथा भारतीय कांग्रेस की बैठकों में व्याख्यानों और प्रस्तावों आदि सभी में 1892 के सुधारों के प्रति अपर्याप्तता और असन्तोष का भाव साथ-साथ अभिव्यक्त किया गया था।'' यद्यपि यह अधिनियम भारतीयों को संतुष्ट न कर सका, फिर भी देश के वैधानिक विकास की दिशा में यह पहला कदम था। इसे उदारवादियों की तत्कालीन सफलता कहा जा सकता है।

यद्यपि यह सत्य है कि उदार राष्ट्रवादी आंदोलन में कई कमियाँ थीं, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसने भारत में राष्ट्रीय जागृति की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अत: साधारण सफलताओं के बावजूद भी इस युग का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में विशेष महत्त्व है।

प्र.4. राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण की व्याख्या कीजिए।
Explain the first phase of National Movement.

उत्तर

प्रथम चरण (1885-1905 ई० तक)
[Phase I (1885-1905 AD)]

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी किन्तु इस समय तक इसका लक्ष्य पूरी तरह से अस्पष्ट था। इस आन्दोलन का प्रतिनिधित्व उस समय अल्प शिक्षित, बुद्धिजीवी मध्यम वर्गीय व्यक्ति कर रहे थे। यह वर्ग पश्चिम की उदारवादी एवं अतिवादी विचारधारा से प्रभावित था।

कांग्रेस का उदारवादी युग (Liberalism Era of Congress)

राष्ट्रीय आन्दोलन का पहला चरण उदारपंथी राष्ट्रीयता युग या वैधानिक युग कहलाता है। यह कांग्रेस की 'शैशवकाल' अवस्था मानी जाती है। कांग्रेस पर 1885 से 1905 ई० तक उदारपंथियों का एकाधिपत्य था। भारतीय शासन में कांग्रेस का इस दौरान लक्ष्य छोटे-मोटे सुधार प्राप्त करना था। वे नरम नीति को अपनाते थे। इस प्रकार वे उदारवादी कहलाए। उदारपंथी लोगों का कार्यक्रम **राजनीतिक भिक्षावृत्ति** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समय के उदारपंथी नेता दादा भाई नौरोजी, उमेश चन्द्र बनर्जी, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, फिरोज शाह मेहता, लालमोहन घोष रासबिहारी घोष, गोपालकृष्ण गोखले आदि थे।

उदारवादियों के उद्देश्य एवं सिद्धान्त (Objectives and Principles of Liberalism)

उदारवादी ब्रिटिश शासन के विरोधी नहीं थे। ब्रिटिश संसदीय प्रणाली, अंग्रेजों की न्यायप्रियता एवं लोकतान्त्रिक प्रवृत्ति में उनकी गहरी आस्था थी। वे संवैधानिक सुधारों द्वारा व्यवस्थापूर्वक स्वतंत्रता के समर्थक थे तथा ब्रिटिश शासन को भारतीयों के लिए कल्याणकारी मानते थे। उन्हें भय था कि अंग्रेजों का शासन समाप्त होते ही भारत में पुन: अराजकता एवं अव्यवस्था फैल जाएगी। इसलिए वे प्रार्थना-पत्रों, स्मृति-पत्रों एवं अन्य संवैधानिक माध्यमों से क्रमश: सुधार करना चाहते थे। वे इस बात से अभिभूत थे कि अंग्रेजों ने भारत को पुन: एकता के सूत्र में आबद्ध किया, विदेशी आक्रमणों से मुक्त रखा, यातायात एवं संचार के साधनों का विकास किया तथा भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों ब्रिटिश शिक्षा नीति में ''अंग्रेजी सरकार के माध्यम से ही उन राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त किया जा सकता है जिनकी अभिलाषा अंग्रेजी शिक्षा व अंग्रेजी शासन ने भारतीयों में जाग्रत की है।'' साथ ही साथ वे भारतीयों में राष्ट्रीयता एवं एकता की भावना उत्पन्न करना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि देश को प्रगति के लिए जनता के विभिन्न वर्गों के बीच एकता नितान्त आवश्यक है। वे ब्रिटिश शासन पद्धति में सुधार करना चाहते थे। उनका उद्देश्य स्वराज अथवा स्वशासन प्राप्त करना नहीं था। वे ब्रिटिश सरकार को पूर्ण सहयोग प्रदान करने के लिए तत्पर थे। दादा भाई नौरोजी ने कहा था कांग्रेस ब्रिटिश सरकार की स्थिरता की नींव में एक अतिरिक्त पत्थर है।

उदारवादी युग की माँगे (Demand of Liberalism Era)

प्रारम्भिक 20 वर्षों में कांग्रेस ने अपने वार्षिक अधिवेशनों में विभिन्न विषयों से सम्बन्धित प्रस्ताव पास किए तथा ब्रिटिश सरकार का ध्यान उन विषयों की ओर आकर्षित कर प्रशासन में सुधार करने की माँग की। उन प्रस्तावों के आधार पर उस युग की मुख्य माँगें अग्रलिखित थी—

TOUCH 'n' PASS

1. भारत सचिव की इंडिया काउन्सिल (परिषद) को समाप्त करना। इस माँग का मुख्य उद्देश्य यह था कि इस काउन्सिल का समस्त खर्च भारत से दिया जाता था, जिससे भारत से धन का निष्कासन (Expulsion of money) होता था।
2. केन्द्रीय तथा प्रांतीय काउन्सिलों (परिषदों) का विस्तार, उनमें सरकारी नामांकित सदस्यों की संख्या में कमी तथा निर्वाचित एवं गैर-सरकारी, भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि करना ताकि भारत में प्रतिनिधि शासन स्थापित हो सके।
3. उच्च सार्वजनिक पदों पर भारतीयों को अंग्रेजों के समान अवसर दिए जाएँ। भारतीय सिविल सर्विस की प्रतियोगिता परीक्षाएँ भारत में भी आयोजित की जाए तथा इन सेवाओं में प्रवेश की आयु बढ़ायी जाए।
4. कार्यकारिणी एवं न्याय सम्बन्धी प्रशासन पृथक किए जाए तथा मुकदमों की सुनवाई में जूरी प्रथा को मान्यता दी जाए।
5. ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार का खर्च केवल भारत पर ही न डाला जाए तथा भारत से धन-निष्कासन रोका जाए।
6. सैनिक अधिकारियों की शिक्षा के लिए भारत में सैनिक कॉलेज स्थापित किए जाएँ तथा शस्त्र कानून में संशोधन किया जाए।
7. भारत सचिव की काउन्सिल में तथा प्रिवी काउन्सिल में भारतीयों को भी स्थान दिया जाये।
8. भू-राजस्व एवं नमक-कर में कमी की जाए तथा किसानों की स्थिति सुधारने के लिए भू-राजस्व की दर स्थायी रूप से निर्धारित कर दी जाए। इसे 20 से 30 वर्षों तक न बढ़ाया जाए।
9. भारत कें कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए तथा भारत में औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा की सुविधाएँ करायी जाए।
10. कांग्रेस के तृतीय अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था, हमारी माँगों का प्रमुख लक्ष्य एक वाक्य में—'भारत में प्रतिनिधि संस्था की स्थापना' कहा जा सकता है।

उदारवादियों की नीतियाँ एवं कार्यक्रम (Policies and Programmes of Liberalism)

उदारवादी लोगों द्वारा स्वयं के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दो प्रकार की नीतियाँ अपनायी गयीं। प्रथम, भारतीय जनता में राजनीतिक शिक्षा का प्रचार करके उनमें राष्ट्रप्रेम हेतु एकता की भावना उत्पन्न करना। द्वितीय, ब्रिटिश शासन के समक्ष निवेदन की नीति अपनाकर सुधार प्रक्रिया आरंभ करवाना। कांग्रेस ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'इंडिया' नाम की एक कमेटी का शुभारंभ किया तथा 'इंडिया' नामक समाचार पत्र निकाला गया।

1. **ब्रिटिश शासन के प्रति लगाव**—उदार राष्ट्रवादी नेता उच्चकोटि के देशभक्त थे, परन्तु वे देशभक्ति के अतिरिक्त ब्रिटिश शासन के अत्यधिक प्रशंसक थे। इनके हृदय में ब्रिटिश राज्य के उपकारों के प्रति आभार प्रकट करने के भाव थे, क्योंकि भारत में राजनीतिक शान्ति की स्थापना अंग्रेजी शासन के कारण ही हुई थी। कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन के अध्यक्ष **दादाभाई नौरोजी के अनुसार**, "आओ हम पुरुषों की तरह बोलें एवं घोषणा कर दें कि हम राजभक्त हैं।" **एनीबेसेण्ट के अनुसार**, "इस काल के नेता अपने को ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा मानने में गौरव का अनुभव करते हैं।"
2. **अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास**—उदारवादी दल से जुड़े लोगों का अंग्रेजों की न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास था। उदारपंथी नेताओं की यह धारणा थी कि अंग्रेज सच्चे एवं न्यायप्रिय होते हैं और यदि भारतीय दृष्टिकोण का उन्हें वास्तविक ज्ञान करा दिया जाए, तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के अनुसार**, अंग्रेजों के न्याय, बुद्धि तथा दया की भावना में हमारा दृढ़ विश्वास है।
3. **ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध भारत के हित में**—उदारवादी नेताओं का मानना था कि ब्रिटिश शासन ने भारतीयों को आवागमन के साधन, न्याय प्रणाली, अंग्रेजी साहित्य, शिक्षा पद्धति एवं स्थानीय स्वशासन आदि प्रदान किया है। **फिरोजशाह मेहता (कांग्रेस के छठे अधिवेशन के अध्यक्ष)** के अनुसार, "इंग्लैण्ड और भारत का सम्बन्ध दोनों समस्त विश्व की आने वाली पीढ़ियों के लिए वरदान होगा।"
4. **क्रमिक सुधारों में विश्वास**—उदारवादी लोग राजनीतिक क्षेत्र के अन्तर्गत क्रमबद्ध विकास धारणा में विश्वास करते थे। उनके अनुसार एकदम ही प्रतिनिध्यात्मक शासन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे कभी भी स्वयं की माँगों को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं प्रस्तुत करते थे, बल्कि सर्वप्रथम उन्होंने छोटे-छोटे सुधार की माँगें प्रारम्भ की, जैसे—प्रशासन में आवश्यक सुधार, सरकार के व्यय में कमी, विधान परिषद में भारतीयों की संख्या में वृद्धि आदि। ये लोग सुधार हेतु क्रान्तिकारी परिवर्तन के विरुद्ध थे। **महादेव गोविन्द रानाडे के अनुसार**, "राजनीतिक सुधारों के लिए बातचीत करते

TOUCH 'n PASS

समय यह समझ लेना चाहिए कि क्या सम्भव है और क्या असम्भव है। अत: सन् 1906 ई० में काँग्रेस द्वारा स्वशासन एवं स्वराज्य की माँग क्रमिक सुधारों में विश्वास रखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य से की गई।

5. **राजनीतिक स्वशासन का लक्ष्य**—उदारपंथी नेताओं का अन्तिम लक्ष्य ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वशासन की स्थापना करना था। कांग्रेस अधिवेशन 1906 में दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में स्वशासन के इस लक्ष्य को कांग्रेस द्वारा स्पष्ट रूप से अपनाया गया।
6. **उदारपंथी लोगों की कार्यपद्धति**—उदारवादी नेता संवैधानिक साधनों में विश्वास करते थे और उनकी कार्यप्रणाली हिंसा एवं संघर्ष की विरोधी थी। उन्होंने वैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु प्रार्थना पत्रों, स्मृति पत्रों एवं प्रतिनिधि मण्डलों का मार्ग अपनाया था। इन्हें निवेदन की पद्धति में अधिक विश्वास था। अनेक आलोचकों ने इनके द्वारा अपनाए गए (प्रार्थना पत्रों, स्मृति पत्रों व प्रतिनिधि मण्डलों) मार्ग को राजनीतिक भिक्षावृत्ति कहा है।

उदारवादियों की कार्य पद्धति एवं संगठन (Methodology and Organisation of Liberalism)

आधुनिक राजनीतिक दल के समान उदारवादी संगठित नहीं थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच पर प्रतिवर्ष वे एकत्रित होते थे तथा अपने में से किसी एक को कांग्रेस का अध्यक्ष चुन लेते थे। अध्यक्ष ही उनके कार्यक्रम का मसौदा तैयार करता था तथा उदारवादी आन्दोलन को दिशा-निर्देश प्रदान करता था। उसे निर्वाचित सचिव सहयोग प्रदान करते थे। कांग्रेस का कोई लिखित संविधान नहीं था। उदारवादी संवैधानिक तरीकों में विश्वास रखते थे। इसलिए वे प्रार्थना-पत्रों, स्मृति-पत्रों एवं प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे। 1906 ई० में उदारवादियों ने इंग्लैण्ड की जनता एवं राजनीतिज्ञों को प्रभावित करने के लिए एक प्रतिनिधिमण्डल भी भेजा था। वहाँ की जनता को भारतीय समस्याओं से अवगत कराने के लिए 'इण्डिया' नामक एक समाचार-पत्र का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया।

उदारवादी प्रतिवर्ष अपनी माँगों के समर्थन में प्रस्ताव पारित करते थे। उनके औचित्य को वे तर्क द्वारा सिद्ध करते थे, ताकि ब्रिटिश सरकार उन्हें स्वीकार कर ले। उनके कार्यक्रम में जन-आन्दोलन का कोई स्थान नहीं था। उन्हें भय था कि जन-आन्दोलन के कारण अराजकता पैदा हो जाएगी। अंग्रेजों पर उनका अटूट विश्वास था। वे अंग्रेजों को भारतीयों की दयनीय स्थिति से अवगत कराना चाहते थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अन्य उपनिवेशों की भाँति अंग्रेज भारत को भी स्वशासन प्रदान कर देंगे। उनमें असीम धैर्य था। वे जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना चाहते थे। समाचार-पत्रों एवं भाषणों द्वारा वे सरकार की नीति की आलोचना करते थे और उस पर दबाव डालते थे।

कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश अधिकारी वर्ग का दृष्टिकोण—प्रारम्भ में ब्रिटिश सरकार का रूख कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। वह इसे एक सरकार विरोधी संस्था नहीं मानती थी। रूसी आक्रमण के भय के कारण वह भारतीयों का अधिकाधिक समर्थन प्राप्त करना चाहती थी। इसलिए शासकीय कर्मचारियों पर इसके अधिवेशनों एवं कार्यवाही में भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, परन्तु धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकार की नीति में परिवर्तन हुआ। उसने कांग्रेस को सरकार विरोधी संस्था घोषित कर दिया तथा यह प्रयास किया कि भारतीय मुसलमान इस संस्था में सम्मिलित न हो।

उदारवादियों की उपलब्धियाँ (Achievements of Liberalism)

उदारवादियों को कोई विशिष्ट सफलता तो प्राप्त नहीं हुई। फिर भी उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित किए। वे कांग्रेस के जन्म के प्रथम 20 वर्षों तक उसकी नीतियों का निर्धारण करते रहे। उनकी निम्नलिखित उपलब्धियाँ थी—

1. **व्यावहारिक तथा यथार्थवादी नीति का अनुसरण**—तत्कालीन परिस्थितियों में उनके उद्देश्य एवं सिद्धान्त व्यावहारिक तथा यथार्थवादी थे। अपने शैशवकाल में कांग्रेस इतनी शक्तिशाली नहीं थी कि ब्रिटिश सरकार से सीधी टक्कर ले सके। इसलिए उदारवादियों ने मिन्नतों और प्रार्थनाओं का मार्ग अपनाया।
2. **भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना**—कांग्रेस के प्रारम्भिक कार्यकर्त्ता भारतीय राष्ट्रवाद के महान पोषक थे। उन्होंने भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान की तथा जनसेवा का एक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। कांग्रेस ने शिक्षित भारतीयों को देश की समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए एक मंच प्रदान किया तथा उन्हें अधिकारों की प्राप्ति हेतु संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

   गुरुमुख निहाल सिंह ने ठीक ही लिखा है कि, "उदारवादियों ने उन दिनों राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक शिक्षा, भारतीयों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने तथा उनमें राष्ट्रीयता की भावना का निर्माण करने के लिए कठिन परिश्रम किया।"

उदारवादियों के योगदान के सम्बन्ध में डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने निम्न विचार अभिव्यक्त किया है, "उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के लिए आवश्यक मानवीय शक्ति एवं साधनों की व्यवस्था की।" इस युग को हम **'भारतीय राष्ट्रवाद के बीजारोपण का युग'** कह सकते हैं।

3. **ब्रिटिश शासन के दोषों को उजागर करना**—उदारवादियों ने सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन की त्रुटियों की ओर भारतीय जनता का ध्यान आकर्षित कराया। उन्होंने भारत की दुर्दशा के लिए विदेशियों को जिम्मेदार ठहराया। वे भारतीयों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रेरित करते रहे। दादाभाई नौरोजी ने भारतीयों को 'धन-निष्कासन' के कुप्रभाव से अवगत कराया।
4. **समाज का पुनर्निर्माण**—उदारवादी केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को उजागर करके उसे दूर करने का प्रयास किया तथा सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को अपनाने के लिए भारतीयों को प्रेरित किया।
5. **1892 ई० का भारतीय काउन्सिल अधिनियम**—उदारवादियों की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता यह थी कि उनके प्रभाव एवं माँगों को ध्यान में रखकर ही ब्रिटिश सरकार ने 1892 ई० अधिनियम को पारित किया। इसके अनुसार केन्द्रीय काउन्सिल के अतिरिक्त सदस्यों का निर्वाचन होने लगा। फलस्वरूप गोपालकृष्ण गोखले तथा फिरोजशाह मेहता जैसे उदारवादी नेताओं को केन्द्रीय काउन्सिल के अधिवेशन में भाग लेने का अवसर मिला। उदारवादियों के प्रयत्नों का परिणाम था कि भारतीयों को नागरिक सेवा में आयु सीमा की छूट प्रदान की गयीं। वास्तव में यह युग भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का शैशवकाल था।

उदारवादियों की आलोचना (Criticism of Liberalism)

आलोचकों ने उदारवादियों पर 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' का आरोप लगाया है। लाला लाजपतराय ने इसको अवसरवादी आन्दोलन कहा। उदारवादियों पर सबसे बड़ा दोषारोपण यह हुआ कि वे ब्रिटिश ताज के प्रतिनिष्ठा रखते थे। वे यह मानते रहे कि अंग्रेजों से उन्हें न्याय मिलेगा, परन्तु उनके द्वारा अपनाये गये संवैधानिक उपाय प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुए। ब्रिटिश सरकार ने उनके प्रस्तावों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वे प्रार्थनाओं एवं याचनाओं द्वारा ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन नहीं कर सके। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अटूट निष्ठा के बावजूद शीर्षस्थ ब्रिटिश अधिकारियों ने उन्हें कोई महत्त्व नहीं दिया। डफरिन ने तो यहाँ तक कहा कि कांग्रेस अल्पसंख्यक का प्रतिनिधित्व करती है और उसकी माँगें 'अज्ञात में छलांग' लगाना है। वास्तव में उदारवादी यह नहीं समझ सके कि देशभक्ति एवं राजभक्ति परस्पर विरोधी भावनाएँ हैं। उन्होंने अंग्रेजों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास किया। ये भूल गए कि अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना था। अतएव ब्रिटिश नीति कभी भी भारतीयों के लिए हितकर नहीं हो सकती है। उदारवादियों ने न तो एक सशक्त सरकार विरोधी पार्टी की भूमिका निभा सके और न ही जनता का समर्थन प्राप्त कर सके।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. उदारवादियों का सबसे प्रमुख योगदान था—

(क) ब्रिटिश शोषण नीति की ओर जनता का ध्यान खींचना
(ख) जन आन्दोलन
(ग) हिंसक कार्यपद्धति
(घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) ब्रिटिश शोषण नीति की ओर जनता का ध्यान खींचना

प्र.2. किसने कहा था, "हमें मर्दों की तरह कहना चाहिए कि हम अपनी मज्जा तक राजभक्त हैं, हमें अंग्रेजी राज्य से हुए फायदों का ज्ञान है?

(क) दादाभाई नौरोजी
(ख) एस०एन० बनर्जी
(ग) फिरोजशाह मेहता
(घ) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (क) दादाभाई नौरोजी

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. किसने कहा था, "भारतवर्ष तलवार के बल पर जीता गया था और तलवार के बल पर ही उसे ब्रितानी कब्जे में रखा जाएगा?
(क) डफरिन (ख) एल्गिन (ग) लैंसडाउन (घ) कर्जन
उत्तर (ख) एल्गिन

प्र.4. किसने उदारवादियों के सम्बन्ध में कहा, "अपनी शिकायतों का निवारण करने तथा रियायत पाने के लिए उन्होंने 20 साल से अधिक समय कमोबेश जो आन्दोलन चलाया उसमें उन्हें रोटियों के बजाय पत्थर मिले?
(क) लाला लाजपतराय (ख) बाल गंगाधर तिलक (ग) अरविन्द घोष (घ) बिपिनचन्द्र पाल
उत्तर (क) लाला लाजपतराय

प्र.5. किस उग्रवादी नेता ने उदारवादियों के सम्बन्ध में कहा था, "यदि हम साल में एक बार मेढ़कों की तरह टर्र-टर्र करके चुप होते रहे तो हमें कभी अपने प्रयासों में सफलता नहीं मिलेगी?
(क) लाला लाजपतराय (ख) बाल गंगाधर तिलक (ग) बिपिनचन्द्र पाल (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) बाल गंगाधर तिलक

प्र.6. 1897 में किसकी गिरफ्तारी के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस में एक नया मोड़ आया?
(क) बाल गंगाधर तिलक (ख) गोपाल कृष्ण गोखले
(ग) मदन मोहन मालवीय (घ) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
उत्तर (क) बाल गंगाधर तिलक

प्र.7. निम्नलिखित में से किसने इण्डियन नेशनल कांग्रेस की नरम दलीय राजनीति की व्यवस्थित आलोचना 'न्यू लैंप्स फॉर ओल्ड' शीर्षक लेखों की शृंखला में की?
(क) अरविन्द घोष (ख) आर०सी० दत्त (ग) वीर राघवाचार्य (घ) सैय्यद अहमद खान
उत्तर (क) अरविन्द घोष

प्र.8. मद्रास महाजन सभा की स्थापना की गयी वर्ष—
(क) 1881 में (ख) 1882 में (ग) 1883 में (घ) 1884 में
उत्तर (घ) 1884 में

प्र.9. भारत में लॉर्ड कर्जन के प्रशासन की तुलना औरंगजेब से किसने की?
(क) गोपाल कृष्ण गोखले (ख) एनी बेसेन्ट (ग) दादाभाई नौरोजी (घ) बाल गंगाधर तिलक
उत्तर (क) गोपाल कृष्ण गोखले

प्र.10. "राजा जनता के लिए बने हैं, जनता राजा के लिए नहीं बनी है।" राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान निम्नलिखित में से किसने यह वक्तव्य दिया था?
(क) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने (ख) आर०सी० दत्त ने
(ग) दादाभाई नौरोजी ने (घ) गोपाल कृष्ण गोखले ने
उत्तर (ग) दादाभाई नौरोजी ने

प्र.11. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन होने के तुरन्त बाद ब्रिटिश, राष्ट्रवादियों के प्रति संशयालु हो गये, निम्नलिखित में से किसने कहा कि कांग्रेस केवल विशिष्ट वर्ग-'सूक्ष्म अल्पसंख्या' का ही प्रतिनिधित्व करती है?
(क) लॉर्ड नेपियर (ख) लॉर्ड डफरिन (ग) लॉर्ड रिपन (घ) लॉर्ड लिटन
उत्तर (ख) लॉर्ड डफरिन

प्र.12. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के 1885-1905 की अवधि को कहा जाता है—
(क) उदारवादी चरण (ख) उग्रवादी चरण
(ग) गाँधी युग (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) उदारवादी चरण

TOUCH 'n PASS

प्र.13. भारतीय इतिहास में वर्ष 1885 ई० प्रसिद्ध है—
(क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कारण (ख) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पतन के कारण
(ग) प्लासी के युद्ध के कारण (घ) बक्सर के युद्ध के कारण
उत्तर (क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कारण

प्र.14. आधुनिक भारतीय इतिहास में गोलकुलदास तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय क्यों प्रसिद्ध है?
(क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन यहीं हुआ था
(ख) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और दादाभाई नौरोजी इसके छात्र रहे थे
(ग) ए०ओ० ह्यूम इसके प्राचार्य थे
(घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन यहीं हुआ था

प्र.15. 1885-1905 के काल के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उदारवादी नेताओं का प्रभुत्व था। उनके आन्दोलन का मुख्य ढंग क्या था?
(क) प्रतिगामी राष्ट्रवाद (ख) संवैधानिक आन्दोलन
(ग) सैद्धान्तिक प्रजातन्त्रीकरण (घ) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (ख) संवैधानिक आन्दोलन

प्र.16. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली बैठक किस शहर में हुई थी?
(क) कलकत्ता (ख) बम्बई (ग) अहमदाबाद (घ) इलाहाबाद
उत्तर (ख) बम्बई

प्र.17. निम्नलिखित कांग्रेसी नेताओं में से किसको 'भारत का महान वृद्ध व्यक्ति' (Grand Old Man of India) कहा जाता है?
(क) महात्मा गाँधी (ख) बाल गंगाधर तिलक
(ग) दादाभाई नौरोजी (घ) मदन मोहन मालवीय
उत्तर (ग) दादाभाई नौरोजी

प्र.18. किस गवर्नर जनरल के कार्यकाल के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनी थी?
(क) लॉर्ड रिपन (ख) लॉर्ड विलियम बैंटिक (ग) लॉर्ड डफरिन (घ) लॉर्ड कर्जन
उत्तर (ग) लॉर्ड डफरिन

प्र.19. भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 1904 किस वायसराय के काल में पारित किया गया था?
(क) लॉर्ड लिटन (ख) लॉर्ड कर्जन (ग) लॉर्ड रिपन (घ) लॉर्ड हार्डिंग
उत्तर (ख) लॉर्ड कर्जन

प्र.20. भारतीय सिविल सेवा (ICS) में चुने गए पहले भारतीय का नाम था—
(क) सत्येन्द्र नाथ टैगोर (ख) सरोजिनी नायडू (ग) लाला लाजपतराय (घ) सी०आर० दास
उत्तर (क) सत्येन्द्र नाथ टैगोर

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-V

उग्रवादी काल
Extremist Phase

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. चरमपंथी काल कब से कब तक रहा?

What was the duration of Extremist Period?

उत्तर आंदोलन का चरमपंथी काल 1905 से 1918 तक था। चरमपंथी अपने तरीकों में नरमपंथियों से अलग थे। चरमपंथियों का हिंसा में विश्वास था जबकि नरमपंथियों ने भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन किया। नरमपंथियों ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दिया।

प्र.2. चरमपंथी आंदोलन के उदय के लिए जिम्मेदार कारण क्या थे?

What were the reasons responsible for the rise of the Extremist Movement?

उत्तर बंगाल का विभाजन है। बंगाल का विभाजन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में चरमपंथ के उदय का प्रत्यक्ष कारण था। 1905 में बंगाल विभाजन ने भारतीयों की आँखों को ब्रिटिश शासकों के असली रंग के लिए खोल दिया। चरमपंथी नेता भी उस समय आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के विकास से प्रभावित थे।

प्र.3. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उग्रवादियों के मुख्य तरीके क्या थे?

What were the main tactics of Extremist in Indian National Movement?

उत्तर विद्रोहियों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं और राष्ट्रवाद और सत्याग्रह को अपनाने पर भी विशेष जोर दिया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार बाद में एक शक्तिशाली हथियार के रूप में उभरा क्योंकि इसके माध्यम से लोगों से समर्थन प्राप्त करना आसान था।

प्र.4. उग्र राष्ट्रवादियों के क्या साधन थे?

What were the resources of Extremists?

उत्तर संवैधानिक आंदोलनों से भारतीयों का विश्वास उठ गया अत: संघर्ष द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने की जिस भावना का जन्म हुआ उसे ही उग्र राष्ट्रवाद की भावना कहते हैं। कांग्रेस में एक दल इस भावना का कट्टर समर्थक था। इनका विश्वास था कि स्वशासन ही भारत के विकास का मार्ग आगे ले जाएगा।

प्र.5. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे चरण को क्या कहा जाता है?

What is called the second phase of the Indian National Movement?

उत्तर इसे 'मांटेग्यू घोषणा' कहा गया। मांटेग्यू घोषणा को उदारवादियों ने 'भारत के मैग्नाकार्टा की संज्ञा' दी। नवम्बर, 1917 में मांटेग्यू भारत आये और यहाँ उन्होनें तत्कालीन वायसराय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड से व्यापक विचार-विमर्श के बाद 1919 ई० में 'मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट' को जारी किया।

प्र.6. भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के उदय के क्या कारण थे?

What were the reasons for the rise of National Movement in India?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उदय के कारणों में शासकों की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ और नस्लीय अहंकार, मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवियों का उदय, भारत के गौरवशाली अतीत की खोज, दुनियाभर में राष्ट्रवादी आंदोलनों का प्रभाव, बुनियादी ढाँचे का विकास और आधुनिक प्रेस, अंग्रेजों द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का शोषण।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. राष्ट्र के विकास का पहला चरण क्या है?
What is the first step for the development of a nation?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, भारत की आज़ादी के लिए सबसे लम्बे समय तक चलने वाला एक प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलन था। 1885 ई० में कांग्रेस की स्थापना के साथ ही इस आंदोलन की शुरुआत हुई।

प्र.8. भारत में चरमपंथी आंदोलन के जन्मदाता कौन थे?
Who was the father of extremist movement in India?

उत्तर ये एक अजीब इत्तेफ़ाक है कि जिस व्यक्ति को 1980 के दशक में सिख चरमपंथ का जन्मदाता माना जाता है, उनके माता-पिता ने उनका नाम जरनैल सिंह रखा था।

प्र.9. भारत छोड़ों आंदोलन में किसने भाग लिया?
Who took part in Quit India Movement?

उत्तर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, सुभाष चंद्र बोस, मोहनदास करमचंद गांधी, मोहम्मद अली जिन्ना, अशोक मेहता, जया प्रकाश नारायण, जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ० राजेंद्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी।
30 दिसंबर, 1906 को, ढाका के नवाब आगा खान और नवाब ख्वाजा सलीमउल्लाह के नेतृत्व में भारतीय मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा के लिए मुस्लिम लीग का गठन किया गया था। प्रारंभ में इसे अंग्रेजों का बहुत समर्थन मिला था लेकिन जब मुस्लिम लीग ने स्व-शासन की नीति को अपनाने की बात कही तो उन्हें अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उग्रवादियों की राजनीतिक विचारधारा का उल्लेख कीजिए।
Mention the political ideology of Extremist.

उत्तर

उग्रवादियों की राजनीतिक विचारधारा तथा कार्य पद्धति
(Political Ideology and Working Pattern of Extremists)

उग्रवादियों का सर्वप्रथम राजनीतिक उद्देश्य 'स्वराज्य' की प्राप्ति का। उनके अग्रणी नेता तिलक ने यह उद्घोषित किया था कि "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।" यद्यपि उदारवादियों की भाँति उग्रवादी भी भारत में स्वशासन चाहते थे, परन्तु उसे प्राप्त करने के ढंग में अन्तर था। उदारवादी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में स्वशासन स्थापित करना चाहते थे। उनका विचार था ब्रिटिश शासन में सुधार किया जा सकता है एवं क्रमिक सुधार ही उपयुक्त एवं भारत के हित में है। इसलिए वे भारत में ब्रिटिश ढंग की प्रतिनिधित्व संस्थाओं की स्थापना के पक्ष में थे। ताकि भारतीयों में उन संस्थाओं के कुशल संचालन की योग्यता एवं क्षमता उत्पन्न हो सके। अत: वे अंग्रेजों के साथ सम्बन्ध भारत के लिए हितकारी मानते थे। इसके विपरीत उग्रवादियों का विचार था कि ब्रिटिश शासन में सुधार किया ही नहीं जा सकता था, उसका अन्त किया जाना चाहिए। इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए विपिन चन्द्र पाल ने मद्रास में कहा था, "हमें देखना यह चाहिए कि 50, 100, 200 या 300 भारतीय अधिकारी क्या इस सरकार को भारतीय बना देंगे? सभी अफसर भारतीय हो जाए, तब भी वे नीति निर्धारित नहीं कर सकते, शासन नहीं चला सकते, वे तो सिर्फ हुक्म बजाते हैं, अफसर गोरा हो या काला उससे परम्पराएँ न तोड़ी जाए, सिद्धान्त न बदले जाए, गोरे अधिकारी की जगह काले अधिकारियों की नियुक्ति कर देने से स्वराज्य नहीं आएगा।" **सर हेनरी काटन** के अनुसार, "उग्रवादी भारत में सब प्रकार से मुक्त और स्वतन्त्र राष्ट्रीय शासन प्रणाली की स्थापना करना चाहते थे" इस प्रकार उग्रवादियों का उदारवादियों के औपनिवेशिक स्वराज्य में विश्वास नहीं था। वे तो अंग्रेज शासन का अन्त कर ऐसा पूर्ण स्वराज्य चाहते थे, जिसकी रचना भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के अनुरूप हो। उग्रवादी क्रमिक सुधारों के पक्ष में नहीं थे। वे यह नहीं चाहते थे कि पहले सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में सुधार किए जाएँ जब भारतीय राजनीतिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लें, तब स्वशासन की माँग की जाए। उनका मानना था कि पहले स्वराज्य प्राप्त हो जाए, इसके बाद विविध क्षेत्रों में स्वत: सुधार हो जाएँगे। थियोडोट एल० शे द्वारा तिलक की विचारधारा के स्पष्टीकरण से उग्रवादियों का उद्देश्य स्पष्ट होता है, "इस नेता को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि स्वराज्य भारत के लिए आवश्यक ही नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी सर्वथा उचित है। उन्होंने लोगों

TOUCH 'n PASS

का उपदेश दिया कि हमें स्वराज्य की आवश्यकता इसलिए नहीं है कि हम यूरोपीय ढंग की नकल करना चाहते हैं, बल्कि जीवन के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार स्वराज्य हमारी एक अनिवार्य नैतिक आवश्यकता है। ..... श्री तिलक के अनुसार धर्म के लिए ही और धर्म द्वारा ही हम कार्य करते हैं। ..... कोई विदेशी सत्ता और कोई विदेशी राजनीतिक विचारधारा भारत के धर्म की रक्षा और अभिवृद्धि नहीं कर सकती थी, भले ही वह कितना ही परोपकारी क्यों न हो।''

उग्रवादी और उदारवादी के राजनीतिक विचारों में काफी अन्तर था। उदारवादियों का मानना था कि ब्रिटेन और भारत के हित समान हैं और ब्रिटिश साम्राज्य भारत के हित में है। परन्तु उग्रवादियों के अनुसार भारत और ब्रिटेन के हित परस्पर विरोधी है और ब्रिटिश सरकार को सहयोग करके भारत को कभी भी पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता। विपिन चन्द्र पाल ने कहा था कि युद्ध के बिना भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। उग्रवादियों का उदारवादियों की भाँति अंग्रेजों की न्यायप्रियता में बिल्कुल विश्वास नहीं था। उदारवादी नेताओं का मानना था कि ब्रिटिश सरकार जैसे ही यह महसूस करेगी कि हमारी माँगें उचित है वह तुरन्त स्वीकार कर लेगी। परन्तु इसके विपरीत लाला लाजपत राय तथा अन्य उग्रवादी नेताओं का यह मानना था, ''व्यापारियों का यह राष्ट्र (ब्रिटेन) केवल दबाव की भाषा ही समझता है।'' तिलक ने 1907 में कहा था कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। अत: उसका अन्त करने के लिए एक प्रबल आन्दोलन करना चाहिए। स्पष्ट है कि उग्रवादी भारत में अंग्रेजी राज्य को समाप्त करके पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के पक्ष में थे।

प्र.2. उग्रवादियों की राजनीतिक विचारधारा की कार्य पद्धति का उल्लेख कीजिए।
Discuss the functioning of the political ideology of the extremists.

उत्तर

कार्य पद्धति
(Working Pattern)

लोकमान्य तिलक ने एक बार 'मेनचेस्टर गार्जियन' के प्रतिनिधि नेबिन्सन से कहा था, ''अपने उद्देश्यों के कारण नहीं वरन् उसे प्राप्त करने के उपायों के कारण हमें उग्रवादियों की उपाधि मिली है।'' उदारवादी संवैधानिक तरीकों में विश्वास करते थे और उनका विचार था कि इन साधनों को आधार बनाकर हम स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। इसलिए वे अपनी माँग मनवाने के लिए प्रार्थना पत्र, स्मृति पत्र एवं शिष्ट मण्डल आदि सरकार के पास भेजते थे। उग्रवादियों का संवैधानिक तरीकों में विश्वास नहीं था। वे याचना करके अपनी माँगें मनवाना पसन्द नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि राजनीतिक सत्ता प्रार्थना करने अथवा राजनीतिक सुधारों की भीख माँगने से नहीं मिलती। उदारवादियों के तरीकों को वे 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' के नाम से पुकारते थे। तिलक ने कहा था कि ''हमारा उद्देश्य आत्मनिर्भरता है, भिक्षावृत्ति नहीं।'' विपिनचन्द्र पाल का कहना था कि स्वराज्य स्वावलम्बन के आधार पर ही प्राप्त किया जा सकता है। वे कहा करते थे, ''हमें अपनी राष्ट्रीय शक्तियों को इस प्रकार संगठित करना चाहिए कि कोई भी शक्ति जो हमारे विरुद्ध हो, हमारे सम्मुख झुकने के लिए बाध्य हो जाए।'' पुन: उन्होंने कहा था कि, ''यदि सरकार मेरे पास आकर कहे कि स्वराज्य ले लो, तो ये उपहार के लिए धन्यवाद देते हुए कहूँगा कि मैं उस वस्तु को स्वीकार नहीं कर सकता, जिसको प्राप्त करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।''

राजनीतिक सुधार तथा भिक्षावृत्ति के विपरीत उग्रवादी विरोधी आन्दोलन के समर्थक थे। 1905 में लाला लाजपतराय ने कहा था कि भारतीयों को आत्मनिर्भर बनना चाहिए और ब्रिटिश सरकार से सहयोग की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। उग्रवादियों का मानना था कि भारतीयों को मातृभूमि के लिए कष्ट सहन करने एवं त्याग करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। उनका विचार था कि प्रार्थना लिखने, भाषण देने और प्रस्ताव पास करने से स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अत: जनता को जागृत करके राजनीतिक आन्दोलन द्वारा सरकार पर अधिक-से-अधिक दबाव डालना चाहिए। उग्रवादियों का विश्वास निष्क्रिय प्रतिरोध अथवा सत्याग्रह में था। इस निष्क्रिय प्रतिरोध के बारे में विपिन चन्द्र पाल ने कहा था, ''सरकार के कार्यों को कई बार से ठप्प किया जा सकता है। ऐसा सम्भव नहीं है कि प्रत्येक मजिस्ट्रेट कार्य करने से इन्कार कर दे तथा एक व्यक्ति के त्याग पत्र देने पर उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति न मिले। परन्तु यह भावना सारे देश में जागृत हो जाये, तो समस्त सरकारी कार्यालयों में हड़ताल की जा सकती है—हम उस भारतीय की स्थिति, जो सरकारी कर्मचारी है, ऐसा कर सकते हैं कि जैसे वह भारतीय नागरिक के सम्मान के नीचे गिर गया हो।'' लाला लाजपतराय ने निष्क्रिय प्रतिरोध के दो लक्षण बतलाए थे। प्रथम, भारतीयों के मन में से यह भावना दूर करना कि ब्रिटिश सर्वशक्तिशाली है और भारत का हित उसका मुख्य उद्देश्य है। द्वितीय, देशवासियों में स्वतन्त्रता के लिए त्याग व कष्ट सहन करने की क्षमता उत्पन्न करना।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. उग्रवादियों के बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा का उल्लेख कीजिए।
Discuss Boycott and National Education of Extremists.

उत्तर

बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा
(Bycott, Swadeshi and National Education)

जिस प्रकार, उग्रवादी के साधन प्रार्थना पत्र-स्मृति पत्र एवं शिष्ट मण्डल थे। उसी प्रकार उग्रवादियों के साधन बहिष्कार-स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा थे। बहिष्कार से तात्पर्य, विदेशी वस्तुओं, सरकारी नौकरियों, प्रतिष्ठानों तथा उपाधियों का बहिष्कार था। उग्रवादियों का विश्वास था कि बहिष्कार का प्रभाव सीधा ब्रिटिश सरकार पर पड़ेगा। लाला लाजपतराय ने कहा था—"दुकानदारों की जाति ब्रिटिश राष्ट्र को, नैतिकता के ऊपर आश्रित तर्कों की अपेक्षा व्यापार में घाटा होने की बात अधिक प्रभावित कर सकती है।" अरविन्द घोष के अनुसार, "बहिष्कार का अन्तिम उद्देश्य भारत में विदेशी साधन को पंगु बना देना था। उनकी दृष्टि से आर्थिक माल का बहिष्कार उस व्यापक बहिष्कार का एक अंग था, जिसके अनुसार हर वस्तु का बहिष्कार कर देना था, जो कि ब्रिटिश हो।" बहिष्कार के आन्दोलन में निहित विचारधारा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने पुन: लिखा है, "हम अपने मुख सरकारी भावनाओं से हटाकर साधारणजनों की कुटिया की तरफ ले जाना चाहते हैं। बहिष्कार आन्दोलन का यही मनोवैज्ञानिक, यही नैतिक और यही आध्यात्मिक महत्त्व है।" स्वदेशी से तात्पर्य स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना एवं स्वदेशी व्यवस्था की स्थापना से था। उग्रवादी स्वदेशी को ही मुक्ति का मार्ग समझते थे।

उदारवादी और उग्रवादियों के व्यक्तित्व और विचारधारा में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर था। उदारवादी पाश्चात्य शिक्षा के परिणाम थे। अत: उनका झुकाव पश्चिमी शिक्षा की ओर था। इसके विपरीत उग्रवादी भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक नवजागरण के परिणाम थे। अत: वे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के समर्थक थे, जिसमें भारतीयों का राष्ट्रीय हित निहित था। विपिन चन्द्र पाल ने कहा था, राष्ट्रीय शिक्षा वह शिक्षा है जो राष्ट्रीय रूपरेखाओं के आधार पर चलाई जाए, जो राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा नियन्त्रित हो, और जो इस प्रकार नियन्त्रित तथा संचालित की जाए कि राष्ट्रीय भाग्य की प्राप्ति का उद्देश्य बने।" इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु तिलक ने 'दक्षिण शिक्षा समाज' नामक संस्था की स्थापना की।

अन्य विशेषताएँ (Other Features)

उग्रवादियों की कुछ अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. उग्रवादी पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से घृणा करते थे और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को उससे श्रेष्ठ तथा उच्च मानते थे। उन्हें भारत के धर्म जागरण से विशेष प्रेरणा मिली थी।
2. उग्रवादियों को ब्रिटिश जाति की न्यायप्रियता, उदारता एवं सर्वशक्तिशीलता में तनिक भी विश्वास नहीं था।
3. उग्रवादी स्वराज्य के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति और परम्पराओं के अनुरूप देशवासियों को चरित्र-निर्माण करना चाहते थे।
4. उग्रवादियों का ईश्वर, राष्ट्र एवं आत्मनिर्भरता में विश्वास था।
5. भारतीयों में नई राष्ट्रीयता को जगाना और त्याग व कष्ट सहने के मार्ग को अपनाना उग्रवादियों के प्रमुख साधन थे।
6. उग्रवादियों का मानना था कि भारत और ब्रिटेन के आर्थिक हितों में विरोध है। उनके अनुसार, ब्रिटेन की आर्थिक नीति के कारण भारत दिन-ब-दिन निर्धन होता जा रहा है। अत: वे जल्दी-से-जल्दी ब्रिटेन से आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त करने के पक्ष में थे इसी हेतु उन्होंने बंगाल विभाजन के बाद स्वदेशी आन्दोलन को एक राजनीतिक शस्त्र के रूप में प्रयोग करना चाहा।

बहिष्कार एवं स्वदेशी आन्दोलनों को काफी सफलता मिली। कलकत्ता के एंग्लों इण्डियन समाचार पत्र 'दी इंग्लिश मैन' ने लिखा था, "यह बिल्कुल सत्य है कि कलकत्ता के गोदामों में कपड़ा इतना भरा हुआ है कि वह बेचा नहीं जा सकता। अनेक मारवाड़ी फर्में नष्ट हो गई है कई बड़ी-से-बड़ी यूरोपिय निर्यात दुकानों को या तो बन्द करना पड़ा है या उनका व्यापार बहुत ही मन्द गति पर आ गया है। बहिष्कार के रूप में राष्ट्र के शत्रुओं ने ब्रिटिश हितों पर कुठाराघात करने का एक अत्यन्त प्रभावशाली शस्त्र पा लिया है।" सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने बहिष्कार आन्दोलन की लोकप्रियता के बारे में लिखा है, 'परीक्षार्थियों ने विदेशी कागज की कापियाँ छूने से इन्कार कर दिया, बच्चों ने विदेशी जूते पहनने या ज्वर में विदेशी दवा लेने से इन्कार कर दिया और विवाह में मिली ऐसी विदेशी भेटें भी अस्वीकार की जाने लगी, जो भारत में भी बन सकती थी।"

TOUCH 'n PASS

इन बहिष्कार आन्दोलनों के कारण वस्त्र उद्योग को सहायता देने के लिए राष्ट्रीय कोष में रकम एकत्रित की गई। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने एक सार्वजनिक सभा में 70 हजार रुपए एकत्रित किए थे। इससे वस्त्र उद्योग को अपूर्व सफलता मिली।

प्र.4. उग्रवाद तथा उदारवाद में अन्तर बताइए।
State the difference between Extremism and Liberalism.

उत्तर

उग्रवाद तथा उदारवाद में अन्तर
(Difference between Extremism and Liberalism)

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की दो धाराएँ रही हैं—उग्रवादी एवं उदारवादी। उदारवादी दल के नेताओं में दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता एवं गोपालकृष्ण गोखले के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्रपाल एवं अरविन्द घोष जैसे लोग उदारवादियों के विपरीत 'उग्रवादी' कहे जाते हैं। इन दोनों ही धाराओं का मूल उद्देश्य भारतीय जनता का हित था। उनके लक्ष्य में बहुत कुछ समानता थी, लेकिन उनकी पूर्ति के साधनों में मूल अन्तर था इन दोनों विचारधाराओं के अन्तर को निम्न प्रकार से बतलाया जा सकता है—

1. राष्ट्रवाद की इन दोनों धाराओं का उद्देश्य एक ही था—स्वशासन की प्राप्ति, लेकिन स्वशासन से दोनों दलों का आशय भिन्न था। उदारवादी क्रमिक राजनीतिक सुधारों के पक्ष में थे। वे ब्रिटिश शासन की छत्रछाया में प्रतिनिध्यात्मिक संसदीय संस्थाओं की स्थापना करना चाहते थे। इसके विपरीत उग्रवाद किसी भी रूप में ब्रिटिश शासन को बनाए रखने के विरुद्ध थे। उनकी स्वराज्य की धारणा में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं था। वे भारतीयता पर आधारित स्वराज्य तथा ब्रिटेन से शीघ्रातिशीघ्र सम्बन्ध विच्छेद करने के पक्ष में थे।
2. उदारवादियों को अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा परोपकारिता में पूर्ण विश्वास था। उनका सोचना था कि यदि अंग्रेजों को भारतीय दृष्टिकोण समझाया जाए, तो वे उसे स्वीकार कर लेंगें। इसके विपरीत उग्रवादियों का अंग्रेजों की नीयत तथा उदारता में जरा भी विश्वास नहीं था। श्रीमती एनी बेसेन्ट के अनुसार, "उग्रवादियों को सरकार के अच्छे इरादों में तनिक भी विश्वास नहीं था, जबकि उदारवादियों की आशा का आधार शासन की निश्छलता थी।"
3. इन दोनों धाराओं के साधनों में अन्तर था। उदारवादी संवैधानिक तरीकों का प्रयोग उचित समझते थे। वे अपनी माँगे मनवाने के लिए सरकार को प्रार्थना पत्र, स्मृति-पत्र एवं शिष्ट मण्डल आदि भेजते थे। दूसरे शब्दों में, उदारवादी अपनी माँगें मनवाने के लिए सरकार से प्रार्थना और याचना करते थे। उनका मानना था कि सरकार आवश्यक सुधार अपने-आप करेगी। इसके विपरीत उग्रवादी इन तरीकों को ना पसन्द करते थे और उन्हें अपनाना अपने आत्म-सम्मान के विरुद्ध भी मानते थे। इसलिए वे इसे राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा देते थे। वे राजनीतिक भिक्षावृत्ति की अपेक्षा आत्म-निर्भरता तथा जन-साधारण के कार्य में विश्वास करते थे। उग्रवादी अपनी माँगें मनवाने के लिए स्वदेशी माल का प्रचार, विदेशी माल का बहिष्कार, स्वदेशी संस्थानों का निर्माण और विकास आदि साधनों के अपनाने में बल देते थे। उग्रवादियों का मानना था कि अंग्रेज सरकार भिक्षा देने वाली नहीं है। यदि हमें पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है, तो संघर्ष करना होगा। इसके लिए वे त्याग और कष्ट सहने को आवश्यक मानते थे।
4. उदारवादियों के विचार में ब्रिटेन तथा भारत के हितों में कोई गम्भीर विरोध नहीं था। वे ऐसा सोचते थे कि ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भी भारत का हित सम्भव है। किन्तु इसके विपरीत उग्रवादियों की धारणा थी कि ब्रिटेन तथा भारत के हित एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। अंग्रेजों का उद्देश्य अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करना है वे भारत का हित बिल्कुल नहीं चाहते। अत: भारत के विकास के लिए अंग्रेजों में सहयोग की आशा व्यर्थ और निर्मूल है। ब्रिटिश शासन भारत के विकास में कभी भी सहायक हो ही नहीं सकती ऐसी उसकी मान्यता थी।
5. उदारवादी पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति से प्रभावित थे, इसलिए वे पश्चिमीकरण के प्रबल समर्थक थे। इसके विपरीत उग्रवादी प्राचीन हिन्दू धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति तथा उसके आधार पर विकसित हिन्दू राष्ट्रीयता के पोषक थे। उदारवादियों की प्रेरणा पश्चिम से मिली थी जबकि उग्रवादियों को पूर्व से।
6. उदारवादी 'आरामकुर्सी' की राजनीति में विश्वास रखते थे। गोखले जैसे नेता को छोड़कर सामान्यत: वे देश हित के लिए त्याग और कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं थे। इसके विपरीत उग्रवादी देश हित के लिए त्याग और कष्ट सहने को आवश्यक मानते थे। अरबिन्द घोष ने कहा था, "हमारा वास्तविक शत्रु कोई बाहरी शत्रु नहीं, बल्कि हमारी अपनी शिथिलता और कायरता है। एक अधीन राष्ट्र स्वतन्त्रता द्वारा उन्नति के द्वारा खोलता है और स्वतन्त्रता के लिए बलिदान

TOUCH 'n PASS

की आवश्यकता है। राजनीति की आराम कुर्सी पर बैठकर विदेशी सत्ता नहीं दिलाई जा सकती। भारत अपने पराक्रम और शक्ति से ही विदेशी शासन का विरोध कर सकता है।''

उदारवादी और उग्रवादी राष्ट्रीय आन्दोलन में अन्तर बताते हुए लाला लाजपत राय ने लिखा है, ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्मदाताओं ने अपना आन्दोलन शासन की प्रेरणा से और उच्च पदों की छाया में या उच्च पद ग्रहण करने की आकांक्षा से प्रारम्भ किया। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के संचालकों ने अपना प्रचार शासन और शासकीय कृपा के बहिष्कार से आरम्भ किया। पूर्ववर्ती नेता ब्रिटिश शासन और ब्रिटिश राष्ट्र से अपील करते थे, जबकि ये उग्रवादी नेता अपने देशवासियों और अपने ईश्वर से अपील करते थे।''

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय राजनीति में उग्रवाद के उदय के कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the causes of emergence of Extremism in Indian Polity.

उत्तर

उग्रवाद के उदय के कारण
(Reasons for Emergence of Extremism)

भारतीय राजनीति में उग्रवाद का उदय एक आकस्मिक तथा निराधार घटना न थी। यह अनेक, कारणों, परिस्थितियों और घटनाओं का एक स्वाभाविक परिणाम था। उग्रवाद के उदय के कारणों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—

1. **सरकार द्वारा कांग्रेस की माँगों की उपेक्षा**—उदारवादी युग के नेता अंग्रेजों की उदारता एवं न्यायप्रियता में विश्वास रखते थे। वे अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति रखते थे और प्रशासन में क्रमिक सुधारों के लिए प्रार्थना पत्रों, स्मृति पत्रों और प्रतिनिधि मण्डलों के माध्यम से अंग्रेजी सरकार के प्रति अपनी माँगे रखते थे। परन्तु कई वर्षों तक तो ब्रिटिश सरकार ने उनकी माँगों की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इसके प्रति सरकार ने कांग्रेस के कार्यों में विघ्न डालना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी उदारवादी नेता कांग्रेस की माँगें मनवाने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहे। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने 1892 ई० में भारतीय परिषद् अधिनियम पारित किया। इसके द्वारा भारतीयों की सदस्य संख्या में वृद्धि की गई। परन्तु प्रत्यक्ष निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करने से भारतीयों को इस अधिनियम से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। यह अधिनियम भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सका। यहाँ तक कि उदारवादी नेता भी इससे सन्तुष्ट नहीं थे। फिर भी वे अपने प्रयत्न जारी रखने के पक्ष में थे। इन प्रयोगों के बारे में लाला लाजपतराय ने कहा, ''शिकायतें दूर करने और रियायतें प्राप्त करने के बीच वर्षों के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप उन्हें रोटी के स्थान पर पत्थर ही प्राप्त हुए थे।''

   ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस की अनेक माँगों के प्रति उपेक्षापूर्णनीति अपनाने के कारण लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय तथा विपिनचन्द्र पाल आदि कांग्रेस के युवा नेताओं को अन्दर से आन्दोलित कर दिया। इन युवा नेताओं का राजनीतिक भिक्षावृत्ति और संवैधानिक साधनों में कोई विश्वास नहीं था। उनको यह विश्वास हो गया कि संवैधानिक साधनों से उनकी माँगें स्वीकृत नहीं हो सकती है। अत: उन्होंने सरकार के विरुद्ध कठोर कदम उठाना आवश्यक समझा, ताकि सरकार उनकी माँगें मानने के लिए विवश हो जाए। बाल गंगाधर तिलक का विचार, ''कांग्रेस की नरमी और राजभक्ति स्वतन्त्रता प्राप्त करने योग्य नहीं है। केवल प्रस्ताव पास करने और अंग्रेजों के सामने हाथ पसारने से राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होंगें, बल्कि उनके विरुद्ध युद्ध करना कठिन होगा।'' लाला लाजपत राय ने भी कहा, ''भारतीयों को अब भिखारी बने रहने में ही सन्तोष नहीं करना चाहिए और न ही उन्हें अंग्रेजों की कृपा पाने में गिड़गिड़ाना चाहिए।'' युवा नेताओं का यह मानना था कि त्याग और बलिदान से ही हमारी माँगें स्वीकृत होंगी।
2. **हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान**—कांग्रेस के प्राय: सभी प्रारम्भिक नेता पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि पाश्चात्य धर्म, साहित्य, राजनीतिक संस्थाएँ, भाषा और संस्कृति भारतीयों की तुलना में श्रेष्ठ है। इन नेताओं का यह मानना है कि ब्रिटिश राज्य के कारण ही भारत की अनेक क्षेत्रों से उन्नति हुई है। अत: वे यह सोचते थे कि ब्रिटिश शासन भारत के हित में है और ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग किया जाना चाहिए, ताकि भारत में इंग्लैण्ड के पथ-प्रदर्शन में निरन्तर प्रगति की ओर बढ़ता रहे। दूसरी ओर भारत में ऐसे भी लोग थे जिन्होंने भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति से श्रेष्ठ बतलाया। उनका विचार था कि विदेशी शासन किसी भी रूप में भारत

TOUCH 'n PASS

के हित में नहीं हो सकता। ऐसे लोगों में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय एवं अरविन्द घोष आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने 1893 ई० में शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन में हिन्दू धर्म की महानता सिद्धकर विश्वभर के प्रतिनिधियों को आश्चर्यचकित कर दिया था। इससे हिन्दुओं का अपने धर्म तथा संस्कृति में फिर से विश्वास जागृत हुआ, और वे उस पर गौरव करने लगे। उन्होंने भारतवासियों से कहा कि अब हमें दासता से मुक्त होकर खुद अपना मालिक बनना है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों में राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का प्रयास किया। यही अवस्था अरविन्द घोष की थी उन्होंने कहा, "स्वतन्त्रता हमारे जीवन का उद्देश्य है और हिन्दू धर्म ही हमारे इस उद्देश्य की पूर्ति करेगा..... राष्ट्रीयता एक धर्म है और वह ईश्वर की देन है।" श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने कहा, "सारी हिन्दू प्रणाली पश्चिमी सभ्यता से बढ़कर है।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर हिन्दुओं को संगठित होने की एक नई प्रेरणा दी। तिलक ने पश्चिमी चीजों का बहिष्कार किया। उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए हिन्दू उत्सवों और हिन्दू संगठनों पर बल दिया था। तिलक ने 1907 में अपने कलकत्ता भाषण में कहा, "विदेशी शासन भारत के लिए एक अभिशाप है और नौकरशाही को दबाने के लिए एक प्रभावशाली आन्दोलन करना होगा।" तिलक ने गीता रहस्य में कर्मयोग की महत्ता प्रतिपादित की। लाला लाजपतराय ने पश्चिमी सभ्यता से ओत-प्रोत भारतीयों की घोर निन्दा की और उन्हें अपने देश के अतीत गौरव को अपनाने का सन्देश दिया। विपिन चन्द्रपाल ने बंगाल में काली और दुर्गा के नाम से जनसाधारण में शक्ति और साहस का संचार किया। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'आनन्द मठ' द्वारा लोगों को 'वन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गान दिया। इन नेताओं ने इस बात पर बल दिया कि भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही सांस्कृतिक धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में उन्नति कर सकेगा। इससे जनता में राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ।

3. **अकाल प्लेग एवं प्रकोप**—1876 से 1900 ई० तक देश के विभिन्न भागों में 18 बार अकाल पड़े। इसमें सबसे अधिक भीषण 1896-97 ई० का अकाल था जो बम्बई में पड़ा। यह अकाल 10,000 वर्ग मील में फैला हुआ था और इसमें लगभग दो करोड़ लोग मृत्यु का ग्रास बने। इतने भयंकर अकाल को दूर करने के लिए सरकार ने धन के अभाव का बहाना बनाकर बड़ी धीमी कार्यवाई की। इसके विपरीत दूसरी ओर भारत सरकार रानी विक्टोरियाँ की जयन्ती उत्सव पर पानी की तरह पैसा खर्चा कर रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बहुत अधिक असन्तोष उत्पन्न हो गया।

अभी अकाल का घाव भरा भी नहीं था कि 1897-98 में बम्बई प्रेसीडेन्सी में प्लेग फैल गया। पूना के आसपास इस महामारी से सरकारी आँकड़ों के अनुसार एक लाख 73 हजार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। सरकार ने प्लेग को रोकने और जनता को राहत पहुँचाने के लिए कई विशेष कदम नहीं उठाए। सरकार ने जो भी कदम उठाए थे, उनके प्रति भी जनता में गहरा क्षोभ तथा असन्तोष व्याप्त था। पूना में प्लेग की जाँच के बहाने ब्रिटिश सैनिक भारतीयों के घरों में घुस जाते थे और स्त्रियों की जाँच के बहाने उनके साथ अत्यन्त ही अशिष्ट एवं अमानवीय व्यवहार करते थे। रायगोपाल ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "प्लेग कमिश्नर रैण्ड के पीछे सेना और पुलिस चलती थी और वे बीमारी वाले मकानों को जबरदस्ती गिरा देते थे और मकानों के निवासियों को जबरदस्ती कैम्पों में भेज दिया जाता था। उनके स्थान पर प्लेग के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए बिस्तर और कपड़े जला दिए गए। लेकिन उन्हें कीटाणु रहित वस्त्र नहीं दिए गये। रैण्ड और उनके सैनिक मकान के हर हिस्से में यहाँ तक कि रसोई घर के अन्दर और स्त्रियों के कमरों में भी घुस जाते थे और मनमाना व्यवहार किया जाता था। सारा काम इस ढंग का था, जो जैसे दुश्मन द्वारा जीते गए किसी शहर को फूँका जा रहा है।"

ऐसे में तिलक ने अपने समाचार पत्र 'केसरी' में सरकार की कटु आलोचना करते हुए अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का विवरण दिया। इससे प्रभावित होकर दो नवयुवकों (दामोदर तथा बालकृष्ण चापेकर) ने 1897 ई० में दो प्लेग अधिकारियों रैण्ड तथा उनके सहयोगी लेफ्टिनेन्ट आमर्स्ट को गोली से उड़ा दिया। सरकार इस घटना से तिलमिला उठी। तिलक को 'केसरी' से सरकार विरोधी टिप्पणियाँ करने के आरोप में 18 माह की सख्त कैद की सजा दी गई। कई अन्य राष्ट्रवादियों को प्राण दण्ड तथा देश से निर्वासित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त पूना में दण्ड देने वाली पुलिस ठहरा दी गई। इससे जनता में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लहर दौड़ पड़ीं। इस सम्बन्ध में सुरेन्द्र नाथ ने कहा, "हम पूना में

TOUCH 'n PASS

दण्ड देने वाली पुलिस को ठहराना गलत समझते हैं। तिलक की कैद पर सारा राष्ट्र रो रहा है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त करना हमारा बहुमूल्य अधिकार है और इसके लिए हम सब संवैधानिक उपायों से यत्न करेंगें।''

इन घटनाओं के प्रति उत्पन्न घृणा की अभिव्यक्ति करते हुए 'हिन्दू' ने लिखा, ''40 वर्षों से ऐसी कोई घटना नहीं घटी थी, जिसने जनता में उसकी असमर्थता तथा राजनीतिक गुलामी के प्रति इतनी अधिक चेतना पैदा की हो, जितनी कि बम्बई सरकार की करतूतों ने।'' श्रीमती ऐनीबेसेण्ट के अनुसार इस घटनाओं से भारत में उग्र राष्ट्रवाद का विकास हुआ। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, ''दामोदर के हाथों इन दो अधिकारियों का वध इस तथ्य का सूचक था कि राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवाद का उदय हो गया है।''

4. **भारत का तीव्रगति के आर्थिक शोषण**—लार्ड बेकन का यह कथन 'अधिक दरिद्रता और आर्थिक असंतोष क्रान्ति को जन्म देता है,' भारत में उग्रवाद के उदय पर पूर्णरूप से लागू होता है अंग्रेज आरम्भ से ही भारत का तीव्र गति से आर्थिक शोषण कर रहे थे। वे भारत से कच्चा माल ले जाकर अपने कारखानों में उनसे अनेक वस्तुएँ बनाते थे और उनको लाकर भारत में बेच देते थे। इंग्लैण्ड का मशीनों द्वारा निर्मित माल कुटीर उद्योग धन्धों के निर्मित माल से सस्ता होता था। परिणामस्वरूप भारतीय बाजार यूरोपियन माल से भर गए और कुटीर उद्योग-धन्धों का पतन हो जाने से उनमें कार्यरत व्यक्ति बेरोजगार हो गए। इससे देश में बेरोजगारी की समस्या उठ खड़ी हुई। अंग्रेजों की इस नीति के कारण भारतीय जनता दिन-प्रतिदिन निर्धन होती गई। सरकार की इस नीति के विरुद्ध भारतीयों में घोर असन्तोष फैला। परिणामस्वरूप विदेशी माल का बहिष्कार होना शुरू हो गया। इस समय दादाभाई नौरोजी रमेशचन्द्र दत्त और विलियम डिग्वी आदि नेताओं ने अपने भाषणों तथा पुस्तकों में ब्रिटिश सरकार की इस नीति की आलोचना करते हुए कहा था कि भारत की निर्धनता का मूल कारण विदेशी शासन है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने इस सम्बन्ध में लिखा है, ''उदारवादी विचारों के होते हुए भी उन्होंने हमारे राजनीतिक और आर्थिक राष्ट्रीय विचारों को ठोस आधार प्रदान किया।''

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिक्षण संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हुई। परन्तु सरकार द्वारा शिक्षित भारतीयों को उच्च पदों से वंचित रखने की नीति का अनुसरण किया गया। इसके शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती रही। परिणामस्वरूप उनमें असाधारण निराशा तथा असन्तोष फैला, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत अधिक प्रभावित किया। ए०आर० देसाई लिखते हैं, ''भारत में उग्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण शिक्षित भारतीयों में बेकारी से उत्पन्न राजनीतिक असन्तोष था।''

5. **उपनिवेशों में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार**—ब्रिटिश उपनिवेशों में रहने वाले भारतीयों के साथ बड़ा ही अन्यायपूर्ण, अभद्र एवं असभ्य व्यवहार किया जाता था। रंगभेद की नीति के कारण अंग्रेज भारतीयों को 'काला आदमी' कहते थे और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसके अतिरिक्त उनसे दुर्व्यवहार भी करते थे। विशेषरूप से दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को एक नीच जाति समझा जाता था। उन पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगे हुए थे। उन्हें पगडण्डी पर चलने की आज्ञा नहीं थी और न ही उन्हें प्रथम श्रेणी में यात्रा करने का अधिकार प्राप्त था। वे अपने नाम पर भूमि नहीं खरीद सकते थे। उन्हें यूरोपियनों के मकानों से दूर मकान बनाकर रहना पड़ता था। भारतीय बच्चों को कुछ विशेष स्कूलों में प्रवेश नहीं दिया जाता था। वे रात्रि के 9 बजे के बाद घर से बाहर नहीं निकल सकते थे। इन सबके अतिरिक्त 1907 ई० में ट्रासंवाल की सरकार ने 'रजिस्ट्रेशन एक्ट' पारित किया, जिसके अनुसार भारतीयों को अपराधियों की तरह उँगलियों की छाप देकर अपना पंजीयन कराना आवश्यक कर दिया गया था। इस समय महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका में वकालत करने गए, वहाँ उन्होंने सरकार की रंगभेद नीति के विरुद्ध सत्याग्रह शुरु कर दिया। 1903 ई० में दक्षिण अफ्रीका से लौटकर डॉ० बी० एस० मुन्जे के दुखपूर्वक कहा, ''हमारे शासक इस बात पर विश्वास नहीं करते कि हम भी मनुष्य हैं।'' अपने देशवासियों की इस दुर्दशा के कारण भारतीयों में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध घृणा बढ़ीं और उन्होंने यह सोचा कि भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार भारत की पराधीनता के कारण किया जा रहा है। उन अत्याचारों से मुक्ति का एकमात्र उपाय भारत को स्वतन्त्र कराना है। इस भावना से उग्रवाद की उत्पत्ति तथा विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

6. **जातीय कटुता का चरमोत्कर्ष**—अंग्रेजों की भारतीयों के प्रति जातीय कटुता की भावना भी उग्र राष्ट्रीयता के जन्म का एक अन्य कारण था। इस समय भारतीयों को अपमानित करना अंग्रेजों के जीवन का एक अंग बन गया था। फिर भी उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा कोई दण्ड नहीं दिया जाता। यहाँ तक कि कोई अंग्रेज किसी भारतीय की हत्या भी कर देता, तो उसे नाममात्र का दण्ड दिया जाता था। लॉर्ड रोनाल्डशे उस समय की दो घटनाओं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

TOUCH 'n' PASS

प्रथम, ब्रिटिश सैनिकों ने एक भारतीय स्त्री से बलात्कार किया, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु उस सैनिक को कोई दण्ड नहीं दिया गया। द्वितीय, 1902 में सियालकोट में स्थित घुड़सवार दल के सैनिकों ने एक भारतीय रसोईये को उनके लिए एक देशी स्त्री का प्रबन्ध करने को कहा। जब उसने इस कार्य को करने से इन्कार कर दिया तो सैनिकों ने उसे मार डाला। लॉर्ड कर्जन ने जातीय कटुता की नीति को और भी प्रोत्साहन दिया। उसने अपने भाषण में कहा था कि पश्चिमी लोगों में सभ्यता और पूर्वी लोगों में मक्कारी पाई जाती है।

इन अपराधों और हत्याओं से दुर्भाग्यपूर्ण बात यह भी थी कि आंग्ल भारतीय समाचार पत्र खुले रूप से अंग्रेजों को भारतीयों से दुर्व्यवहार करने की भावना को प्रोत्साहन देते थे। सरकार भी उन्हें दण्ड देने के स्थान पर प्रोत्साहन देती थी। लाहौर से प्रकाशित आंग्ल भारतीय दैनिक 'दी सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' तो भारतीयों को जी भरकर गालियाँ देता था और शिक्षित भारतीयों के लिए बी०ए० वर्ण संकर, बी०ए० गुलाम, घुड़सवार, भिखारी, दास जाति एवं कलंकी जाति आदि अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया जाता था। अंग्रेजों की जातीय कटुता की नीति ने स्वाभिमानी भारतीयों में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न की और वे उग्रवादी बन गए।

7. **विदेशी घटनाओं का प्रभाव**—इस काल में विदेशों में कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिन्होंने भारतीयों को बहुत अधिक प्रभावित किया। इन घटनाओं के परिणामस्वरूप भारतीयों में उत्साह और साहस की भावना का संचार हुआ। इससे भारतीयों में राष्ट्रीयता की उग्र भावनाएँ उत्पन्न हुई। कारण, भारतीय अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करवाने के लिए बेचैन हो उठे। सर हेनरी काटन ने इन घटनाओं के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है, "आयरलैण्ड के प्रश्न को क्रमिक निराकरण में आशा की किरणें दिखलाई पड़ी। इन सबसे बढ़कर जापान था, उसकी जनता के चरित्र ने बहुत प्रेरणा दी और इस बात का आदर्श प्रस्तुत किया की किसी देश की जनता की देशभक्ति पूर्ण भावना क्या कर सकती है।" भारत पर निम्नलिखित विदेशी घटनाओं का विशेष प्रभाव पड़ा—
   (i) मिस्र, फ्रांस व तुर्की की जनता को स्वतन्त्रता संग्राम में सफलता प्राप्त हुई थी। इससे भारतीयों को काफी प्रोत्साहन मिला।
   (ii) 1896 में अफ्रीका के एक छोटे से राष्ट्र अबीसीनिया ने इटली को पराजित कर दिया। गैरेट के शब्दों में, "इटली की हार ने 1897 में तिलक के आन्दोलन को बड़ा बल प्रदान किया।"
   (iii) 1905 में एशिया के एक छोटे से देश जापान ने एक विशाल देश रूस को पराजित कर दिया। इस घटना से भारतीयों में यह भावना उत्पन्न हुई कि देशभक्ति, बलिदान तथा राष्ट्रीयता की भावना को अपने जीवन में उतार कर ही वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्याय से छुटकारा पा सकते हैं।
   (iv) इसी समय मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा ठाकुर जैसे राष्ट्रवादियों के प्रयासों से इटली का एकीकरण हुआ। इसका भी भारतीयों पर विशेष प्रभाव पड़ा। श्री गुरमुख निहाल सिंह के शब्दों में, "मैजिनी के जीवन और कृतियों पर भारतीय भाषाओं में पुस्तकें लिखी गई, अनुवाद किए गए और भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने अपने देश वासियों से स्वदेश प्रेम जाग्रत करने के लिए इटली के उदाहरण से काम लिया।"

   विदेशों में घटित इन घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत अधिक प्रभावित किया। इसके बाद भारतीयों को यह विश्वास हो गया कि यूरोपीय शक्तियाँ अजेय नहीं हैं और उनको भी पराजित किया जा सकता है। इससे भारतीयों में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ पड़ी। अब भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उग्र नीति का निश्चय कर लिया।

8. **पश्चिम के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का प्रभाव**—पश्चिम के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों ने उग्रवादी आन्दोलन की उत्पत्ति तथा विकास में बहुमूल्य सहायता दी। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली आदि देशों में स्वतन्त्रता संग्रामों से यह स्पष्ट हो गया कि वैधानिक साधनों द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। शक्ति, विद्रोह और क्रान्ति का मार्ग स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए आवश्यक है। आयरलैण्ड का आदर्श भारतीयों के समक्ष था, जहाँ के देशवासियों ने अपने को स्वतन्त्र कराने के लिए रक्तपात का आश्रय लिया था। सारांश यह है कि भारतीयों को यह विश्वास हो गया था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए शक्ति और क्रान्तिकारी मार्ग अपनाना ही होगा। इससे उग्रवादी विचारधारा को विशेष बल मिला।

9. **बाल, लाल और पाल का योग्य नेतृत्व**—भारत में उग्र राष्ट्रीयता के उदय का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय एवं विपिन चन्द्रपाल का योग्य नेतृत्व था। मातृभूमि के अनन्य भक्त बाल गंगाधर

TOUCH 'n' PASS

तिलक विदेशी नौकरशाही के कट्टर शत्रु थे। वे कहा करते थे, "अच्छी विदेशी सरकार की अपेक्षा हीन स्वदेशी सरकार श्रेष्ठ है एवं स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और इसे मैं प्राप्त करके रहूँगा।"

तिलक उदारवादियों की भाँति ब्रिटिश शासन को भारत के लिए उपयोगी नहीं मानते थे और न ही राजनीतिक भिक्षावृत्ति की नीति में उनका विश्वास था। इसके विपरीत वे विदेशी शासन को भारत की समस्त कठिनाईयों का मूल कारण मानते थे और स्वदेशी राज्य को उसकी अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ मानते थे। वे विदेशी राज्य को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसकी पुष्टि उनके 15 जून, 1897 ई० के उस लेख से होती है जिसमें उन्होंने लिखा था, "यदि हमारे घर में चोर आए और हमारे में उन्हें बाहर निकालने का सामर्थ्य नहीं, तो हमें बिना किसी झिझक के उन्हें घर के अन्दर बन्द करके जला देना चाहिए।" तिलक का मानना था कि राजनीतिक भिक्षावृत्ति से स्वाधीनता का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। अत: हमें उसके स्थान पर जन-जागृति तथा जन-आन्दोलन के मार्ग को अपनाना चाहिए। उनका यह भी विश्वास था कि भारतीयों को सरकार के अत्याचारों का सामना शक्ति तथा उत्साह से करना चाहिए और मातृभूमि के लिए दण्ड भुगतने में भी गौरव का अनुभव करना चाहिए। इस प्रकार तिलक ने अपने सशक्त भाषणों एवं लोकप्रिय नारों से भारतीयों में निडरता, वीरता, देशभक्ति तथा आत्मत्याग की भावनाओं को जागृत किया। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सरकार से संघर्ष करना सिखाया इसके अतिरिक्त उन्होंने शिवाजी उत्सव व गणपति उत्सव आदि के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। डॉ० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, "उनके उपदेश, संगठन, पद्धति, विदेशी विरोधी प्रचार और व्यायामशालाओं ने विद्रोह के ऐसे बीज बोए, जिनके अत्यधिक व्यापक परिणाम हुए।" वे आगे लिखते हैं, "लोकमान्य तिलक ने अपनी शिक्षाओं, कार्यविधि तथा प्रचार के द्वारा भारतीय जनता की सरकार के प्रति विरोध भावना को जागृत किया और उन्हें विदेशी राज्य का शत्रु बना दिया।" तिलक ने भारतीयों को अपनी मातृभूमि के लिए मर मिटने की प्रेरणा दी।

इस दिशा में लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्र पाल और अरविन्द घोष ने तिलक के योग्य सहयोगियों के रूप में उग्रवादी आन्दोलन की महान सेवाएँ की। उन्होंने कांग्रेस की पुरानी भिक्षावृत्ति की नीति का विरोध किया और भारतीयों को उसके स्थान पर आत्मनिर्भरता की नीति का उपदेश दिया, ताकि वे दृढ़ता से सरकार का विरोध कर सके। लाला लाजपतराय ने कहा, "अंग्रेज भिखारी से अधिक घृणा करते हैं और मैं सोचता हूँ भिखारी घृणा के पात्र हैं भी। अत: हमारा कर्त्तव्य है कि हम यह सिद्ध कर दें कि हम भिखारी नहीं हैं।" बिपिन चन्द्रपाल ने बंगाल की जनता में जागृति उत्पन्न करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्हें बंगाल में 'तिलक का सेनापति' कहा जाता था। इन प्रयासों के कारण पंजाब और बंगाल राष्ट्रीय आन्दोलन की इस नई धारा के केन्द्र बन गए और प्रान्तों के नवयुवकों ने इस आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन जन-आन्दोलन में परिवर्तित हो गया।

10. **कर्जन के पूर्वगामी शासकों की अदूरदर्शिता**—उग्रवाद के विचार में राजनीतिक कारणों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा। ब्रिटिश सरकार तथा भारत स्थित उनके वायसरायों की प्रतिक्रियावादी नीतियों ने भारतीयों में विद्रोह की भावना को जगाया। सन् 1892 से 1904 ई० तक इंग्लैण्ड के राजनीति तथा शासन पर उग्र साम्राज्यवादी अनुदार दलों का अधिकार था। यह दल भारतीयों को राजनीतिक अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। इस काल में भारत में तीन वायसराय आए—(i) **लार्ड लैन्सडाउन** (1888-1894) (ii) **लॉर्ड एल्गिन द्वितीय** (1894-99) (iii) **लॉर्ड कर्जन** (1899-1905)। ये तीनों प्रतिक्रियावादी नीति के समर्थक थे। उनकी भारतीयों की माँगों के प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं थी इसलिए उन्होंने कठोर प्रतिक्रियावादी नीति अपनाई। लॉर्ड लैन्सडाउन की नीति का विरोध करते हुए गोखले जैसे उदारवादी नेता ने 1892 ई० में कहा था, "सरकार शिक्षा, स्थानीय स्वशासन तथा राजकीय सेवाओं में जिस प्रतिगामी नीति का अनुसरण कर रही है, उसके परिणाम सरकार के लिए भयानक सिद्ध हो सकते हैं।"

लॉर्ड एल्गिन के समय सरकार में भयंकर अकाल पड़ा। तब उसने जनता को राहत पहुँचाने के लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाए तथा दूसरी ओर दिल्ली में एक शानदार समारोह आयोजित किया गया, जिसमें लाखों रुपये खर्च किए गए। इसलिए लाला मोहन घोष ने 1903 ई० में मद्रास कांग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषण में सरकार की तीव्र आलोचना करते हुए कहा था, "जितने लाख रुपया दिल्ली दरबार में खर्च किया गया, यदि उससे आधा भी अकाल को दूर करने के लिए खर्च किया जाता, तो लाखों नर-नारियों की जान बच जाती। क्या इंग्लैण्ड, फ्रांस अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका ये सरकार इतना पैसा ऐसे दरबारों पर नष्ट करती, जबकि देश में लाखों व्यक्ति भूख से मर रहे हों।" एल्गिन की नीति से भारतीयों में असन्तोष

TOUCH 'n' PASS

की भावना का तीव्र गति से विकास हुआ। लॉर्ड एल्गिन के शासन के अन्तर्गत 1897 में बाल गंगाधर तिलक पर राजद्रोह का अपराध लगाकर 18 महीने के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इसी प्रकार नाटूबन्धू जो दक्षिण के प्रभावशाली जमींदार थे, पर एल्गिन को यह सन्देह हो गया था कि वे क्रान्तिकारी संस्थाओं को सक्रिय सहयोग देते हैं। इसी आधार पर उसकी सम्पत्ति जब्त करके उसको देश निकाला दे दिया गया। लॉर्ड एल्गिन ने रिटायर होते समय शिमला यूनाईटेड सर्विसेज क्लब में भाषण देते हुए मूर्खतापूर्ण बात कही, "भारत को तलवार के बल पर विजित किया गया और तलवार के बल पर ही इसकी रक्षा की जाएगी।" इन वायसरायों की प्रतिक्रियावादी नीति के परिणामस्वरूप जनता का अंग्रेजों की न्यायप्रियता से विश्वास उठ गया और उनके मन में अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति समाप्त हो गई। रमेशचन्द्र दत्त के अनुसार, "अंग्रेजों की न्याय भावना से जनता का विश्वास ऐसा हिल गया था, जैसाकि पहले कभी नहीं।"

प्र.2. उग्रवाद के द्वितीय चरण का वर्णन कीजिए।
Discuss the Second phase of Extremism.

उत्तर

द्वितीय चरण (1905 ई० 1919 तक)
[Phase II (1905 to 1919 AD)]

उग्रवाद का उदय (Rise of Extremism)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वितीय चरण को उग्रवादी राष्ट्रीयता का युग (गरम दल) कहा जाता है। इसका प्रारम्भ लगभग 1905 ई० से माना जाता है। 19वीं शताब्दी के अन्त में एवं 20वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में कुछ इस प्रकार की घटनाएँ हुई कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद में अटूट विश्वास रखने वाले उग्रवादी नेताओं का विश्वास कम होने लगा तब कांग्रेस में एक नए तरुण का उदय हुआ जो प्रार्थना के बदले संघर्ष का मार्ग अपनाने का इच्छुक था। उग्रवादी राष्ट्रीयता के प्रतिपादक बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल (बाल-लाल-पाल) थे।

उग्रदल का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल एवं लाला लाजपतराय (लाल, पाल, बाल) ने किया। इन लोगों ने कांग्रेस की अब तक की चली आ रही नीतियों की कटु आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस में दो गुट (नरम दल व गरम दल) बन गए। इन दोनों गुटों में 1905 ई० के बनारस अधिवेशन में खुला संघर्ष हुआ। इस अधिवेशन में उग्रवादियों के द्वारा राजनीतिक सुधारों की माँग की गई एवं कांग्रेस की राजनीतिक भिक्षावृत्ति पर गहरा प्रहार करके उसे समाप्त करने की चेष्टा की गई। 1906 ई० के कलकत्ता अधिवेशन में दोनों गुटों में खाई और अधिक गहरी हो गई। दादाभाई नौरोजी को इंग्लैंड से बुलाकर इस अधिवेशन का सभापति बनाया गया। कांग्रेस ने इसी अधिवेशन में 'स्वराज्य' अपना लक्ष्य घोषित किया साथ ही स्वराज्य, स्वदेशी आन्दोलन, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थन में प्रस्ताव पास किए। सूरत अधिवेशन (1907) में उदारवादियों एवं उग्रवादियों में सभापति के पद को लेकर गहरा मतभेद हो गया एवं उग्रवादी गुट कांग्रेस से बाहर हो गया। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने सूरत की इस फूट को कांग्रेस के इतिहास की सबसे शोकपूर्ण घटना कहा है। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में एवं बंगाल में विपिन चन्द्र पाल के नेतृत्व में उग्रवादी आन्दोलन का विकास हुआ। भारत के लोगों में आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता की भावना जाग्रत करने के लिए महाराष्ट्र में 'गणपति उत्सव' एवं 'शिवाजी उत्सव' आरम्भ किए गए एवं विपिन चन्द्र पाल ने बंगाल में काली पूजा एवं दुर्गा पूजा आरम्भ की। पुनरुत्थानवादी नेताओं ने बंगाल में उग्रवादी विचारधारा का प्रचार धर्म की आड़ में किया। पूरे देश में हिन्दू पुनरुत्थानवाद की लहर दौड़ गई।

उग्रवादियों के राजनीतिक विचार एवं उद्देश्य (Political Ideas and Objectives of Extremists)

उग्र राष्ट्रवादी नीतियाँ उदारवादी नीतियों से भिन्न थी। उग्रवादी राष्ट्रीयता में तीन नेता (लाल, बाल, पाल) कुछ समान आदर्शों से प्रेरित थे। वे भारत एवं ब्रिटेन के सम्बन्धों को एक-दूसरे का पूरक न मानकर विरोधी मानते थे। इनके अनुसार ब्रिटिश सरकार के साथ कितना भी सहयोग किया जाए, उसके द्वारा भारत स्वयं के राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। उग्रवादियों ने स्वयं का उद्देश्य 'पूर्ण स्वराज्य' की प्राप्ति घोषित किया।

लोकमान्य तिलक ने **"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा।"** को स्वयं का उद्देश्य बताया। तिलक के अनुसार, भारत को आन्तरिक एवं बाह्य विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो। **अरविन्द घोष** के अनुसार, **"स्वतन्त्रता हमारे जीवन का लक्ष्य है और हिन्दू धर्म के माध्यम से ही इस आकांक्षा की पूर्ति हो सकती है।"** अत: उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि उदारपंथी से उग्रपंथी लोगों के राजनीतिक विचार एवं उद्देश्य बिल्कुल भिन्न थे।

TOUCH 'n' PASS

उग्रवादी नीतियाँ (Policies of Extremists)

उग्रवादी नेता सरकार के सुधारों से असंतुष्ट थे। वे सरकार एवं उदारवादियों के विचारों का विरोध करते थे। उनके कार्यक्रम में बहिष्कार तथा स्वदेशी एवं राष्ट्रीय शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया था। उग्रवादी लोगों के अनुसार स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे प्राप्त करना कांग्रेस का लक्ष्य है। उग्रवादी स्वराज्य को वास्तविक/सार्थक स्वतंत्रता मानते थे। उग्रवादी नेता राष्ट्रीय आन्दोलन का सामाजिक आधार विस्तृत बनाना चाहते थे। उन्हीं के प्रयासों का यह परिणाम रहा कि निम्न मध्यम वर्ग के लोग राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश कर पाए।

उग्रवादी नेताओं ने विभिन्न समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया। जिसके द्वारा जनसाधारण को राष्ट्रीयता और राजनीति का पाठ पढ़ाया जा सके। इस प्रकार उग्रवाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण इकाई बन गया। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल आदि नेताओं ने सन् 1906–1919 ई० तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया।

उग्रवादियों के कार्यक्रम (Programmes of Extremists)

उग्रवादियों के प्रमुख कार्यक्रम निम्नलिखित हैं—

1. **बहिष्कार आन्दोलन**—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विदेशी सरकार का बहिष्कार, सरकारी नौकरियाँ एवं ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार शामिल था। इस प्रकार के आन्दोलन से उन्हें कुछ स्तर तक सफलता प्राप्त हुई। इसमें मुख्यत: सरकार के साथ सहयोग न करने पर बल दिया गया।
2. **राष्ट्रीय शिक्षा**—राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम में स्वयं की शिक्षा व्यवस्था द्वारा विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान करना एवं उनमें राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करना शामिल था। इसके द्वारा अंग्रेजों द्वारा बनायी शिक्षा व्यवस्था का बहिष्कार किया गया। इस आन्दोलन की सफलता हेतु तिलक ने दक्षिण समाज की स्थापना तथा मदन मोहन मालवीय ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना प्रस्तुत की।
3. **स्वदेशी आन्दोलन**—स्वदेशी से तात्पर्य विदेशी वस्तुओं एवं मूल्यों का त्यागकर भारतीय वस्तुओं एवं मूल्यों को अपनाने से है। इससे ब्रिटिश प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होंगे और भारतीय उद्योग-धन्धों का विकास होगा। तिलक के अनुसार, जनता में आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान और त्याग की भावना जाग्रत करने के लिए स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाना आवश्यक है। इस आन्दोलन को सफल बनाने हेतु स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर बल दिया गया। इस कार्यक्रम में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली क्योंकि भारत में इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप विदेशी वस्त्रों की होलियाँ जलाई गयी अर्थात् वस्त्रों को नष्ट किया जाने लगा।
4. **प्रतिरोध**—प्रतिरोध से तात्पर्य उन सभी कार्यों एवं कानूनों का विरोध करना है जो भारतीयों का शोषण करता हो या उसके अनुकूल न हो। उदाहरण के लिए, यदि सरकार हमारे ऊपर शोषण करने हेतु कोई कर लगाए, तो हम संगठित होकर यह तय कर लें कि हम कर नहीं देंगे।

उपरोक्त कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारत में बहिष्कार कुछ क्षेत्रों में इतना अधिक प्रबल हुआ कि वहाँ छात्रों ने विदेशी कागज की कापियाँ लेने से इन्कार किया और बच्चों ने विदेशी जूते पहनना या ज्वर होने पर विदेशी दवाइयों को लेना भी अस्वीकार करने लगे।

उग्रवाद के उदय (उत्पत्ति) के कारण (Reasons for the Rise of Extremism)

उग्रवाद के उदय (उत्पत्ति) के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **अंग्रेजों की शोषण नीति का पर्दाफाश**—उग्रपन्थी आन्दोलन के प्रारंभ होने का एक कारण अंग्रेजों की शोषण नीति का सामने आना था। इसमें विभिन्न लेखों एवं पुस्तकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसका श्रेय दादाभाई नौरोजी, दिनशा वाचा, गोपाल कृष्ण गोखले एवं मदनमोहन मालवीय आदि को जाता है।
2. **आर्थिक असंतोष**—कांग्रेस की आवेदन-निवेदन नीति की असफलता के कारण देश के अंदर और स्वयं कांग्रेस के अंदर असंतोष उत्पन्न हो गया था। हथकरघा उद्योग समाप्त हो गया था, श्रमिक बेरोजगार हो गए थे। जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय हो गयी थी।

TOUCH 'n' PASS

3. **बंगाल का विभाजन तथा स्वदेशी आंदोलन**—उग्रपन्थ के उदय का कारण सन् 1905 में लॉर्ड कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन भी रहा। लॉर्ड कर्जन के समय बंगाल एक बहुत बड़ा प्रान्त था। लॉर्ड कर्जन का उद्देश्य शासन सुविधा के लिए बंगाल को बाँटना व हिन्दू तथा मुसलमानों में फूट डालकर राष्ट्रीय एकता को तोड़ना था। गोखले ने भारत सचिव से बंगाल का विभाजन रद्द करने हेतु सिफारिश की परन्तु भारत सचिव लॉर्ड मॉर्ले ने स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। इसके फलस्वरूप उदारवादियों की नीतियों से लोगों में विश्वास समाप्त हो गया। जिससे उग्रवाद को प्रोत्साहन मिला।
4. **उदारवादियों की नीतियों के प्रति असन्तोष**—उदारवादियों की ज्ञापन, प्रार्थना एवं विरोध की नीति से उग्रपन्थी सन्तुष्ट नहीं थे। इंग्लैंड में उदारवादियों द्वारा भारतीयों की समस्याओं के प्रचार-प्रसार में अपनाई गयी नीति से उदारवादियों में असन्तोष था।
5. **प्राकृतिक प्रकोप**—1876 से 1900 ई० के बीच में लगभग अठारह बार अकाल आना एवं सरकार द्वारा इनकी ओर अधिक ध्यान न दिया जाना उग्रवाद के उदय का प्रमुख कारण था। भारत 1876 से 1900 ई० के मध्य अकाल तथा 1897–98 में (बंबई) प्लेग से ग्रस्त था। जिसमें अकाल के कारण 2 करोड़ लोग और प्लेग के कारण 1 लाख 75 हजार लोग मृत्यु व कुपोषण के शिकार हो गए थे। सरकार ने इसे रोकने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया। ऐसी घटनाओं ने उग्र राष्ट्रवाद को प्रोत्साहन दिया।
6. **भारतीयों के साथ विदेश में अपमानजनक व्यवहार**—विदेशों में भारतीयों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता था। अंग्रेज भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखते थे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ एवं सभ्य जाति का मानते थे। अंग्रेजी समाचार पत्र जातिभेद का तीव्र प्रचार कर रहे थे। भारतीयों को राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया था तथा उनके साथ तिरस्कारपूर्ण एवं दुर्व्यवहार किया जाता था।
7. **पाश्चात्य क्रांतिकारी सिद्धान्तों का प्रभाव**—पश्चिमी देशों के क्रांतिकारी सिद्धान्त, भारतीय नवयुवकों के विचार एवं दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। फ्रांस, इटली, जर्मनी और अमेरिका में हो रहे राष्ट्रीय आन्दोलनों में क्रांतिकारी विचारों को उत्पन्न किया तथा यहाँ (फ्रांस, इटली, जर्मनी) स्वतंत्रता संग्राम की सफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि संवैधानिक माँग से ही केवल साम्राज्यवाद से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों की भूमिका एवं महत्त्व
(Role and Significance of Extremists in the Indian National Movement)

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों की भूमिका एवं महत्त्व निम्नलिखित प्रकार से हैं—

1. उग्रवादियों द्वारा उपयोग किए गए साधनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाया।
2. इन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनों की प्रबलधारा को मध्यम वर्गों एवं जनसाधारण तक पहुँचाने में सहायता की।
3. उग्रवादियों की नीतियों के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सामाजिक आधार में व्यापकता आयी।
4. उग्रवादी राजनीति के कार्यक्रमों के बुनियाद पर ही परवर्ती गाँधीवादी कार्यक्रम की शुरुआत हुई।
5. उग्रवादी लोगों द्वारा बनायी गयी एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने नवयुवकों में राष्ट्रीयता का संचार करने में महत्त्वपूर्ण रही।
6. 1909 में हुए मार्ले-मिण्टो सुधार, जो ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर उग्रपन्थियों के हाथ में आ जाने से रोकने के लिए पारित किया, वह उग्रपन्थी आन्दोलन के प्रभाव का ही साक्ष्य है।
7. इनके द्वारा प्रयोग किए गए शब्द जैसे—स्वराज्य, भारतमाता और भारतराष्ट्र ने भारतीयों में देशभक्ति की भावना उत्पन्न की।

1905 से 1919 ई० तक के भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख घटनाएँ
(Major Events of Indian National Movement from 1905 to 1919 AD)

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जुझारू या उग्र विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ, जिसने राजनीतिक कार्यों एवं आंदोलनों के लिए उग्र तरीके अपनाने पर बल दिया। इन जुझारू राष्ट्रवादियों में बंगाल के राज नारायण बोस, अश्विनी कुमार दत्त, अरविंद घोष तथा विपिन चन्द्र पाल, महाराष्ट्र के विष्णु शास्त्री चिपलंकर, बाल गंगाधर तिलक एवं पंजाब के लाला लाजपत राय प्रमुख थे। इस उग्र विचारधारा के उत्थान में सबसे अधिक सहयोग तिलक ने दिया। उन्होंने अंग्रेजी भाषा में मराठा एवं मराठी में केसरी के माध्यम से भारतीयों को जुझारू राष्ट्रवाद की शिक्षा दी और कहा कि आजादी बलिदान माँगती है इस विचारधारा के

समर्थकों का प्रमुख सिद्धांत था—"विदेशी शासन से घृणा करो, इससे किसी प्रकार की उम्मीद करना व्यर्थ है, अपने उद्धार के लिये भारतीयों को स्वयं प्रयत्न करना चाहिए।

स्वतंत्रता आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य स्वराज्य है। राजनीतिक क्रियाकलापों में भारतीयों की प्रत्यक्ष भागीदारी है। इसके लिए निडरता, आत्म-संयम एवं आत्मविश्वास की भावना प्रत्येक भारतीय में अवश्य होना चाहिए। स्वतंत्रता पाने एवं हीन दशा को दूर करने हेतु भारतीयों को संघर्ष करना चाहिए। अत: इस समय के प्रमुख आन्दोलन इस प्रकार रहे—

1. बंग भंग आंदोलन (Bengal Division Movement)
2. स्वदेशी आन्दोलन (Swadeshi Movement)
3. मुस्लिम लीग की स्थापना (Establishment of Muslim League)
4. मार्ले-मिण्टों सुधार (Morley-Minto Reforms)
5. लखनऊ पैक्ट (Lucknow Pact)
6. होम रूल आन्दोलन (Home Rule Movement)

बंग-भंग आन्दोलन (Bengal Division Movement)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पाश्चात्य तथा अन्य क्षेत्रीय दलों के प्रयासों से देश में निरन्तर राजनीतिक जागरूकता बढ़ती जा रही थी। इस राजनैतिक जागरूकता का केन्द्र बंगाल था, जहाँ से सम्पूर्ण देश में इसे प्रसारित किया जा रहा था। उस समय बंगाल प्रान्त में बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा सम्मिलित थे। ब्रिटिश सरकार बढ़ती राजनैतिक गतिविधियों से डरी हुई थी। अत: **लॉर्ड कर्जन** ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के तहत बंगाल के विभाजन की घोषणा 16 अक्टूबर 1905 में की। उसका प्रमुख उद्देश्य **'बाँटों और राज करो'** की नीति को लागू करना था।

ब्रिटिश शासकों ने बंगाल विभाजन को **'शासकीय आवश्यकता'** बताया परन्तु यथार्थ में विभाजन का कारण शासकीय न होकर राजनीतिक था। बंगाल (कलकत्ता) केवल उस समय तक ब्रिटिश भारत की राजधानी ही नहीं, बल्कि व्यापार—वाणिज्य का केन्द्र एवं न्याय इत्यादि का भी प्रमुख केन्द्र था। यहीं से अधिकांश समाचार पत्र निकलते थे।

प्र.3. ब्रिटिश शासन में लॉर्ड कर्जन की दमनकारी नीति की विवेचना कीजिए।
Discuss about the suppressive policy of Lord Curzon during British Rule.

उत्तर

लॉर्ड कर्जन की दमनकारी नीति (1899-1905)
(Suppressive Policy of Lord Curzon)

जिन दिनों भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष बढ़ रहा था उन्हीं दिनों 1899 में लॉर्ड कर्जन भारत के वायसराय बनकर आए। यह बड़ा स्वेच्छाचारी व्यक्ति था। यद्यपि वह कुशल प्रशासक था, तथापि वह भारतीय से घृणा करता था। उसने अपने भाषणों में भारतीयों की प्रति अपमानजनक शब्द कहे। 1904 में उसने भाषण देते हुए यह घोषणा की, "सिविल सर्विस के उच्च पद केवल यूरोपियनों के पास ही रहने चाहिए, क्योंकि शासक जाति के सदस्य होने के नाते वे अधिक योग्य और श्रेष्ठ है।" इस कथन से स्पष्ट है कि अन्य यूरोपीय लोगों को भारतीयों से हर दृष्टि में उच्च मानता था। फरवरी 1905 में कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में कहा था, "सत्य का उच्च आदर्श अधिकतर पश्चिमी विचार है। इस आदर्श ने पहले पश्चिमी नैतिक परम्परा में उच्च स्थान लिया। बाद में यह आदर्श पूर्व में आया, जहाँ पहले चलाकी तथा कुटिलता आदर पाती रहती थी।"

लॉर्ड कर्जन साम्राज्यवादी नीति में विश्वास करता था। वह भारतीय एकता को दुर्बल करके भारतीयों की राष्ट्रीय भावना का गला घोटना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अपने शासनकाल में कार्यक्षमता के नाम पर अपनी भारत विरोधी नीति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। गोखले ने उनके बारे में सत्य ही कहा था, "कर्जन ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए वही कार्य किया, जो मुगल साम्राज्य के लिए औरंगजेब ने किया।" लॉर्ड कर्जन यह समझता था, "भारत में न केवल उच्च कोटि की राजनीतिक समस्याएँ वरन् मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी उतनी ही महत्त्व रखती हैं और लॉर्ड कर्जन में बुद्धिमानी तथा योग्यता होते हुए भी उसमें आत्मिक भावना या दृष्टि का अभाव था, जो एक सफल राजनीतिज्ञ में होना अनिवार्य है।"

लॉर्ड कर्जन ने अपने शासन काल में अनेक भारत विरोधी कार्य किए, उनका उल्लेख निम्न रूपों में किया जा सकता है—

1. **केन्द्रीयकरण की नीति**—लॉर्ड कर्जन ने प्रारम्भ से ही केंद्रीयकरण की नीति अपनाई वह स्वीकृत तथा केन्द्रीय शासन में विश्वास रखता था। वह भारतीयों को उच्च पदों के लिए अयोग्य समझता था और उन्हें शासन कार्य का भार देने के पक्ष में नहीं था। उसके कार्यों से भारतीयों को यह विश्वास हो गया कि वह साम्राज्यवाद को और अधिक सुदृढ़ कर रहा है।

TOUCH 'n PASS

2. **कलकत्ता कार्पोरेशन एक्ट (1900)**—लॉर्ड कर्जन ने सर्वप्रथम भारतीय स्वशासन संस्थाओं पर प्रहार किया। उसने 1900 ई० में 'कलकत्ता कार्पोरेशन एक्ट' पारित किया जिसके द्वारा कलकत्ता कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या 75 से कम कर 50 कर दी गई। इस अधिनियम का उद्देश्य यह था कि निगम तथा उसकी समितियों में निर्वाचित भारतीय सदस्य अल्पमत में रह सकें और सरकारी सदस्यों का बहुमत हो जाए ताकि निगम पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण हो जाए और सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य मनमाने ढंग से सरकार के आदेशों का पालन करे एवं भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रखा जा सके। सरकार के इस कार्य से जनता में तीव्र गति से असन्तोष फैला। अत: इसके विरोध में निगम के 28 भारतीय सदस्यों ने त्याग पत्र दे दिया, किन्तु सरकार पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।
3. **भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (1904)**—लॉर्ड कर्जन भारतीय विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण स्थापित करने की दृष्टि से 1904 में 'भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम' पारित किया। रोनाल्डसे के अनुसार, "इस अधिनियम द्वारा लॉर्ड कर्जन विश्वविद्यालय की सीनेट का यूरोपीयकरण करना चाहता था और उसका वह सरकारी विश्वविद्यालयों में परिणत करना चाहता था।" इस अधिनियम के द्वारा विश्वविद्यालयों की सिंडिकेट तथा सीनेट के सदस्यों की संख्या में कमी कर दी गई। इस प्रकार इस अधिनियम ने विश्वविद्यालयों की आन्तरिक स्वतन्त्रता को नष्ट कर दिया और उन पर सरकारी अधिकारियों का नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। रोनाल्डशे इस सम्बन्ध में लिखा है, "इस अधिनियम से शिक्षित भारतीयों में बड़ा असन्तोष फैला और उन्होंने यह ठीक ही अनुभव किया कि शासन विश्वविद्यालय प्रणाली पर प्रहार करना चाहता था।"
4. **शासकीय गोपनीयता अधिनियम**—1904 ई० में 'शासकीय गोपनीयता अधिनियम' पारित किया गया, जिसके अनुसार सरकारी कार्यकलापों का भेद देना दण्डनीय बना दिया गया और समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता को सीमित कर दिया गया। अब समाचार-पत्रों में सरकार की कोई आलोचना नहीं की जा सकती थी। प्रेस की स्वतन्त्रता पर आघात भारतीयों के लिए असहनीय घटना थी।
5. **वैदेशिक क्रान्ति**—लॉर्ड कर्जन साम्राज्यवादी नीति का प्रबल समर्थक था। उसने भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के दृष्टिकोण से पड़ोसी देशों को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। कर्जन की सीमान्त नीति, तिब्बत, फारस की खाड़ी तथा चीन में सैनिक दस्ते भेजने की घटनाओं से भारतीयों में काफी असन्तोष फैला और उन्होंने इन कार्यों का विरोध किया। कर्जन ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को दृढ़ बनाने हेतु ऐसी सैनिक कार्यवाही की जिससे सैनिक व्यय में वृद्धि हो रही थी, जबकी दूसरी ओर जनता भूखों मर रही थी।
6. **शान-शौकत**—लॉर्ड कर्जन शान-शौकत में विश्वास रखता था। अत: जनवरी 1903 में एक भव्य दरबार का आयोजन कर एडवर्ड सप्तम के भारत का सम्राट होने की घोषणा की। इस दरबार पर टिप्पणी करते हुए 1903 में मद्रास में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए लाल मोहन घोष ने कहा था कि, "जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है, इससे ज्यादा निर्दय व कठोर कार्य और क्या हो सकता है कि एक श्रेष्ठ सरकार संसार के सबसे गरीब लोगों पर सबसे ज्यादा कर लगाए और इस तरह से एकत्रित धन को व्यर्थ के नाच तमाशों और अतिशबाजी में फूँक दे, जबकि जनता भूखों मर रही हो।"
7. **भारतीयों के प्रति अभद्र व्यवहार**—इन सबके उपरान्त लॉर्ड कर्जन ने भारतीयों को प्रताड़ित करने में कोई कसर नहीं रखी। वह भारतीयों को अविकसित जाति मानता था और उनको अयोग्य, पिछड़े तथा उत्तरदायी पदों के लिए अनुपयुक्त समझता था। 1905 ई० में उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में स्नातकों को सम्बोधित करते हुए पढ़े-लिखे भारतीयों को झूठे व बेईमान कहा। इस समय उसने भारतीयों के चरित्र पर आक्षेप करते हुए यहाँ तक कह डाला, "भारतवासियों में सत्य के प्रति आस्था नहीं है और वस्तुत: भारतवर्ष में सत्य को कभी आदर्श माना ही नहीं गया है। पाश्चात्य देशों के नैतिक आचरण में सत्य के स्थान पर कूटनीतिज्ञता का प्राबल्य है और भारतीय साहित्य में भी इस आचरण की ही प्रतिष्ठा है।"

   कर्जन ने भारतीयों के आत्मसम्मान पर तीव्र आघात करते हुए कहा था, "भारत राष्ट्र नाम की कोई वस्तु नहीं है।" कांग्रेस के विषय में उनकी धारणा थी, "उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाएगी।" लॉर्ड कर्जन के इन कार्यों का भारत के उग्र तत्त्वों के ही नहीं, अपितु उदारवादियों ने भी तीव्र विरोध किया और इसके विरोध में सम्पूर्ण देश में सार्वजनिक सभाएँ आयोजित की गई। इन्द्रविद्या वाचस्पति के अनुसार, "उपयोगितावाद तथा नस्तिकता के प्रवाह में बहते हुए यूरोप के वासियों से 'सत्यमेव जयते' की परम्परा में पले हुए भारतीयों ने जब मर्मभेदी आरोप सुना, तो सम्पूर्ण देश में क्षोभ की एक लहर दौड़ गई।"

TOUCH 'n' PASS

लॉर्ड कर्जन के इन कार्यों ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना शीघ्रगति से जागृत की और उनका विरोध करने के लिए एनी बेसेन्ट के शब्दों में, "सारा भारत राष्ट्र एक व्यक्ति के रूप उठ खड़ा हुआ।"

8. **बंगाल का विभाजन**—लॉर्ड कर्जन के काल में सबसे बड़ा मूर्खतापूर्ण कार्य 1905 में किया गया, वह था 'बंगाल का विभाजन'। बंगाल विभाजन का मूल उद्देश्य बंगाल में बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना को कुचलना था, परन्तु उसका उल्टा असर पड़ा। इस घटना ने न केवल बंगाल, वरन् सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता की अभूतपूर्व भावना को जन्म दिया। जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन एक नये युग में प्रविष्ट हुआ। बंगाल विभाजन पर टिप्पणी करते हुए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था, "बंगाल के विभाजन की घोषणा आश्चर्यचकित जनता पर एक बम के रूप में पड़ी। हमने अनुभव किया है कि हमें अपमानित किया गया है, हमारा मजाक उड़ाया गया है और हमसे छल किया गया है और यह कार्य बंगला भाषी जनता की बढ़ती हुई एकता और चेतना पर एक भीषण प्रहार है।" डॉ० रास बिहारी बोस ने भी कहा था कि लॉर्ड कर्जन ने वे सारे कार्य किए, जो उसे नहीं करने चाहिए थे।

बंगाल विभाजन के पक्ष में सरकार द्वारा यह तर्क दिया गया कि बंगाल जैसे बड़े प्रान्त का शासन सुचारू रूप से चलाने के लिए दो प्रान्त पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल में बाँटना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से ही बंगाल का विभाजन किया जा रहा है। लेकिन वास्तव में जैसा कि डॉ० जकारिया लिखते हैं, "उद्देश्य और प्रभाव की दृष्टि से बंगाल के विभाजन का कार्य नितान्त क्रूरतापूर्ण था। उस समय बंगाल प्रान्त में बिहार तथा उड़ीसा भी सम्मिलित थे और उसकी कुल जनसंख्या आठ करोड़ थी। ऐसी स्थिति में विभाजन की पृष्ठभूमि में केवल सुशासन का ही विचार होता तो सम्भवत: जनता इस विभाजन का इतना उग्र विरोध नहीं करती, किन्तु उसके पीछे सरकार का वास्तविक उद्देश्य राष्ट्रीयता का गला घोटकर एक मुस्लिम बहूल प्रान्त का निर्माण करना था। इस विभाजन द्वारा लॉर्ड कर्जन ने बंगाल में हिन्दू और मुसलमानों में फूट डालकर बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना चाहता था, ताकि ब्रिटिश सरकार ढंग से शासन कर सके। लॉर्ड कर्जन पूर्वी बंगाल में गया, जहाँ पर मुसलमानों का बहुमत था। वहाँ उसने मुसलमानों की एक सभा में कहा कि उनकी सुविधा के लिए ही बंगाल का विभाजन किया जा रहा है, जिससे पूर्वी बंगाल में इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित हो जाएगा और हिन्दुओं की प्रधानता समाप्त हो जाएगी। ए०सी० मजूमदार के अनुसार, "लॉर्ड कर्जन ने मुसलमानों को पक्ष में करने के लिए पूर्वी बंगाल का दौरा किया और अपने भाषणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि बंगाल विभाजन में मेरा उद्देश्य प्रशासकीय सुविधा भर देखना नहीं है, मैं एक मुस्लिम प्रान्त बनाना चाहता हूँ, जहाँ इस्लाम के अनुयायियों का बोलबाला होगा। मुसलमान सुख से रह सकेंगें तथा समृद्धिशाली बन सकेंगे, क्योंकि उनके ऊपर किसी भी अन्य जाति का प्रभुत्व न रह जाएगा, विभाजन से पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को वह एकता प्राप्त होगी, मुसलमान बादशाहों और सुबेदारों के राज के बाद उन्हें कभी नसीब नहीं हुई थी।" इसी प्रकार पूर्वी बंगाल के गवर्नर बैम्बफाइल्ड ने कहा था, "उसकी दो स्त्रियाँ हैं एक हिन्दू, दूसरी मुसलमान, किन्तु वह दूसरी को अधिक चाहता है।"

इस प्रकार लॉर्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़का कर वहाँ पर साम्प्रदायिक दंगें करवाए। यह विभाजन राष्ट्रीय एकता के लिए घातक था। इस घोषणा के विरोध में बंगाल में तीव्र आन्दोलन प्रारम्भ हो गया, जो शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में फैल गया। इस विभाजन के विरोध में सभाएँ आयोजित की गई। सरकार को स्मृति पत्र भेजे गए और 70,000 व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना पत्र भी ब्रिटिश संसद के पास भेजा गया, परन्तु उसका सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। 16 अक्टूबर, 1905 का दिन, जब विभाजन की योजना क्रियान्वित की गई 'राष्ट्रीय शोक दिवस' के रूप में मनाया गया। उदारवादी नेताओं ने इस विभाजन को रद्द करने का हर सम्भव प्रयास किया, परन्तु उन्हें असफलता ही हाथ लगी। उदारवादी नेता गोखले ने कहा था, 'नवयुवक यह पूछने लगे कि संवैधानिक उपायों का क्या लाभ है, यदि इसका परिणाम बंगाल विभाजन ही होना था।" बंगाल विभाजन की घोषणा के बाद लोगों का नरम दल में विश्वास समाप्त हो गया।

बंगाल विभाजन का विरोध करने के लिए स्थान-स्थान पर सभाएँ होने लगी तथा वन्देमातरम् का गान करती हुई अनेक टोलियाँ जुलूस के रूप में निकलने लगी। सरकार ने आन्दोलन का दमन करने की भरकस चेष्टा की, परन्तु आन्दोलन दिन-व-दिन जोर पकड़ता ही गया। लोगों ने सरकार की दमन नीति का उत्तर विदेशी कपड़े का बहिष्कार करके और स्वदेशी आन्दोलन को चला कर दिया। कई स्थानों पर विदेशी कपड़ों को होली जलाई गई। वस्तुत: लॉर्ड कर्जन के इस मूर्खतापूर्ण कार्य ने राष्ट्रीय जीवन में एकता का इतना बड़ा संचार किया, जो वर्षों के प्रयासों से भी सम्भव नहीं हो सकता

TOUCH 'n' PASS

था। बंग-भंग के परिणाम के सम्बन्ध में गोखले ने ठीक ही कहा था, "हमारी राष्ट्रीय प्रगति के इतिहास में बंगाल के विभाजन के परिणामस्वरूप पैदा हुआ जनरोष और भावना का महान् उत्प्रेरक चिरस्मरणीय रहेगा।"

प्र.4. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न घटनाओं का वर्णन कीजिए।
Describe the different incidents of Indian National Movement.

उत्तर

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का आविर्भाव (1885)
(Emergence of Indian National Congress)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 में एलेन ऑक्टावियन ह्यूम द्वारा की गई। ह्यूम एक सेवानिवृत्त सिविल सेवा अधिकारी थे। उसने भारतीयों में राजनीतिक सजगता को बढ़ते देखा और वे इसे एक सुरक्षित संवैधानिक स्वरूप देना चाहते थे ताकि उनका असंतोष भारत में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सार्वजनिक क्रोध के रूप में विकसित न हो सके। इस योजना में उन्हें वायसराय लॉर्ड डफरिन एवं प्रसिद्ध भारतीयों के एक समूह की मदद मिली। कलकत्ता (कोलकाता) के वोमेश चन्द्र बनर्जी इसके पहले अध्यक्ष के रूप में चुने गए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस राजनैतिक रूप से सजग भारतीयों का उनकी बेहतरी के लिए काम करने के लिए राष्ट्रीय संगठन स्थापित करने के लिए काम करने के हेतु विचार रखते थे। इनके नेताओं का ब्रिटिश सरकार और इसके न्याय में पूरा विश्वास था। वे मानते थे कि यदि वे सरकार के सामने तर्कपूर्ण ढंग से शिकायत रखेंगे तो अंग्रेज निश्चित रूप से उनमें सुधार करेंगे। इन उदार नेताओं में सबसे प्रसिद्ध फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, दादा भाई नौरोजी, रास बिहारी बोस, बदरूद्दीन तयैबजी इत्यादि थे। 1885 से 1905 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का बहुत संकीर्ण सामाजिक आधार था।
गरमदल का यह विश्वास था कि अंग्रेज भारतीयों का शोषण करते हैं, उसकी आत्म-प्रचुरता को नष्ट करते हैं और भारत का धन ले जाते हैं। वे अनुभव करते थे कि अब भारतीयों को खुद सरकार चलानी चाहिए। ये गरमपंथी गुट सरकार को दरख्वास्त करने के बदले बड़े पैमाने का विरोध करने, सरकार की नीतियों की आलोचना करने, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने, स्वदेशी (गृह-निर्मित) वस्तुओं का उपयोग करने आदि में विश्वास करते थे। वे स्वतंत्रता के लिए सरकार की दया पर निर्भर नहीं थे लेकिन वे यह विश्वास करते थे कि यह उसका अधिकार है। बाल गंगाधर तिलक ने नारा दिया, "आजादी मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेंगे।" 1916 में दोनों समूह पुन: एनी बेसेन्ट के प्रयास से एक हुए। क्या आपको उनके बारे में याद है जो आप पहले के अध्याय में पढ़ चके हैं? उन्होंने 1914 में होमरूल आन्दोलन के लिए काम करना शुरू किया। उनके द्वारा बताया गया कि भारत को स्वशासन दिया जाना चाहिए। 1916 में मुस्लिम लीग और कांग्रेस भी वैचारिक तौर पर परस्पर नजदीक आए और लखनऊ एक्ट पर हस्ताक्षर किए। बाद में महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू सुभाष चन्द्र बोस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रसिद्ध चेहरे हुए जिन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष को आगे बढ़ाया।

मुस्लिम लीग का गठन (1906) (Organisation of Muslim League)

जैसे-जैसे उग्र परिवर्तनवादी आन्दोलन शक्तिशाली हुए ब्रिटिश भारतीयो की एकता को तोडने का रास्ता तलाशने लगे। ऐसा उसने बंगाल के विभाजन द्वारा और भारतीयों के बीच साम्प्रदायिकता का बीज-बोकर कोशिश की। उन्होंने मुस्लिमों को अपना खुद का एक स्थाई राजनीतिक संगठन बनाने को उकसाया। दिसम्बर, 1906 में ढाका में मोहम्डन एजुकेशनल कॉनफरेन्स के दौरान नवाब सलीम उल्लाह खान ने मुस्लिम हितो की देखभाल के लिए सेन्ट्रल मोहम्डन एसोसिएशन की स्थापना का विचार दिया। उसी के अनुसार 30 दिसम्बर 1906 ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति जिसने मुस्लिम लीग का नेतृत्व किया वह आगा खान थे जो अध्यक्ष चुने गए। मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा करना एवं उन्हें उन्नत करना तथा उनकी जरूरतों को सरकार के सामने रखना था। अलग निर्वाचन क्षेत्र के मुद्दे को बढ़ावा देकर सरकार ने भारतीयों में साम्प्रदायिकता व अलगाव के बीज बो दिए। मुस्लिम लीग के गठन को ब्रिटिश मुख्य रणनीति 'बाँटो और शासन करो' के प्रथम परिणाम के रूप में माना जाता है। बाद में मोहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग के सदस्य बने।

मॉर्ले-मिंटो सुधार (1909) (Marley Minto Reforms 1909)

क्या आपको भारत विधान परिषद् अधिनियम 1892 याद है जिसने केन्द्रीय विधान सभा में सदस्यों की संख्या बढ़ाकर विधायिका का विस्तार कर दिया था। 1909 परिषद् अधिनियम; 1892 के सुधारों का एक विस्तार था जिसे राज्य सचिव (लॉर्ड मॉर्ले) एवं वायसराय (लॉर्ड मिंटो) के नाम पर मॉर्ले-मिंटो सुधार के नाम से जाना गया। उसने विधान सभा में सदस्य संख्या सोलह से बढ़ाकर साठ कर दिया। कुछ अनिर्वाचित सदस्यों को भी शामिल कर लिया गया। यद्यपि विधान परिषद सदस्यों की संख्या बढ़ गई

TOUCH 'n PASS

किन्तु उसके पास वास्तव में शक्ति नहीं थी। वे किसी कानून को पारित होने से रोक नहीं सकते थे। न उनके पास बजट पर कोई शक्ति थी। वे मुख्यत: केवल सलाहकार की भूमिका में थे। अंग्रेजों द्वारा मुस्लिमों को अलग निर्वान क्षेत्र देना उसके 'बाँटो और शासन करो' का दूसरा प्रयास था। इसका अर्थ यह था कि मुस्लिम प्रभाव वाले निर्वाचन क्षेत्र में केवल मुस्लिम प्रत्याशी ही चुने जाएँगे। हिन्दू केवल हिन्दू को वोट देंगे और मुस्लिम केवल मुस्लिम को। यह भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का बीज बोने का जान-बूझकर किया गया काम था। बहुत नेताओं ने साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र का विरोध किया।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन (National Movement during First World War)

प्रथम विश्व युद्ध वर्ष 1914 में प्रारंभ हुआ। यह युद्ध यूरोप के देशों के बीच औपनिवेशिक एकाधिकार पाने के लिए लड़ा गया। युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं से अपील की, कि उनके संकट की घड़ी में उनका साथ दें। भारतीय नेता तैयार हो गए किन्तु इन्होंने अपनी एक शर्त रख दी। वह यह कि जब युद्ध समाप्त हो जाये तब ब्रिटिश सरकार भारतीय लोगों को संवैधानिक (विधायी और प्रशासनिक) शक्ति दे दे। दुर्भाग्यवश, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा उठाये गये कदम ने भारतीय लोगों में असंतोष पैदा कर दिया वह इसलिए कि ब्रिटिश सरकार ने युद्ध के दौरान एक बहुत बड़ा कर्ज ले रखा था जिसे उन्हें वापस करना था। उन्होंने जमीन का किराया अर्थात् लगान बढ़ा दिए। उन्होंने ब्रिटिश फौज में भारतीयों की जबरदस्ती भर्ती की। उन्होंने आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ा दिए और व्यक्तिगत एवं पेशे से प्राप्त आय पर कर लगा दिए। परिणामस्वरूप, उन्हें भारतीय समाज के विरोध का सामना करना पड़ा। चम्पारण, बारदोली, खेड़ा और अहमदाबाद के किसानों एवं कामगारों ने ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों के खिलाफ डटकर विरोध किया। लाखों छात्रों ने स्कूल और कॉलेज छोड़ दिए, सैकड़ों वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। महिलाओं ने भी इस आन्दोलन में विशेष रूप से योगदान दिया और उनकी भागीदारी गाँधीजी के आंदोलन के दौरान ज्यादा विस्तृत रही। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार एक बड़ा आंदोलन बन गया, विदेशी कपड़ों के हजारों होलिका दहन भारतीय आक्रोश को आलोकित कर रही थी।

नरमदल और गरम दल का एकजुट होना (Unity between Moderates and Extremist)

युद्ध काल के दौरान, नरम दल एवं गरम दल 1916 के कांग्रेस के लखनऊ सम्मेलन में एक साथ आए। मुस्लिम लीग एवं कांग्रेस अलग निर्वाचन क्षेत्र पर सहमत हो गए और दूसरे दल को जहाँ कही वे अल्पमत में थे, महत्त्व देने का निर्णय किया। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग दोनों ने मिलकर स्वशासन की माँग की जिसकी सरकार द्वारा लम्बे समय तक अनदेखी नहीं की जा सकती थी। लखनऊ अधिवेशन इस मामले में भी महत्त्वपूर्ण था कि कांग्रेस के अति परिवर्तनवादी नेता भी 1907 के अलगाव के बाद इसमें हिस्सा ले रहे थे। इस सम्मेलन ने तिलक को प्रसिद्धी में ला दिया और वे 1920 में अपनी मृत्यु तक आन्दोलन में सक्रिय सदस्य बने रहे। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच हुए इस समझौते ने देश में बड़ी आशा और अभिप्रेरणा पैदा की। साथ ही, होमरूल आन्दोलन द्वारा किया कार्य लोगों में आत्मविश्वास और लगन पैदा कर दी। भारतीयों को शान्त करने के क्रम में 1919 में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार आया। इसने दोहरे शासन का प्रस्ताव रखा जो एक प्रकार से राज्यों में दो सरकारें थी। अस्थायी सरकार को दो भागों में बाँटा जाना था, एक को विधान सभा द्वारा निर्वाचन क्षेत्र के प्रति उत्तरदायी होना था और दूसरे को गवर्नर के प्रति। इस रिपोर्ट ने सेवाओं के भारतीयकरण पर भी जोर डाला।

प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन और इसके सहयोगी दलों ने युद्ध जीता। मुस्लिमों ने युद्ध के दौरान सरकार की मदद की। इस समझ के साथ कि ऑटोमन साम्राज्य का पवित्र स्थान खलीफा के हाथों में होगा। लेकिन युद्ध के बाद तुर्की के सुल्तान पर नया समझौता थोप दिया गया और ऑटोमन साम्राज्य विभाजित हो गया। इससे मुस्लिम क्रुद्ध हो गए और इसे उन्होंने खलीफा के अपमान के रूप में लिया। शौकत अली और मोहम्मद अली ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध **खिलाफत आन्दोलन** की शुरुआत की।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेजी सरकार ने एक अन्य अधिनियम पारित किया जिसे 'रोलट एक्ट' के नाम से जाना जाता है। यह अधिनियम ब्रिटिश सरकार को किसी भी व्यक्ति पर बिना न्यायालय में मुकदमा चलाने, गिरफ्तार करने और जेल भेजने का अधिकार देता था। इसने भारतीयों को किसी प्रकार के हथियार रखने पर भी प्रतिबंध लगा दिया। इससे सिख क्रुद्ध हो गए जो अपने धर्म के अनुसार अपने साथ कृपाण (एक प्रकार की छोटी तलवार) रखते थे। भारतीयों ने इस अधिनियम को अपना अपमान समझा। 13 अप्रैल, 1919 को वैसाखी मेले के अवसर पर जलियाँवाला बाग (अमृतसर) में लोग इस अधिनियम के शान्तिपूर्ण विरोध के लिए एकत्र हुए। अचानक एक ब्रिटिश अधिकारी, जनरल डायर बाग में अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ आया और भीड़ पर अपनी मशीनगन से गोलियाँ चलाने का आदेश दे दिया। यह सब बिना लोगों को कोई चेतावनी दिए किया गया। जलियाँवाला बाग का दरवाजा बन्द था और लोग—आदमी औरत और बच्चे सुरक्षा के लिए नहीं भाग सके। कुछ मिनट में ही

लगभग एक हजार व्यक्ति मार दिए गए। इस नरसंहार ने भारतीय लोगों के उग्र क्रोध को भड़का दिया। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपना क्रोध और दर्द दिखाते हुए ब्रिटिश सरकार को नाइटहुड की उपाधि लौटा दी।

गाँधीजी का उदय (Emergence of Gandhiji)

मोहनदास करमचन्द गाँधी एक ब्रिटेन से प्रशिक्षित वकील थे। वे 1893 में दक्षिण अफ्रीका गए और वहाँ इक्कीस वर्षों तक रहे। अंग्रेजों द्वारा दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार ने उनकी अंतरात्मा को झकझोर दिया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकी सरकार के जातीय विभेद के खिलाफ लड़ने का निर्णय किया। सरकार से संघर्ष करने के दौरान उन्होंने सत्याग्रह (सत्य और न्याय के लिए अहिंसक विरोध) की तकनीक विकसित की। गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में इस संघर्ष में सफल रहे। वे 1915 में भारत लौटे। 1916 में उन्होंने सत्य के विचार एवं अहिंसा पर अभ्यास के लिए अहमदाबाद में साबरमती आश्रम की स्थापना की। गोपाल कृष्ण गोखले ने उन्हें देश भ्रमण मुख्यत: गाँवों में लोगों और उनकी समस्याओं को समझने की सलाह दी। सत्याग्रह में उनका प्रथम प्रयोग बिहार के चम्पारण में 1917 में प्रारंभ हुआ यहाँ वे किसानों की समस्याओं को सुनने के लिए आमंत्रित किए गए थे। इस समझ के आधार पर उसने चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद के स्थानीय हलचल का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया।

क्रांतिकारी (Revolutionaries)

अंग्रेजों की प्रतिक्रियात्मक नीति ने भारत के युवा पीढ़ी के लोगों के बीच एक गहरी घृणा पैदा की। यह पीढ़ी विश्वास करती थी कि एक संगठित आंदोलन के द्वारा भारत स्वतंत्रता पा सकता है। परिणामस्वरूप, उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ क्रांतिकारी गतिविधियाँ प्रारंभ करने के लिए गुप्त समूह संगठित किया। अंग्रेजों के खिलाफ ताकत के लिए युवाओं को हिंसा के उग्र तरीकों से प्रशिक्षित किया गया। उन्होंने कम प्रसिद्धि वाले अंग्रेज अधिकारियों को मारने का प्रयास किया, अपने क्रियाकलापों में धन के लिए डकैती की और हथियारों को लूटा। उनमें से अधिकतर भारत की आजादी पाने के लिए हिंसा के मार्ग पर चले गए। उन्हें क्रांतिकारी कहा जाने लगा। पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा उनके क्रियाकलापों का केन्द्र था। इन क्रांतिकारियों में खुदीराम बोस, प्रफुल चाकी, भुपेन्द्र नाथ दत्त, वी० डी० सावरकर, सरदार अजीत सिंह, लाला हरदयाल और उसकी गदर पार्टी, सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद आदि प्रमुख थे। इन क्रांतिकारियों ने गुप्त संघ बनाया, कई ब्रिटिश कर्मचारियों को मारा गया, रेलवे यातायात बाधित किया और ब्रिटिश धन पर संगठित होकर आक्रमण करते रहे। 1925 में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक-उल्लाह खान तथा हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्यों ने हथियार के बल पर ब्रिटिश शासन को पलटने के लिए काकोरी षडयंत्र की योजना बनाई। 1928 में, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त और अन्य ने मिलकर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का निर्माण किया। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने पब्लिक सेफ्टी बिल तथा ट्रेड डिस्प्यूट बिल के पास होने के विरोध में केन्द्रीय विधान सभा में 8 अप्रैल 1929 को विरोध करते हुए बम फेका तथा 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा लगाते रहे, यद्यपि इस घटना क्रम में न कोई मारा गया न ही कोई घायल हुआ। दूसरे केस के लिए उन पर बाद में मुकदमा चला और भगत सिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को 1931 में फाँसी दे दी गई। उनके बलिदान ने लोगों के लिए प्रेरणा का काम किया। उन्हें शहीद का दर्जा दिया गया और वे भारत की एकता और प्रेरणा के प्रतीक बने।

सामाजिक विचारों का विकास (Development of Social Thoughts)

बींसवीं सदी की महत्त्वपूर्ण बातें कांग्रेस में और इससे बाहर सामाजिक विचारों का उत्थान थी। अब किसान भूमि सुधार, जमींदारी प्रथा का अंत और राजस्व में कमी और कर्ज में छूट के लिए कहने लगे थे। अखिल भारतीय व्यापार संघ कांग्रेस जिसकी स्थापना 1920 में हुई थी। मजदूरों के काम तथा रहन-सहन की व्यवस्था के विकास के लिए काम करता था। इसने पूर्ण स्वतंत्रता के लिए लोगों को प्रेरित किया जिसने आंदोलन को विस्तृत करने में मदद की। कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक और कम्युनिष्ट नेता थे एम० एन० रॉय, एस० ए० डांगे, अवनी मुखोपाध्याय नलिनी गुप्ता, मुजफ्फर अहमद, शौकत उस्मानी, गुलाम हुसैन सिंगारावल चेतैर, जी० एम० अधिकारी और पी० सी० जोशी। उन लोगों ने क्रांति की राह तय की, पृथक हड़ताल से उसका सामान्य राजनीतिक हड़ताल में रूपांतरण किसानों की अपने आप हड़ताल का विकास, पूर्ण स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रव्यापी आंदोलन, पुलिस और सेना में क्रांतिकारी विचार फैलाना। साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई एक प्रमुख नारा था। 1936 में जब नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे तब उन्होंने लखनऊ अधिवेशन में घोषणा की कि भारत की समस्याओं का दल सामाजिक विचारों को अपनाने में निहित है। नेहरू कार्ल मॉर्क्स से काफी हद तक प्रभावित थे। सुभाष चन्द्र बोस भी सामाजिक विचारों से प्रभावित थे। गाँधीजी से मतभेद होने के कारण सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया और अपने "फारवर्ड ब्लॉक" की स्थापना की।

सांप्रदायिक विभाजन (Communal Division)

'फूट डालो शासन करो नीति' का प्रारंभ ईस्ट इंडिया कंपनी ने उन दिनों में किया था जब अंग्रेज अपने आपको भारत के शासक के रूप में स्थापित कर रहे थे। आपने पढ़ा होगा कैसे कंपनी ने एक शासक को दूसरे के खिलाफ किया और अत: वे स्वतंत्र शासक बन गये। आपने देखा कि अर्द्ध उन्नीसवीं शताब्दी की समाप्ति के पश्चात् से ही राष्ट्रीयता उत्पन्न होने लगी थी। अब ब्रिटिश सरकार ने पाया कि फूट डालो और शासन करो की नीति को बढ़ाकर हिन्दू और मुस्लिम के बीच द्वेष पैदा करना ही बुद्धिमानी है। अंग्रेजों को 1857 के विद्रोह से ही मुस्लिम अप्रिय और संदेहास्पद होने के कारण अच्छे नहीं लगते थे। लेकिन अब उन्हें लगा कि बढ़ते राष्ट्रवाद को रोकने के मुस्लिमों को खुश करने का समय आ गया है। सरकार ने उन सभी अवसरों पर अपने अधिकार कर लिया जिनसे भारतीय धर्म के आधार पर एक-दूसरे के समक्ष होते और उन लोगों के बीच उन्होंने शत्रुता उत्पन्न कर दी थी। अंतत: इसी नीति के कारण मुसलमानों का अलग चुनाव क्षेत्र स्थापित हुआ। आपने मुस्लिम लीग के निर्माण के बारे में पढ़ा होगा जिसने सांप्रदायिकता के बीज बोए थे। आपको याद होगा कि ब्रिटिश अधिकारियों के बढ़ावे के कारण ही लीग की स्थापना हुई थी।

1932 का कम्युनल अवार्ड इसी नीति की एक पहल थी क्योंकि इसने ही समाज के कमजोर वर्गों के लिए सीटों का आरक्षण और अलग चुनाव क्षेत्र की अनुमति दी थी। अलग चुनाव क्षेत्र की पहली बार माँग 1906 में मुस्लिम लीग ने किया और 1907 के मार्ले-मिंटो सुधार में इसे लागू किया गया। इसे भारतीय राष्ट्रवाद के खिलाफ मुस्लिम संप्रदायवाद को बढ़ाने को ध्यान में रखकर बनाया गया। मोंटफोर्ड सुधार (1919) के तहत उसे सिक्ख यूरोपियन, आँग्ल-इंडियन, इंडियन-क्रिश्चयन आदि तक बढ़ाया गया। 1935 वे अधिनियम के अधीन सत्रह अलग चुनाव क्षेत्र बनाए गए। 'दो राष्ट्र सिद्धांत' 1938 में आया और जिन्ना ने 1940 में खुलकर इसका समर्थन किया। जब पाकिस्तान की माँग की गई तो अंग्रेज हुकूमत ने सीधे और परोक्ष रूप से इसको प्रोत्साहित किया। पाकिस्तान की माँग के प्रकट होने का तात्कालिक कारण 1937 के चुनाव के बाद कांग्रेस का मिली-जुली सरकार बनाने से इंकार था। देश अराजकता और बर्बाद होने के कगार पर था।

इन घटनाओं के बीच, पूरी तरह कानून व्यवस्था को टूटने से बचाने तथा ब्रिटिश शासन से छुटकारा पाने का एकमात्र रास्ते के रूप में विभाजन को आवश्यक अभिशाप के रूप में स्वीकार किया गया।

प्र.5. आजाद हिन्द फौज का स्वतंत्रता संघर्ष में क्या योगदान रहा? विस्तृत टिप्पणी कीजिए।
What was the contribution of Indian National Army in the freedom struggle? Comment in detail.

उत्तर

आजाद हिन्द फौज
(Ajad Hind Fauj or Indian Republican Army)

जापान ने 7 दिसम्बर, 1941 को अमेरिका के समुद्री अड्डे पर्ल हार्बर पर आक्रमण कर दिया। इसके उपरान्त उसने सुदूर पूर्व (Far East) में फ्रांसीसी, हॉलैण्ड के और अंग्रेजों के साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी सेना ने मलेशिया तथा सिंगापुर में अत्यन्त अपमानजनक हार का मुँह देखा और जापान के हाथों में 45,000 युद्धबन्दी, जिनमें अधिकतर सैनिक भारतीय थे, वे छोड़कर भाग गए। पहली आजाद हिन्द फौज के गठन का श्रेय कैप्टन मोहन सिंह को है जब वह जापानियों से बच रहे थे, उनका सम्पर्क सरदार प्रीतम सिंह से हुआ। सरदार प्रीतम सिंह, मोहन सिंह व जापानी सैनिक अधिकारी मेजर फूजीवारा के प्रयासों से पहली आजाद हिन्द फौज की स्थापना हुई। कैप्टन मोहन सिंह ने अन्य युद्धबन्दियों को भी इस स्वतन्त्रता संग्राम से सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। उन्होंने 1 सितम्बर 1942 को आजाद हिन्द फौज का पहला डिवीजन बना दिया। मोहन सिंह की आजाद हिन्द फौज बहुत सफल नहीं हो सकी क्योंकि मोहन सिंह का जापानी अधिकारियों से सेना की संख्या, सेना को बर्मा में भेजने तथा सेना का साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका क्या होगी सम्बन्धी प्रश्नों पर मतभेद हो गए।

2 जुलाई 1944 सुभाष चन्द्र बोस 29,000 किलोमीटर की समुद्री यात्रा करके जर्मनी से सिंगापुर पहुँचे तथा इसके उपरान्त आजाद हिन्द फौज पुन: गतिशील हो गई। सुभाष बोस के नेतृत्व वाली आजाद हिन्द फौज, इस फौज का दूसरा चरण था। सुभाष बोस ने आजाद हिन्द सरकार (स्वतंत्र भारत की अस्थाई सरकार) गठित की। छलांग लगाते हुए बाघ (Tiger) को आजाद हिन्द फौज का झण्डा घोषित किया गया तथा कांग्रेस के झण्डे को इस नई सरकार का झण्डा घोषित किया और एक नया जय घोष (Slogan) "जय हिन्द" अपने सैनिकों का दिया। सुभाष बोस ने सेना का पुनर्गठन किया। सुदूर पूर्व में बसे भारतीयों की इस सेना में भरती होने को आमंत्रित किया तथा सेना के व्यय के लिए उन्हें धन देने को भी कहा। वह स्वयं इस सेना के मुखिया बने और सैनिकों का आह्वान किया "तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा"। आजाद हिन्द फौज का युद्ध उद्घोष था, 'दिल्ली चलो"।

"भारत छोड़ो" आन्दोलन ने दक्षिण पूर्व एशिया में रहने वाले भारतीयों को भी प्रभावित किया। देश में सभी प्रमुख कांग्रेसी नेता जेल में बन्द थे। अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में मित्र देशों की विजय दिखाई दे रही थी। सम्भवत: इन्हीं तथ्यों को सामने रखकर बोस ने गाँधी जी के नाम सिंगापुर स्थित आजाद हिन्द रेडियो से एक अपील जारी की और कहा—

"भारत का अन्तिम स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ चुका है..... हमारे राष्ट्रपिता, हम भारतीय स्वतन्त्रता के पवित्र युद्ध में आपके आशीर्वाद की तथा शुभकामनाओं की आशा करते हैं।"

आजाद हिन्द सेना भारतीय सीमाओं की ओर बढ़ रही थी। इस इम्फाल युद्ध में मई 1944 में ही इस सेना की पहली बटालियन ने मौडोक (Mowdok) जो चटगाँव (आधुनिक बांग्लादेश) के दक्षिण पश्चिम में एक बाहरी चौकी थी, पर अधिकारकर भारत भूमि पर तिरंगा फहरा दिया था। दूसरी ओर उत्तर में शाहनवाज खां के अधीन एक बटालियन ने जापानी सहायता से नागालैण्ड स्थित कोदिया नगर पर आक्रमण कर दिया। अगला निशाना मणिपुर स्थित इम्फाल था। योजना यह थी कि शीघ्रता से ब्रह्मपुत्र नदी पार कर बंगाल पर आक्रमण कर दिया जाए।

इस अभियान को केवल सीमित सफलता ही मिली। दुर्भाग्य से विश्वयुद्ध का पाँसा पलट चुका था। जर्मनी तथा जापान दोनों ही हार के द्वार पर खड़े थे। जापानी सेना को दक्षिणी प्रशान्त महासागर में अमेरिकी सेनाओं का प्रतिरोध करने के लिए अपनी सेना को भारत की सीमाओं से वापिस बुलाना पड़ा। आजाद हिन्द सेना अब पीछे हटने लगी, मानसून की मार, यातायात के साधनों के अभाव, इंग्लैण्ड व अमेरिकी हवाई ताकत के चलते आजाद हिन्द फौज को पीछे हटना पड़ा। मध्य 1944 तथा 1945 तक यूरोप में मित्र देशों की सेनाओं ने जर्मनी व इटली को पूर्णरूप से हरा दिया। जापान के समर्पण के पश्चात् आजाद हिन्द फौज को भी अंग्रेजों के आगे हथियार डालने पर विवश होना पड़ा।

सुभाष बोस सिंगापुर से जापान की ओर निकल पड़े और कहा यह जाता है कि यह ताईपह हवाई अड्डे पर एक विमान दुर्घटना में 18 अगस्त, 1945 को मारे गए। आजाद हिन्द सेना के वे सैनिक जो एक समय में अंग्रेजी सेना का भाग थे : उन पर अंग्रेजों का यह आक्षेप था कि उन्होंने अपनी राजभक्ति की प्रतिज्ञा तोड़कर अंग्रेजी सम्राट के विरुद्ध युद्ध किया है। सैनिक कानून में इसकी सजा मृत्युदण्ड है, इतने लोगों को मृत्युदण्ड देना सम्भव नहीं था, अतएव सरकार ने तीन प्रमुख नेताओं कैप्टन पी० के० सहगल, कैप्टन शाह नवाज खां तथा लैफ्टिनेंट गुरबख्श सिंह ढिल्लो (हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख) पर मुकद्दमें चलाए। कोर्ट मार्शल की कार्यवाही लालकिले में हुई।

आजाद हिन्द फौज के मुकदमे
(Trails of Ajad Hind Fauj)

आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के भविष्य के मुद्दे ने लोगों की भावना को सबसे ज्यादा उद्वेलित किया। वे युद्धबंदी के रूप में नजरबंद थे और सरकार उनके खिलाफ क्रूरता का मुकदमा चलाने जा रही थी। नेहरू ने इन 'गुमराह देशभक्तों" के प्रति उदारता दिखाने की अपील की। कांग्रेस ने आजाद हिंद फौज बचाव समिति का गठन किया और रिहा कर दिए गए फौजियों को आर्थिक सहायता देने तथा उनके लिए रोजगार की व्यवस्था करने के लिए "आजाद हिन्द फौज राहत तथा जाँच समिति" भी बनाई। जब लाल किले में यह ऐतिहासिक मुकद्दमा शुरू हुआ तो भूलाभाई देसाई बचाव पक्ष के वकीलों की अगुवाई कर रहे थे। सप्रू, काटजू और आसफ अली उनके सहायकों में थे। कार्यवाही के पहले दिन नेहरू भी वकीलों की पोशाक पहन अदालत में मौजूद थे।

आजाद हिन्द फौज को लेकर चलाए जा रहे आन्दोलन के साथ जनता का गहरा जुड़ाव था। सरकार के विरुद्ध जन रोष तरह-तरह से व्यक्त हो रहा था। छात्र सबसे ज्यादा सक्रिय थे। वे कक्षाओं का बहिष्कार कर रहे थे, सभाओं और प्रदर्शनों का आयोजन कर रहे थे, हड़ताल करा रहे थे, कोष जमा कर रहे थे और पुलिस से संघर्ष भी कर रहे थे। दुकानदारों ने अपनी दुकानें बंद कर दी थी। उनमें से बहुत-से सभाओं और जुलूसों में भी जाते थे। जिनमें इतना साहस नहीं होता था, वे चंदा देते थे और दूसरों से दिलवाते थे। जिला बोर्डों, नगर पालिकाओं, प्रवासी भारतीयों, गुरुद्वारा समितियों, कैम्ब्रिज मजलिस, बंबई और कलकत्ता के गुरुद्वारे आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के पक्ष में प्रचार के केंद्र बन गए थे। पंजाब के बहुत से शहरों में उस साल दीवाली नहीं मनाई गई।

सामाजिक और भौगोलिक दृष्टि से भी इस आन्दोलन का दायरा काफी बढ़ा था। गुप्तचर ब्यूरों के निदेशक ने भी स्वीकार किया कि "शायद ही कोई और मुद्दा हो जिसमें भारतीय जनता ने इतनी दिलचस्पी दिखाई हों" और यह कहना गलत नहीं होगा कि जिसे इतनी व्यापक सहानुभूति मिली हो। सामाजिक और भौगोलिक दायरा भी कम विस्तृत नहीं था। दिल्ली, पंजाब, बंगाल, संयुक्त प्रांत, बंबई और मद्रास में तो आन्दोलन उग्र था ही, कुर्ग, बलूचिस्तान, अजमेर, असम, ग्वालियर और दूर-दूर के गाँवों में भी संवेदना और समर्थन का वातावरण था।

TOUCH 'n' PASS

सभी राजनीतिक दलों ने इस आन्दोलन का समर्थन किया। लेकिन इनमें कांग्रेस वायसराय के अनुसार, सबसे ज्यादा मुखर थी। मुस्लिम लीग भी आन्दोलन के साथ थी, लेकिन मुख्यत: एक मुसलमान फौजी रशीद अली के कारण। कम्युनिस्ट पार्टी शुरू में अपने सक्रिय समर्थन देने में हिचकिचा रही थी, लेकिन अनेक साम्यवादी खासकर कलकत्ता के छात्र नेता गौतम चट्टोपाध्याय और सुनील मुंशी व्यक्तिगत रूप से, मोर्चे की पहली पंक्ति में थे। यूनियनवादी, अकाली, जस्टिस पार्टी, हिन्दू महासभा और सिख लीग तथा अहरार तो साथ थे ही।

आजाद हिन्द फौज आन्दोलन की व्यापक गिरफ्त का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जिन समूहों को अब तक ब्रिटिश राज का परम्परागत समर्थक माना जाता था, वे भी इसमें शामिल थे—मसलन अपने को 'राज' के प्रति वफादार मानने वाले सरकारी कर्मचारी और सशस्त्र सेनाओं के लोग। आन्दोलन के इस पहलू से अधिकारी विशेष तौर से चिंतित थे। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के राज्यपाल कनिंघम ने वायसराय को चेतावनी दी कि "ब्रिटिश विरोधी शिविर में शामिल होने वाले अच्छे-भले लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।"

उसका मानना था कि आजाद हिन्द फौज के लोग आमतौर पर उन्हीं परिवारों से आए हैं, जो पीढ़ियों से सरकार के प्रति वफादार रहे हैं। के० पी० सहगल पंजाब के उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश दीवान अछरू राम के बेटे थे। सरकारवादियों और उदारवादियों, दोनों ने सरकार से अपील की कि वह भारत और ब्रिटेन के अच्छे सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए ये मुकद्दमें उठा ले। सरकारी कर्मचारियों को न केवल अभियुक्तों से सहानुभूति थी, बल्कि वे सरकार विरोधी सभाओं में जाया करते थे और पैसे भी भेजते थे।

रॉयल इंडियन एयर फोर्स के लोगों को कोहाट में शहनवाज का भाषण सुनने और संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब में सैनिकों को आजाद हिन्द फौज के समर्थन में होनेवाली सभाओं में देखा जा सकता था। बहुत से सैनिक तो अपनी वर्दी भी पहने होते थे। कानपुर, कोहाट, इलाहाबाद, बमरौली और कलकत्ता की एयर फोर्स की इकाइयों ने आर्थिक सहयोग भेजा। सभी सैनिक इस बात के कायल थे कि आजाद हिन्द फौज के साथ नरमी दिखाई जानी चाहिए। कमांडर-इन-चीफ ऑचिनलेक का कहना था कि भारतीय अधिकारियों में शत-प्रतिशत की और जवानों में अधिकांश की सहानुभूति आजाद हिन्द फौज के साथ है। इस टिप्पणी से सेना के अधिकारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने यही सोचकर इस मामले में कड़ा रुख अपनाया था कि नरमी को सेना के लोग 'एक बड़ा अपराध' समझेंगे। वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर इस आधार पर नीति संशोधित कर ली गई कि "भारतीय सेना की विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए यही सर्वोत्तम है" और इसके लिए मंत्रिमंडल की मंजूरी भी दे दी गई।

इस तरह आजाद हिन्द फौज के आन्दोलन ने केवल यह स्थापित किया कि भारतीयों से संबंधित मामले तय करने का अधिकार भारतीयों को ही है, बल्कि उसके द्वारा यह अधिकार हासिल भी कर लिया गया। भारत में अपने कानून चलाने के ब्रिटिश अधिकार के आगे प्रश्न चिह्न लग गया। "भारत बनाम ब्रिटेन" का मुद्दा अब बिल्कुल साफ हो चुका था। देश का एक ही नारा था—'भारत छोड़ो'।

आजाद हिन्द मुकदमों का प्रभाव-विद्रोह की तीन घटनाएँ
(Impact of Trial of Ajad Hind-Three Incidents of Revolt)

पहली आजाद हिन्द फौज के मुकद्दमे को लेकर 21 नवम्बर 1945 को कलकत्ता में, दूसरी कलकत्ता में 11 फरवरी 1946 के रशीद अली के खिलाफ मुकदमें को लेकर और तीसरी 18 फरवरी 1946 को बंबई में जब रॉयल इंडियन नेवी के नाविकों ने हड़ताल कर दी। तीनों जगह पैटर्न एक जैसा ही था—प्रारंभिक चरण में छात्रों व नाविकों के किसी समूह द्वारा अधिकारियों की बात मानने से इनकार कर देना और फिर उनका दमन, दूसरे चरण में पूरे शहर के लोगों का उनकी माँगों में शामिल हो जाना और फिर तीसरे चरण में देश के दूसरे हिस्से के लोगों द्वारा उनके प्रति सहानुभूति और एकजुटता की अभिव्यक्ति।

पहले चरण की शुरुआत छात्रों और नाविकों द्वारा प्रशासन को दी चुनौती से हुई और दमन से उसका अन्त हुआ। विद्रोह की पहली घटना 21 नवम्बर 1945 को हुई। छात्रों का जुलूस, जो मुख्यत: फारवर्ड ब्लॉक का था, लेकिन जिसमें छात्र फेडरेशन और इस्लामिया कालेज के छात्र भी थे, डलहौजी स्क्वायर की तरफ बढ़ा, जहाँ कलकत्ता में सरकारी सत्ता का केन्द्र था। पुलिस द्वारा लाठी चार्ज पर छात्र नहीं गए, पथराव करने पर पुलिस ने गोली चलाई जिसमें दो की मृत्यु हो गई और 52 छात्र घायल हो गए। 11 फरवरी 1946 को आजाद हिन्द फौज के कैप्टन अब्दुल रशीद को सात साल के कारावास का दंड दिए जाने के फैसले से है। इस बार जुलूस का नेतृत्व मुस्लिम लीग के छात्रों ने किया, हालाँकि कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के छात्र संगठन भी इसमें शामिल हुए। छात्रों ने धारा 144 का उल्लंघन किया जिसके कारण गिरफ्तारियाँ हुईं और लाठी चार्ज भी किया गया।

इन विद्रोहों के दूसरे चरण में, जब शहर के प्राय: सभी लोग आन्दोलनकारियों के साथ हो गए ब्रिटिश-विरोधी भावना इतनी उग्र हो गई कि कलकत्ता और बंबई का सारा कामकाज ठप्प हो गया। शुरू में आंदोलनकारियों के प्रति सहानुभूति-प्रदर्शन के लिए सभाएँ और जुलूस, हड़ताल और फिर जनता द्वारा जगह-जगह खड़े किए गए अवरोध, गलियों और मकानों की छतों से रुक-रुक कर होने वाली लड़ाई, यूरोपियनों पर हमला, थानों, डाकघरों, बैंकों, अनाज की दुकानों पर हिंसक हमले।

विद्रोह का तीसरा चरण था देश के अन्य हिस्सों के लोगों द्वारा एकजुटता का प्रदर्शन। आन्दोलनकारी छात्रों और नाविकों के साथ संवेदना व्यक्त करने तथा सरकारी दमन की भर्त्सना करने के लिए छात्रों ने केवल कक्षाओं का बहिष्कार किया, बल्कि जुलूसों और प्रदर्शनों का आयोजन भी किया।

सरकार से इस सीधी, उग्रवादी हिंसक मुठभेड़ की कुछ सीमाएँ भी थी। इसमें समाज के सापेक्षिक रूप से ज्यादा लड़ाकू हिस्से ही शामिल हो सकते थे। इन कार्यवाइयों में उन उदारवादी तथा परम्पराप्रिय समूहों के लिए कोई जगह नहीं थीं, जिन्होंने आजाद हिन्द फौज के युद्धबंदियों का साथ दिया था। ये विद्रोह अल्पकालिक भी साबित हुए क्योंकि जनता का गुस्सा तेजी से उमड़ता, लेकिन जल्द ही शांत हो जाता था।

इन विद्रोहों के सिलसिले में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी उभरकर आया कि 1946 की शुरुआत तक यद्यपि नौकरशाही और सेना में काफी अस्थिरता आ गई थी, फिर भी दमन करने की ब्रिटिश क्षमता अक्षुण्य थी और उसके कठोर इस्तेमाल का इरादा भी बना हुआ था। सेना द्वारा और जनसामान्य द्वारा काफी विरोध किए जाने पर आजाद हिन्द फौज के खिलाफ मुकद्दमा चलाने के निर्णय पर पुनर्विचार करना एक बात थी तथा कानून और व्यवस्था के समक्ष चुनौती उपस्थित होने पर उसका सामना करने की जरूरत बिल्कुल दूसरी बात।

पुनर्वेक्षण: आजाद हिन्द फौज मुकदमें में इन लोगों के शुद्ध अथवा अशुद्ध आचरण का प्रश्न नहीं रहा था मूलभूत प्रश्न यह बन गया था कि क्या अंग्रेजों को यह अधिकार है कि जो प्रश्न केवल भारतीयों से सम्बन्ध रखता है; उसका निर्णय क्या अंग्रेज करेंगे? लगभग सभी दलों के नेताओं तथा सदस्यों ने, यहाँ तक कि भारत सरकार के कर्मचारियों तथा सैनिकों ने भी इन लोगों को देशभक्तों की संज्ञा दी। ब्रिटिश सरकार को इस बात का बोध हो गया कि अब भारत पर राज करना कठिन हो जाएगा।

प्र.6. भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में वामपंथी राजनीति के उदय (विकास) का वर्णन कीजिए।
Discuss rise of the leftist politics in Indian Freedom struggle?

उत्तर भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में वामपंथी राजनीति का उदय प्रथम विश्व युद्ध के बाद की घटना है। इस समय में 1947 तक का काल वामपंथी राजनीति एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन दोनों के ही विकास में एक बहुत महत्त्वपूर्ण समय है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्वतन्त्रता आन्दोलन में समस्त देश की एकता का प्रतिपादन करती थी। वह वर्ग-संघर्ष के प्रश्न को इस आन्दोलन में स्थान देने के पक्ष में नहीं थी। वामपंथियों ने श्रमजीवियों एवं कृषकों की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं को उभारने पर बल दिया और इस प्रकार राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के स्वरूप में परिवर्तन का प्रयत्न किया। वामपंथी आन्दोलन के उदय और विकास की प्रक्रिया सहज एवं निर्बाध नहीं थी क्योंकि इसे प्रारम्भ से ही ब्रिटिश सरकार के रोष का सामना करना पड़ा था अत: अकसर इसे गुप्तरूप में कार्य करना पड़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था में काफी परिवर्तन ला दिया था। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों के औद्योगिक स्वार्थों की सिद्धि एवं उनके पूँजी निवेश के साधनों के माध्यम के रूप में, भारत में औद्योगिक स्वार्थों की सिद्धि एवं उनके पूँजी निवेश के साधनों के माध्यम के रूप में, भारत में रेलवे, उद्योगों, चाय बागानों, खानों आदि का विकास हुआ था जिसने अनिवार्यत: श्रमजीवी वर्ग को जन्म दिया। प्रथम विश्व युद्ध के पहले के मजदूर आन्दोलन पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नवजात मजदूर वर्ग ने शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाना और संघर्ष करना उन्नीसवीं शताब्दी में ही प्रारम्भ कर दिया था। बीसवीं शताब्दी में यह आवाज संघर्ष में बदल गई जिसके उदाहरण 1907 की रेलवे हड़ताल और 1908 की बम्बई हड़ताल जैसी बड़ी लड़ाइयों में मिलते हैं। 1907 में सारे देश में रेलवे हड़ताल हुई थी जिसके माध्यम से मजदूर अपना वेतन बढ़वाने एवं मालिकों के अत्याचार कुछ कम करने में सफल हुए थे। किन्तु बीसवीं सदी के प्रथम 1908 को तिलक को दिए गए 6 साल के कारावास दंड के विरुद्ध बम्बई के मजदूरों की हड़ताल। वस्तुत: बम्बई के मजदूरों ने शहर के अन्य श्रमजीवियों एवं देश-प्रेमियों से मिलकर तिलक पर मुकदमा शुरू होने के समय से ही संघर्ष प्रारम्भ कर दिया था। यह उनकी राजनीतिक हड़ताल थी। इसमें उन्होंने ब्रिटिश सेना के साथ बम्बई की सड़कों पर लड़ाई की थी। बम्बई के श्रमजीवियों का यह संग्राम भारत के स्वाधीनता संग्राम का एक गौरवमय अध्याय था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में राष्ट्रीय

आन्दोलन की जो लहर आई थी, मजदूर वर्ग उससे अछूता नहीं था। बंगाल उस समय बंग-भंग के कारण प्रबल राजनीतिक आन्दोलन का केन्द्र था। इस आन्दोलन से यहाँ का मजदूर वर्ग भी प्रभावित था। विश्वयुद्ध काल से पूर्व मजदूर वर्ग मूलत: असंगठित ही था। उनके संघर्षों के दौरान उनके संगठन अवश्य बनने लगे थे, किन्तु अभी वे अपनी शैशवावस्था में ही थे। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध एवं उसी के दौरान रूस की समाजवादी क्रान्ति ने मिलकर भारत के मजदूर वर्ग एवं उनके आन्दोलन में आमूल परिवर्तन कर दिया। युद्ध ने मजदूर वर्ग के ऊपर बहुत असर डाला था। प्रथम विश्व युद्ध का एक परिणाम यह हुआ था कि भारत में कल-कारखानों का उत्पादन बढ़ गया और औद्योगिक प्रगति हुई। उत्पादन की यह वृद्धि कारखानों को दिन-रात चलाने से एवं मजदूरों पर ज्यादा बोझ डालकर हुई थी। युद्ध के दौरान बहुत से नए उद्योग खुले एवं कई सीमित पूँजी निवेश कम्पनियाँ स्थापित हुई। इस दौरान चाय-बागानों, कोयला खानों, कपड़ा मिलों, लोहे के कारखानों आदि का तेजी से विकास हुआ और इसमें काम करने वाले मजदूरों की संख्या में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई। यह उन्नति युद्ध-जनित परिस्थितियों का परिणाम थी। मिल मालिकों ने युद्ध के दौरान असीमित लाभ कमाया किन्तु मजदूरों का वास्तविक वेतन बढ़ने के बजाय औसतन कम हो गया। मिल मालिकों द्वारा कमाए गए अत्यधिक लाभ का एक अन्य कारण बच्चे काल एवं तैयार माल की कीमत में आकाश-पाताल का अन्तर था। दूसरे शब्दों में, यह लाभ कच्चा माल पैदा करने वाले किसानों के शोषण का परिणाम था। मजदूरों एवं किसानों की इस गिरती हुई दशा के कारण युद्ध की अवधि में एवं उसके बाद श्रमजीवियों एवं ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के बीच मतभेद बहुत पैने हो गए। रूसी क्रान्ति के कुछ महीने बाद ही भारत के मजदूर युद्धकालीन सरकारी सख्ती की परवाह न करके हड़ताल के क्षेत्र में उतर पड़े। अगस्त 1917 के अन्त तक हड़तालों की पहल बम्बई में कपड़ा मिल मजदूरों में दिखाई पड़ी जो धीरे-धीरे बम्बई ही में नहीं अपितु 1919 तक भारत के कई नगरों में फैल गई। इसका मुख्य उद्देश्य महँगाई के कारण वेतन बढ़वाना था। ये हड़तालें व्यापक संगठित एवं लम्बी थी। ये मजदूर वर्ग की बढ़ती चेतना एवं संगठित शक्ति की परिचायक थी। 1920 तक देश के सभी महत्त्वपूर्ण उद्योगों में यूनियनें बन गई थीं। 1920 तक भारत के मजदूर आन्दोलन के विकास को देखते हुए उसके लिए एक केंद्रीय संगठन का निर्माण आवश्यक था। जो समस्त मजदूर आन्दोलन को एक सूत्र में बाँधकर संचालित करे। 31 अक्टूबर 1920 को एक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) का निर्माण किया गया यद्यपि इसका तात्कालिक उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में प्रतिनिधित्व था। संभवत: रूसी क्रान्ति के बाद एक ही वर्ष में विश्व के मजदूर वर्ग ने जिस तरह समाजवादी क्रान्ति एवं राष्ट्रीय मुक्ति क्रान्ति की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया था उसे देखकर साम्राज्यवादी भयभीत हो उठे थे एवं उन्होंने समझ लिया था कि मजदूरों की शक्ति की अब उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इसीलिए ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि विजयी साम्राज्यवादी देशों ने राष्ट्र संघ के अंग के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना कर दी जिसमें सरकार, उद्योगपतियों एवं मजदूरों के प्रतिनिधि एकत्र होकर मजदूरों की भलाई के प्रश्नों पर विचार करते थे। यद्यपि व्यवहाररूप में यह श्रमजीवी वर्ग को उद्योगपतियों का पुछल्ला बनाने का हथियार अधिक था, किन्तु इस प्रकार भारत में मजदूरों का एक अखिल भारतीय संगठन स्थापित हुआ। एम० एन० जोशी इसके प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में भेजे गए। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को कुचलने के लिए 1919 के बाद भीषण दमन चक्र चलाया किन्तु 1920-21 में इस आन्दोलन ने बहुत जोर पकड़ लिया। आर्थिक समस्याओं, अकाल एवं महामारी ने आग में घी का काम किया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने बहुत जोर पकड़ लिया। आर्थिक समस्याओं अकाल एवं महामारी ने आग में घी का काम किया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने मजदूरों को भी प्रभावित किया था। उनकी माँगों को स्वरूप आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों हो गया था।

1920-21 में देश में किसान आन्दोलन ने भी बहुत जोर पकड़ा। ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध कृषकों का संघर्ष प्राय: उतना ही पुराना था जितना ब्रिटिश शासन। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत कृषक भी दरिद्र से दरिद्रतर होते जा रहे थे। बंगाल में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से ही यथा संभव अधिकतम भू-राजस्व उगाहने की क्लाइव और वॉरेन हेस्टिंग्स की नीति के कारण बहुत विध्वंस हुआ था। स्थायी एवं अस्थायी बंदोबस्त वाले जमींदारी क्षेत्रों में किसानों को जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया, जिन्होंने लगान को असहनीय सीमाओं तक बढ़ा दिया तथा उन्हें अबवाब (महसूल) देने एवं बेगार करने के लिए मजबूर किया। रैयतवाड़ी एवं महलवाड़ी क्षेत्रों में सरकार ने जमींदारों का स्थान ले लिया एवं अत्यधिक भू-राजस्व निर्धारित किया। यह उन्नीसवीं सदी में दरिद्रता की वृद्धि एवं कृषि की अवनति के मुख्य कारणों में से एक सिद्ध हुआ। कृषि-सुधार पर सरकार ने बहुत कम व्यय किया। अत्यधिक भू-राजस्व की रकम वसूल करने के कठोर तरीके ने उसके हानिकर परिणामों को और भयंकर बना दिया था। भू-राजस्व अदा करने में असफल होने पर किसानों की भूमि नीलाम करने की प्रथा ने प्राय: किसानों को अपनी भूमि से वंचित कर दिया अथवा किसानों को महाजनों से ऊँची दर पर कर्ज लेने पर विवश किया जिसका परिणाम भी अंतत: किसान की भूमि महाजन के हाथ में जाना ही होता था।

जमीन के हाथ से निकल जाने, उद्योगीकरण एवं हथकरघा उद्योग के अभाव से जमीन पर बोझ बढ़ने के कारण भूमिहीन किसानों, दस्तकारों एवं हस्तशिल्पियों को बहुधा कम-से-कम मजदूरी पर खेतिहर मजदूरी बनने के लिए विवश होना पड़ रहा था। इस प्रकार किसान वर्ग सरकार, जमींदार एवं महाजन के तिहरे बोझ तले कुचला जा रहा था। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के विरुद्ध किसान संघर्ष का प्रारम्भ इस शासन की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों से ही शुरु हो गया था। संन्यासी विद्रोह (1763-1800) की मुख्य शक्ति किसान ही थे। संथाल विद्रोह (1855-56), 1857 का विद्रोह नील विद्रोह (1859-60), कूका विद्रोह (1871-72) पवना विद्रोह (1875), दक्षिण के हंगामों (1875) आदि सभी की मुख्य शक्ति किसान थे। गाँधी के नेतृत्व में चलाए गए 1920-21 के आन्दोलन की भी मुख्य शक्ति किसान थे। इस अवधि में किसान आन्दोलन ने पंजाब में अकाली आन्दोलन, मालाबार में मोपला विद्रोह एवं संयुक्त प्रान्त में जमींदारों और साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। इसका चौथा केन्द्र बंगाल में कहा जा सकता है। जहाँ उसने लगान बन्दी का रूप धारण कर लिया। किसानों के शामिल होने से राष्ट्रीय कांग्रेस का स्वरूप बदल रहा था। इसका श्रेय गाँधी को था, हालांकि गाँधी द्वारा अकस्मात् आन्दोलन बन्द कर दिए जाने का असन्तोष वामपंथ के उदय में एक बहुत बड़ा तत्त्व बना।

1922 में आन्दोलन निलम्बित कर दिए जाने से ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों का दमनचक्र तीव्र हो गया। 1922 से 1926 तक का यह काल नवोदित कम्युनिस्ट कार्यवाहियों का महत्त्वपूर्ण समय था। भारत में नई क्रान्तिकारी शक्तियों, संगठित सर्वहारा वर्ग, सर्वहारा विचारधारा, मार्क्सवाद-लेनिनवाद, सर्वहारा पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, नौजवानों के संगठनों आदि का उदय हो रहा था। जिस समय सुधारवादी स्वराजी नेता ब्रिटिश शासकों से पूर्ण स्वाधीनता के बजाए डोमीनियन स्टेट्स की माँग कर रहे थे, इन नई शक्तियों ने पूर्ण स्वाधीनता एवं ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष का नारा दिया।

वामपंथी दल का विकास
(Development of Left Party)

सोवियत रूस और उसकी प्रतिबद्धता से आकर्षित होकर भारतीय क्रान्तिकारियों की काफी बड़ी संख्या, जो प्रवास में थे, वहाँ पहुँची। उनमें सबसे विख्यात और महान् क्रान्तिकारी का नाम था, एम० एन० राय जिन्होंने लेनिन के साथ मिलकर उपनिवेशों के प्रति कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की नीति तैयार करने में मदद की। राय के नेतृत्व में इसी प्रकार के सात भारतीयों ने मिलकर अक्टूबर 1920 में ताशकन्द में 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' की स्थापना की। जैसा कि हम देख चुके हैं, इस प्रयास से पृथक् कई वामपंथी समूह और कम्युनिस्ट दल और संगठन 1920 के बाद भारत में अस्तित्व में आने लगे थे।

दिसम्बर 1925 में इनमें से अधिकांश समूह कानपुर में आपस में मिले और इन लोगों ने एक अखिल भारतीय स्तर का संगठन कायम किया जिसका नाम रखा गया कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सी०पी०आई०)। कुछ समय बाद एस० वी० घाटे इसके महामंत्री के रूप में उभरकर सामने आए। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने सभी सदस्यों से कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए कहा। उनसे यह भी कहा गया कि उसके सभी मंचों पर वे एक सशक्त वामपक्ष बनाएँ तथा सभी क्रान्तिकारी राष्ट्रवादियों से कांग्रेस के मंचों पर सहयोग करें कि कांग्रेस अधिक क्रान्तिकारी और जनाधार वाले संगठन का रूप ग्रहण करें। शुरुआती दौर के कम्युनिस्टों के राजनीति कार्य का मुख्यरूप मजदूरों और किसानों के दलों को संगठित करके उनके माध्यम से काम करना होता था। इस प्रकार का पहला संगठन था। नवम्बर 1925 में इसका संगठन बंगाल में मुजफ्फर अहमद, नजरूल इस्लाम, हेमन्त कुमार सरकार और कुछ दूसरे लोगों ने मिलकर किया था। 1926 के उत्तरार्द्ध में बम्बई में 'कांग्रेस लेबर पार्टी' नामक संगठन बनाया गया तथा पंजाब में 'कीर्ति किसान पार्टी' की स्थापना की गई। 1923 से ही 'लेबर किसान पार्टी ऑफ हिन्दुस्तान' मद्रास में काम कर रही थी। 1928 तक आकर इन सभी प्रांतीय संगठनों को मिलाकर एक नया संगठन बनाया गया जिसका नाम 'वर्कस एंड पीजेंट्स पार्टी' (डब्ल्यू०पी०पी०) रखा गया तथा जिसकी इकाइयाँ दिल्ली, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में भी स्थापित की गई। सभी कम्युनिस्ट इस पार्टी के सदस्य हुआ करते थे। वर्कस एंड पीजेंट्स पार्टी का प्रमुख उद्देश्य था कांग्रेस के अन्तर्गत ही काम करना जिससे इसको अधिक क्रान्तिकारी रूझानवाली पार्टी और "आम जनता का संगठन" बनाया जा सके और वर्ग संगठनों में स्वतन्त्र रूप से मजदूरों और किसानों को शामिल किया जाए जिससे पहले स्वतन्त्रता हासिल की जाए उसके बाद समाजवाद के लक्ष्य तक पहुँचा जाए।

'वर्कस एंड पीजेंट्स पार्टी' का विकास काफी तेजी से हुआ और बहुत कम समय में कांग्रेस के भीतर कम्युनिस्ट प्रभाव बढ़ने लगा खासतौर से बम्बई में यह प्रभाव अधिक था। बहरहाल जवाहरलाल नेहरू तथा कुछ दूसरे क्रान्तिकारी कांग्रेसजनों ने 'वर्कस एंड पीजेंट्स पार्टी' द्वारा कांग्रेस के रूख को क्रान्ति की ओर उन्मुख करने का प्रयास करने तथा वामपक्ष के प्रभाव को बढ़ाने का

स्वागत किया। जवाहरलाल नेहरू के साथ सुभाष चन्द्र बोस, नौजवानों के संगठनों तथा दूसरी वामपक्षी शक्तियों ने और "वर्कस एंड पीजेट्स पार्टी" ने कांग्रेस के भीतर एक सशक्त वामपक्ष बनाने के और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को वामपक्ष में झुकाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ट्रेड यूनियन मोर्चे पर "वर्कस एन्ड पीजेंट्स पार्टी" ने तेजी से प्रगति की और 1927-29 के दौर में मजदूर वर्ग के संघर्ष के उभार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। कम्युनिस्टों द्वारा मजदूर वर्ग के बीच अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में भी इसकी अहम भूमिका थी।

1929 और उसके बाद दो ऐसी घटनाएँ घटी जिनके चलते कम्युनिस्ट तथा "वर्कस एन्ड पीजेन्ट्स पार्टी' का प्रभाव और राष्ट्रीय आन्दोलन तेजी से बढ़ता हुआ पहले रुक गया और अंतत: एकदम समाप्त हो गया। पहली घटना थी सरकार द्वारा जबरदस्त दमन जिसका शिकार कम्युनिस्ट हुए। 1922-24 के बीच सोवियत रूस से भारत में प्रवेश करने की कोशिश में कम्युनिस्टों को गिरफ्तार किया गया और राजद्रोह के अनेक मामलों में फँसाकर उन पर पेशावर में मुकद्दमें चलाए गए और लम्बी सजाएँ दी गई। 1924 में कानपुर में श्रीपाद अम्रत डांगे, मुजफ्फर अहमद, मालिनी गुप्ता और शौकत उसमानी को षड्यन्त्र के मुकद्दमे में फँसाकर सरकार ने कम्युनिस्ट आन्दोलन को कुचलने की कोशिश की। इन चारों को चार-चार साल की कैद की सजा सुनाई गई।

1924 तक राष्ट्रीय और ट्रेड यूनियन आन्दोलन में कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव के कारण सरकार गम्भीर रूप से चिन्तित थी। इसने इन पर भयानकरूप से प्रहार करने का निश्चय किया। मार्च 1929 में अचानक एक ही झपट्टे में सरकार ने 32 लोगों को गिरफ्तार कर लिया। जिसमें क्रान्तिकारी राजनीतिकर्मी तथा ट्रेडयूनियन के लोगों के साथ ब्रिटिश कम्युनिस्ट भी थे। ये तीन लोग थे : फिलिप स्प्रेट, बेन ब्रैडले और लेस्टर हचिन्सन। ये लोग भारत में ट्रेडयूनियन आन्दोलन को संगठित करने में मदद के लिए आए थे। सरकार का मूल उद्देश्य यूनियन आन्दोलन को समाप्त करना और कम्युनिस्टों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग-थलग करना था। 32 अभियुक्तों पर मेरठ में मुकद्दमा चलाया गया। मेरठ राजद्रोह कांड तत्काल राष्ट्रीय महत्त्व धारण कर गया। कैदियों को बचाने के लिए अनेक राष्ट्रवादी सामने आए जिनमें जवाहरलाल नेहरू, एम० ए० अंसारी और एम०सी० छागला भी थे। गाँधी जी मेरठ जेल जाकर कैदियों से मिले और उनसे अपनी एकजुटता का इजहार किया और आगामी संघर्ष में उनका सहयोग माँगा। कैदियों ने अपने बचाव में कचहरी में जो बयान दिए, उनको सभी राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों में प्रमुखता से छापा और इस प्रकार साम्यवादी विचारों से देश के लाखों लोगों को पहली बार परिचित कराया। कम्युनिस्टों को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से अलग-थलग करने की सरकार की मंशा न केवल असफल रही बल्कि इसके एकदम उल्टे परिणाम निकले। लेकिन एक अन्य मामले में सरकार को कामयाबी हासिल हुई। आगे बढ़ता हुआ मजदूरों का आन्दोलन नेतृत्वविहीन हो गया।

लेकिन इसके साथ ही कम्युनिस्टों ने अपने ही ऊपर एक घातक प्रहार किया मानो सरकार का प्रहार ना काफी रहा हो। उन्होंने अचानक जो कदम उठाया उसे वामपंथी शब्दावली में 'संकीर्ण राजनीति' अथवा 'वामपंथी भटकाव' की संज्ञा दी जाती है। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की छठनी कांग्रेस से निर्देशित होकर कम्युनिस्टों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से नाता तोड़ लिया और इसको पूँजीपति वर्ग की पार्टी घोषित कर दिया। इसी के साथ कांग्रेस और इसके कथित समर्थक पूँजीवादी वर्ग के लिए कहा गया कि यह साम्राज्यवादी का समर्थक बन गया है। पूर्ण स्वराज्य के नारे को लेकर जन-आन्दोलन संगठित करने की कांग्रेस की योजना को पूँजीपतियों के नेताओं द्वारा आम जनता में अपना प्रभाव बनाने के लिए पाखंडी प्रयास माना गया जो साम्राज्यवाद से समझौते के लिए काम कर रहे थे। कांग्रेस के अन्दर के वामपंथी नेताओं, जैसे जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस को, "राष्ट्रीय आन्दोलन के भीतर पूँजीपतियों का एजेन्ट" समझा गया जो "कामगार और मेहनतकश जनता के विशाल समुदाय की आँखों में धूल झोंकने" पर अमादा थे ताकि इनको पूँजीपतियों के प्रभाव में रखा जा सके। अब कम्युनिस्टों का काम था अहिंसात्मक संघर्ष की सारी बातों का भंडाफोड़ करना तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की बातों को आगे बढ़ाना। 1931 के गाँधी-इरविन समझौते को राष्ट्रवाद के साथ कांग्रेसी विश्वासघात की संज्ञा दी गई।

अन्त में 'वर्कस एंड पीजेन्ट्स पार्टी' को भी इस आधार पर भंग कर दिया गया कि दो वर्गों वाला (मजदूर और किसान) दल बनना उचित नहीं हैं क्योंकि निम्न-पूँजीवादी प्रभाव में इसके आने की संभावना है। इसकी जगह कम्युनिस्टों ने एक "गैरकानूनी, स्वतन्त्र और केंद्रीकृत कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। कम्युनिस्टों के राजनीतिक विचारों में इस अचानक बदलाव का नतीजा यह हुआ कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में अलग-थलग पड़ गए और वे ऐसी घड़ी में अकेले पड़े जब यह सबसे बड़े जन-संघर्ष की तरफ जा रहा था तथा इसके ऊपर वामपक्ष के प्रभाव-विस्तार की संभावना बढ़ रही थी और भी कम्युनिस्ट छोटे-छोटे समूहों में बँट गए। सरकार ने इस स्थिति का और फायदा उठाया और 1934 में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया।

बहरहाल कम्युनिस्ट आन्दोलन महाविनाश से बच गया क्योंकि एक ओर बहुत से कम्युनिस्टों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन से अपने को अलग रखना नामंजूर कर दिया तथा सक्रिय रूप से इसमें भाग लिया और दूसरी ओर भारत में कम्युनिस्ट और समाजवादी विचारों का प्रसार जारी रहा। इसके परिणामस्वरूप बहुत से नौजवान लोग जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भागीदार थे अथवा जिन लोगों ने अति उग्रवादी क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लिया था समाजवाद, मार्क्सवाद और सोवियत रूस की ओर आकर्षित हुए तथा 1934 की भारत की कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए।

1935 में परिस्थिति में बुनियादी बदलाव आया जब पी०सी० जोशी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी का पुनर्गठन हुआ। मास्को में अगस्त 1935 में फाँसीवाद के भय से कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस की बैठक में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने अपने पुराने विचारों को छोड़कर एकदम नया रुख अख्तियार कर लिया। उसने पूँजीवादी और दूसरे फाँसीवाद-विरोधी देशों के साथ समाजवादी देशों का संयुक्त मोर्चा बनाने की वकालत की। इसमें पूँजीवादी नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा में कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं को पुन: शामिल होना पड़ा। भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन में बदलाव की सैद्धान्तिक और राजनीतिक बुनियाद 1926 की शुरुआत में एक दस्तावेज के जरिए रखी गई थी जिसको "दत्त ब्रेडले थीसिस" (दत्त-ब्रैडले सिद्धान्त) के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के मुताबिक साम्राज्य विरोधी "जनमोर्चा के कार्य को कामयाब बनाने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बहुत बड़ी और अग्रणी भूमिका अदा कर सकती है।"

एक बार पुन: कम्युनिस्ट पार्टी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ अपने सम्बन्धों को सुदृढ़ करने लगी। इसने अपने सदस्यों से शामिल होने के लिए कहा और यह भी कहा कि अपने प्रभाव-क्षेत्र में काम करने वाले आम लोगों से कांग्रेस में शामिल होने के लिए कहे। 1938 में थोड़ी और आगे बढ़कर कम्युनिस्ट पार्टी ने स्वीकार किया कि "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारत की जनता का केन्द्रीय जनसंगठन है जो साम्राज्य के विरोध में खड़ा है।" 1939 में पी०सी० जोशी ने पार्टी के साप्ताहिक पत्र "नेशनल फ्रंट" में लिखा कि "आज हमारा सबसे बड़ा वर्ग-संघर्ष राष्ट्रीय संग्राम है और कांग्रेस इसका "मुख्य अंग" है। इसके साथ ही मजदूर वर्ग के नेतृत्त्व में राष्ट्रीय आन्दोलन को लाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के उद्देश्य पर भी पार्टी कायम रही, यह पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी थी। इस दौरान कम्युनिस्टों ने कांग्रेस के भीतर अत्यन्त मेहनत से काम किया। कांग्रेस की जिला और प्रान्तीय कांग्रेस समितियों में अनेक लोगों ने पदाधिकारियों के रूप में भी काम किया। लगभग 20 लोग तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। 1936-42 के दौरान केरल, आंध्र प्रदेश और पंजाब में उन्होंने अत्यन्त शक्तिशाली किसान आन्दोलन खड़ा किया। इससे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अत्यन्त बहादुर और उग्र साम्राज्य विरोधी की अपनी लोकप्रिय छवि उन्होंने दुबारा कायम कर ली और इसमें कोई शक नहीं कि समाजवाद और समाजवादी विचारों को लोकप्रिय बनाने में उनका प्रमुख योगदान रहा।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना किसकी पहल पर की गयी?

(क) महात्मा गाँधी (ख) ए०ओ० ह्यूम

(ग) गोपालकृष्ण गोखले (घ) बाल गंगाधर तिलक

उत्तर (ख) ए०ओ० ह्यूम

प्र.2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन कब और कहाँ हुआ था?

(क) 28 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में

(ख) 28 दिसम्बर, 1885 को लखनऊ में

(ग) 25 दिसम्बर, 1885 को सूरत में

(घ) 25 दिसम्बर, 1885 को दिल्ली में

उत्तर (क) 28 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में

प्र.3. कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता किसके द्वारा की गयी?

(क) दादा भाई नौरोजी (ख) व्योमेशचंद्र बनर्जी

(ग) वी० राघवाचार्य (घ) फिरोजशाह मेहता

उत्तर (ख) व्योमेशचंद्र बनर्जी

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. 'आर्य समाज' के संस्थापक कौन थे?
(क) बाल गंगाधर तिलक (ख) राजा राममोहन राय
(ग) स्वामी दयानन्द सरस्वती (घ) स्वामी विवेकानन्द
उत्तर (ग) स्वामी दयानन्द सरस्वती

प्र.5. राजा राममोहन राय द्वारा किसकी स्थापना की गयी?
(क) ब्रह्म समाज (ख) आर्य समाज
(ग) थियोसोफिकल सोसाइटी (घ) पूना सार्वजनिक सभा
उत्तर (क) ब्रह्म समाज

प्र.6. 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' किसके शासन में पारित किया गया?
(क) लॉर्ड लिटन (ख) लॉर्ड कर्जन (ग) लॉर्ड क्लाइव (घ) लॉर्ड वैवेल
उत्तर (क) लॉर्ड लिटन

प्र.7. 'पूना सार्वजनिक सभा' की स्थापना किसके द्वारा की गयी?
(क) फिरोजशाह मेहता (ख) बदरुद्दीन तैयब जी
(ग) महादेव गोविन्द रानाडे (घ) महात्मा गाँधी
उत्तर (ग) महादेव गोविन्द रानाडे

प्र.8. 'यंग इण्डिया' के लेखक कौन हैं?
(क) बाल गंगाधर तिलक (ख) सुभाषचन्द्र बोस
(ग) लाला लाजपतराय (घ) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
उत्तर (ग) लाला लाजपतराय

प्र.9. इल्बर्ट विधेयक किस वायसराय के काल में पेश किया गया था?
(क) लॉर्ड कैनिंग (ख) लॉर्ड रिपन (ग) लॉर्ड लिंटन (घ) लॉर्ड कर्जन
उत्तर (ख) लॉर्ड रिपन

प्र.10. 'आजाद हिन्द फौज' का गठन किसके द्वारा किया गया था?
(क) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (ख) लाला लाजपतराय
(ग) सुभाषचंद्र बोस (घ) बाल गंगाधर तिलक
उत्तर (ग) सुभाषचंद्र बोस

प्र.11. 'ब्रिटिश इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना किसके द्वारा की गयी थी?
(क) ए०ओ० ह्यूम (ख) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
(ग) दादाभाई नौरोजी (घ) फिरोजशाह मेहता
उत्तर (ग) दादाभाई नौरोजी

प्र.12. 'भारत सेवक समाज' के संस्थापक कौन थे?
(क) गोपालकृष्ण गोखले (ख) दादाभाई नौरोजी (ग) एनी बेसेन्ट (घ) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
उत्तर (क) गोपालकृष्ण गोखले

प्र.13. भारत में उग्र राष्ट्रीयता के उदय का कारण क्या था?
(क) उदारवादियों की पद्धति से असन्तोष
(ख) धार्मिक पुनरुत्थानवाद और सांस्कृतिक नवजागरण
(ग) उपनिवेशों में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार
(घ) उपर्युक्त सभी कारण
उत्तर (घ) उपर्युक्त सभी कारण

TOUCH 'n' PASS

प्र.14. 1905 में बंगाल का विभाजन किसके द्वारा किया गया?
(क) लॉर्ड कैनिंग (ख) लॉर्ड कर्जन (ग) लॉर्ड वैवेल (घ) लॉर्ड लिटन
उत्तर (ख) लॉर्ड कर्जन

प्र.15. उग्र राष्ट्रवादियों का साधन क्या था?
(क) बहिष्कार (ख) स्वदेशी (ग) राष्ट्रीय शिक्षा (घ) ये सभी साधन
उत्तर (घ) ये सभी साधन

प्र.16. 'दक्षिण शिक्षा समाज' की स्थापना किसके द्वारा की गयी?
(क) बाल गंगाधर तिलक (ख) लाला लाजपतराय
(ग) विपिनचन्द्र पाल (घ) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
उत्तर (क) बाल गंगाधर तिलक

प्र.17. 'स्वतन्त्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।' यह कथन किसका है?
(क) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (ख) फिरोजशाह मेहता
(ग) बाल गंगाधर तिलक (घ) लाल लाजपतराय
उत्तर (ग) बाल गंगाधर तिलक

प्र.18. 'मुझ पर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन में कील बनकर रहेगा।' ऐसा किसने कहा था?
(क) बाल गंगाधर तिलक (ख) लाला लाजपतराय
(ग) विपिनचन्द्र पाल (घ) भगत सिंह
उत्तर (क) बाल गंगाधर तिलक

प्र.19. अमेरिका में 'गदर पार्टी' की स्थापना किसके द्वारा की गयी?
(क) लाला हरदयाल (ख) भाई परमानंद
(ग) चंपकरमण पिल्लई (घ) श्यामजी कृष्ण वर्मा
उत्तर (क) लाला हरदयाल

प्र.20. कांग्रेस के उदारवादी व उग्रवादी नेताओं में वास्तविक रूप में विभाजन किस अधिवेशन में हुआ?
(क) बम्बई अधिवेशन (ख) सूरत अधिवेशन
(ग) कलकत्ता अधिवेशन (घ) पूना अधिवेशन
उत्तर (ख) सूरत अधिवेशन

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VI

स्वदेशी आन्दोलन और कांग्रेस में विभाजन
Swadeshi Movement and Split in Congress

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1907 के सूरत विभाजन का मुख्य कारण क्या था?
What was the main reason for the split of Surat in 1907?

उत्तर प्रारंभिक राष्ट्रवादियों और मुखर राष्ट्रवादियों के बीच 1907 में सूरत विभाजन के लिए जिम्मेदार दो बुनियादी कारण इस प्रकार है—**प्रारंभिक राष्ट्रवादी विचार-विमर्श द्वारा सरकार के साथ मामूली मुद्दों के समाधान की नीति में विश्वास करते थे। लेकिन चरमपंथी आंदोलन, हडताल और बहिष्कार में विश्वास करते थे।**

प्र.2. कांग्रेस का विभाजन कैसे हुआ?
How did Congress split?

उत्तर 12 नवंबर 1969 को, इंदिरा गाँधी (तत्कालीन प्रधानमंत्री) को पार्टी अनुशासन का उल्लंघन करने के लिए कांग्रेस पार्टी से निष्कासित कर दिया गया। पार्टी का अंत में विभाजन हुआ और साथ ही, इंदिरा गाँधी ने एक प्रतिद्वंद्वी संगठन की स्थापना की, जो कांग्रेस (आर/R) के रूप में जाना गया।

प्र.3. सूरत का प्राचीन नाम क्या था?
What was the ancient name of Surat?

उत्तर सूर्यपुर **सूरत** का प्राचीन नाम था और कोई सहायक दस्तावेज़ नहीं है जो इस बात पर प्रकाश डालता हो कि यह नाम वर्तमान में कब और कैसे बदल गया। ऐसा माना जाता है कि इस शहर की स्थापना 14वीं शताब्दी के आसपास गोपी नाम के एक ब्राह्मण ने की थी और इससे पहले यहाँ पर पारसी समुदाय का शासन था।

प्र.4. सूरत विभाजन के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर किसका नियंत्रण हुआ?
Who had controlled the Indian National Congress after the split of Surat?

उत्तर सूरत अंग्रेजों की फूट डालो, बाँटो और राज करो की नीति की जीत थी, और कुछ ही समय बाद, अंग्रेजों का मानना था कि कांग्रेस पर नरमपंथियों के मामलों पर उनका नियंत्रण है।

प्र.5. सूरत अधिवेशन की अध्यक्षता किसने की?
Who presided over the Surat session?

उत्तर सूरत अधिवेशन की अध्यक्षता रास बिहारी बोस ने की थी।

प्र.6. कांग्रेस का विभाजन कब हुआ?
When did the split of Congress take place?

उत्तर कांग्रेस का विभाजन सूरत अधिवेशन में हुआ था, इसे सूरत विभाजन या सूरत की फूट कहते हैं।

प्र.7. 1907 में विभाजन के पश्चात कांग्रेस के दोनों दलों में एकता कब स्थापित हुई?
When was the unity formed between the two parties of Congress after the split in 1907?

उत्तर 1907 में विभाजन के पश्चात कांग्रेस के दोनों दलों में एकता लखनऊ अधिवेशन 1916 में स्थापित हुई।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 1907 में कांग्रेस का सूरत विभाजन केवल उदारवादियों और अतिवादियों के मध्य उपस्थित मतभेदों का परिणाम न होकर ब्रिटिश सरकार की रणनीति का प्रतिफल भी था। विवेचना करें।

The Surat split of the Congress in 1907 was not only a result of the differences between the liberals and the extremists but also was the result of the strategy of the British government. Discuss.

उत्तर 1907 के 'सूरत विभाजन' की पृष्ठभूमि तो बंग-भंग आंदोलन से ही बननी शुरू हो गई थी, किन्तु तात्कालिक कारण यह था कि अतिवादी चाहते थे कि कांग्रेस का यह अधिवेशन नागपुर में हो, बाल गंगाधर तिलक या लाला लाजपतराय इसके अध्यक्ष बनें तथा इसमें स्वदेशी व बहिष्कार आंदोलन और राष्ट्रीय शिक्षा के पूर्ण समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया जाये। जबकि, उदारवादियों ने अधिवेशन को सूरत में आयोजित करने, रासबिहारी घोष को अध्यक्ष बनाने तथा स्वदेशी, बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव को वापिस लेने की जोरदार माँग की। दोनों ही पक्षों ने अपना अड़ियल रूख बनाये रखा तथा किसी भी समझौते की संभावना को नकारते हुए कांग्रेस के विभाजन को सुनिश्चित किया था।

किन्तु, यह विभाजन महज़ इन दोनों पक्षों के मध्य के विवादों का ही परिणाम नहीं था। इसके पीछे सरकार की भी सोची समझी रणनीति अपना कार्य कर रही थी। सरकार ने कांग्रेस के प्रारंभिक वर्षों से ही उदारवादियों के साथ सहयोगात्मक रूख बनाये रखा था। किन्तु, बाद के वर्षों में स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलनों के उभरने से कांग्रेस के प्रति सरकार का मोह भंग हो गया तथा उसने 'अवरोध, सांत्वना एवं दमन' की त्रिचरणीय रणनीति बनाई।

अपनी रणनीति के प्रथम चरण में सरकार ने उदारवादियों को डराने हेतु अतिवादियों के साधारण दमन की नीति अपनाई। द्वितीय चरण में सरकार ने उदारवादियों की कुछ माँगों पर सहमति जताकर उन्हें आश्वासन दिया कि यदि वो खुद को अतिवादियों से दूर रखें तो देश में संवैधानिक सुधार संभव हो सकते हैं। इस प्रकार उदारवादियों को अपने पक्ष में करने के तथा उन्हें अतिवादियों के खिलाफ करने के बाद सरकार के लिये अतिवादियों का दमन करना आसान हो गया।

दुर्भाग्य से उस दौर में जब पूरे राष्ट्र को अपने सभी राष्ट्रवादियों के समन्वित प्रयासों की जरूरत थी, उसी वक्त ये दोनों पक्ष (उदारवादी व अतिवादी) ब्रिटिश नीति के शिकार हो गए एवं उसकी परिणिति सूरत विभाजन के रूप में शामिल आई। कालान्तर में अपना मन्तव्य पूरा करने के पश्चात् सरकार के उदारवादियों की भी घोर उपेक्षा की। अत: यह कहना उचित प्रतीत होता है कि सूरत विभाजन अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार की रणनीति का प्रतिफल था।

प्र.2. सूरत विभाजन के परिणाम एवं कारणों का उल्लेख कीजिए।

Discuss the result and causes of the surat split.

उत्तर

सूरत विभाजन के परिणाम
(Result of Surat Split)

1. सूरत विभाजन का स्वदेशी आंदोलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस विभाजन के पश्चात 1 वर्ष के अंदर स्वदेशी आंदोलन भी समाप्त होगा।
2. अंग्रेजों को सूरत विभाजन से लाभ हुआ। अंग्रेजों ने गरमपंथी नेताओं पर सख्त कार्रवाई की तथा नरमपंथी की माँगों को भी नजरअंदाज किया।
3. सूरत विभाजन का कांग्रेस पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इस विभाजन के पश्चात कांग्रेस का सामाजिक आधार सीमित हो गया।
4. भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा तथा आंदोलन की गति धीमी हो गई।

सूरत विभाजन के कारण (Reason for Surat Split)

सूरत में हुए कांग्रेस के विभाजन के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं—

1. 1907 ई० में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्ष पद को लेकर गरमपंथी एवं नरमपंथी नेताओं में मतभेद उत्पन्न हो गया था। गरमपंथी लाला लाजपत राय को नेता बनाना चाहते थे, परंतु इस अधिवेशन में नरमपंथियों ने रास बिहारी बोस को अध्यक्ष बनाया।

TOUCH 'n PASS

2. बंगाल विभाजन के दौरान गरमपंथी स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन को बंगाल तक सीमित न रखकर उसे देश के अन्य भागों तक पहुँचाना चाहते थे। साथ ही वे विदेशी माल के बहिष्कार के अलावा ब्रिटेन को किसी तरह के सहयोग न दिए जाने की माँग कर रहे थे। परंतु इनके विपरीत नरमपंथी स्वदेशी व बहिष्कार को केवल बंगाल तथा विदेशी माल तक ही सीमित रखना चाहते थे।
3. प्रारंभ में 1907 ई० में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का स्थान नागपुर निश्चित किया गया था, किंतु यहाँ गरमपंथियों के अधिक प्रभाव को देखते हुए नरमपंथी नेता यह अधिवेशन सूरत में आयोजित करवाने में सफल रहे थे। इससे भी गरमपंथियों में आक्रोश था।
4. सूरत विभाजन के पीछे प्रमुख कारण व्यक्तित्व की टकराहट थी। वस्तुत: इस अधिवेशन के पूर्व तिलक के शिष्य आगरकर रानाड़े खेमे में चले गए थे, जबकि तिलक तथा रानाड़े के गुट में व्यक्तिगत विरोध था।

प्र.3. बंगाल विभाजन पर टिप्पणी कीजिए।
Write a note on Partition of Bengal.

उत्तर

बंगाल का विभाजन
(Partition of Bengal)

स्वदेशी आन्दोलन का उदय अंग्रेजी सरकार के बंगाल विभाजन के विरोध में एक व्यापक जन-आन्दोलन के रूप में हुआ। ब्रिटिश सरकार के बंगाल विभाजन के निर्णय से बंगाल समेत देशवासी इतने क्रोधित और क्षुब्ध हुए, वह अप्रत्याशित था। उस समय बंगाल की आबादी सात करोड़ पचासी लाख थी। जो भारत की कुल आबादी का लगभग चौथाई था। उस समय उड़ीसा और बिहार भी बंगाल के हिस्से थे। इतने बड़े राज्य का प्रशासन चलाना वास्तव में कठिन कार्य था, लेकिन अंग्रेजों ने इस राज्य के बँटवारे का फैसला प्रशासनिक कारणों से न करके राजनीतिक कारणों से किया।

19वीं सदी ज्यों-ज्यों अपने अन्तिम पड़ाव की ओर जा रही थी भारत में राष्ट्रीय चेतना विकसित होती जा रही थी और एक जुझारू रुख अख्तियार करती जा रही थी। इस समय भारतीय राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र बंगाल था। अंग्रेजों ने इसी राष्ट्रीय चेतना पर प्रहार करने के लिए बंगाल के विभाजन का निर्णय किया। उस समय के वायसराय लॉर्ड कर्जन के अनुसार, "अंग्रेजी हुकूमत का यह प्रयास कलकत्ता को सिंहासनच्युत करना था, बंगाली आबादी का बँटवारा करना था, एक ऐसे केन्द्र को समाप्त करना था जहाँ से बंगाल व पूरे देश में कांग्रेस पार्टी का संचालन होता था, साजिशें रची जाती थीं।" भारत सरकार के तत्कालीन गृह सचिव राईसले का भी कहना था, "अविभाजित बंगाल एक बड़ी ताकत है। विभाजित होने से यह कमजोर हो जाएगी, कांग्रेसी नेताओं की यह आशंका सही है और इसकी यह आशंका हमारी योजना की सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण चीज है। हमारा मुख्य उद्देश्य बंगाल का बँटवारा करना है, जिससे हमारे दुश्मन बँट जाएँ, कमजोर पड़ जाएँ।"

ज्यों ही बंगाल विभाजन के प्रस्ताव की खबर बंगाल में आग की तरह फैली और विरोध की आवाज उठने लगी। कर्जन इस पर बहुत तिलमिलाए और गृह सचिव को लिखा, "यदि हमने इस विरोध को अभी नहीं दबाया तो हम बंगाल को भी कभी विभाजित नहीं कर पाएँगे, विरोध को न दबा पाने का मतलब कि तुम पहले से ही मजबूत एक ताकत को और भी मजबूत बनाने का मौका दोगे। एक ऐसी ताकत को, जो भविष्य में हमारे लिए और भी संकट पैदा करेगी।"

बंगाल विभाजन का मकसद सिर्फ यह नहीं था कि बंगालवासियों को दो प्रशासनिक हिस्सों में बाँटकर उनके प्रभाव को कम किया जाए। ब्रिटिश सरकार का मकसद मूल बंगाल में बंगालियों की आबादी कम कर उन्हें अल्पसंख्यक बनाना था। मूल बंगाल में एक करोड़ सत्तर लाख बंगाली और तीन करोड़ सत्तर लाख उड़िया व हिन्दी भाषी लोगों को रखने की योजना थी।

बंगाल विभाजन के माध्यम से अंग्रेजों को एक और विभाजन करना था वह था—धार्मिक आधार पर विभाजन। 19वीं सदी के अंत में अंग्रेजों ने कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करने के लिए मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने का काम शुरू कर दिया था। अब एक बार फिर उन्होंने इस हथकण्डे को अपनाने की कोशिश की। ढाका में विभाजन के पक्ष में मुसलमानों को रिझाने कर्जन का भाषण कुटिल चाल का भण्डा फोड़ता है। उन्होंने कहा, "बंगाल विभाजन से ढाका बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी वाले नए प्रान्त की राजधानी बन जाएगा इससे पूर्वी बंगाल में मुसलमानों में एकता स्थापित होगी। मुसलमानों को बेहतर सुविधाएँ मिल सकेंगी और पूर्वी जिले कलकत्ता की राजशाही से मुक्त भी हो जाएँगे।"

इस प्रकार बंगाल विभाजन की योजना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर अंग्रेजों द्वारा किया गया एक सुनियोजित हमला था। कर्जन के उत्तराधिकारी मिण्टो शुरू में विभाजन के विरोधी थे। उनका कहना था कि जनमत के खिलाफ विभाजन उचित नहीं है। बाद में

TOUCH 'n' PASS

मिण्टो ने ही कहा, "केवल राजनीतिक दृष्टिकोण से ही देखें तो बंगाल का विभाजन जरूरी था, प्रशासनिक दिक्कतों को दरकिनार रख दीजिए।" इस तरह भारतीय राष्ट्रवादियों को विभाजन के पीछे ब्रिटिश सरकार के असली मंतव्य का पता चल गया, वे एक स्वर में इसके विरोध में उठ खड़े हुए और विभाजन विरोधी तथा स्वदेशी आन्दोलन शुरू हो गया।

प्र.4. बंगाल विभाजन के विरोध का उल्लेख कीजिए।

Discuss the oppose to the partition of Bengal.

उत्तर

बंगाल विभाजन का विरोध
(Oppose Bengal Partition)

दिसम्बर 1903 में बंगाल-विभाजन के प्रस्ताव की जानकारी लोगों को मिलीं यह खबर मिलते ही जबरदस्त विरोध की लहर उठ खड़ी हुई। विरोध कितना जबरदस्त था इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि पहले दो महीनों में ही केवल पूर्वी बंगाल में विभाजन के खिलाफ पाँच सौ बैठकें हुई। इनमें से ज्यादातर बैठकें ढाका, मेंमनसिंह और चटगांव में हुई। विभाजन के खिलाफ 40-50 हजार पर्चे पूरे बंगाल में बाँटे गए, जिनमें विभाजन से होने वाले खतरों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई थी। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, कृष्णकुमार मित्र, पृथ्वीचन्द्र राय व अन्य नेताओं के प्रस्तावों के खिलाफ 'बंगाली', 'हितवादी', 'संजीवनी' जैसे अखबारों व पत्रिकाओं के माध्यम से आन्दोलन छेड़ा। मार्च, 1904 और जनवरी 1905 में कलकत्ता के टाउन हाल में कई विशाल विरोध सभाएँ हुई। इन सभाओं में दूर-दराज से आए अनेक प्रतिभागियों ने भाग लिया। भारत सरकार के गृह सचिव के नाम अनेक विरोध याचिकाएँ भेजी गई। इनमें से कुछ याचिकाओं पर सत्तर हजार से भी ज्यादा लोगों के हस्ताक्षर थे। उस जमाने की राजनीतिक चेतना को देखते हुए यह संख्या बहुत अधिक थी। बड़े जमींदार भी जो अब तक अंग्रेजी हुकूमत की जी हजूरी करते थे अब कांग्रेस के साथ हो लिए।

यह 1903 से 1905 के मध्य की अवधि थी। आवेदन पत्र, स्मृति पत्र, भाषणों व जन सभाओं का आयोजन और प्रेस के माध्यम से प्रचार, सबकुछ बड़ी तेजी के साथ शुरू हो गया था। मुख्य उद्देश्य था विभाजन प्रस्ताव के खिलाफ भारत व इंग्लैण्ड में जनमत तैयार करना। आन्दोलनकारियों को विश्वास था कि उससे अंग्रेजी हुकूमत पर दबाव पड़ेगा और यह विभाजन जैसा अन्यायी कदम उठाने से हिचकेगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, अंग्रेजी सरकार पर विरोध का कोई असर नहीं पड़ा और 19 जुलाई 1905 को बंगाल विभाजन के निर्णय की घोषणा कर दी गई। यह आन्दोलनकारियों और विभाजन विरोधी जनता के मुँह पर तमाचा था। जनता और नेताओं ने महसूस किया कि ज्ञापनों और आवेदनों की लड़ाई से कुछ हासिल होने वाला नहीं है। संघर्ष का कोई दूसरा तरीका अपनाना ही होगा और हुआ भी ऐसा। समूचे आन्दोलन ने एक नई दिशा पकड़ी। विभाजन के निर्णय की घोषणा के तुरन्त बाद दिनाजपुर, याचना फरीदपुर, टंगाईल, जैसौर, ढाका, वीरभूमि व अन्य कस्बों में विरोध सभाएँ आयोजित की गईं, जहाँ विदेशी माल के विरोध की प्रतिज्ञा की गई, कलकत्ता में भी अनेक विरोध बैठकें की गई।

7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउन हाल में एक ऐतिहासिक बैठक में स्वदेशी आन्दोलन की विधिवत घोषणा की गई। विभाजन के विरोध में अचानक फूटा और बिफरा यह आन्दोलन अब संगठित होने लगा। इसे केन्द्रीय नेतृत्व और सही दशा मिली। 7 अगस्त की बैठक में ऐतिहासिक 'बहिष्कार प्रस्ताव' पारित हुआ। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे अनेक नरमपंथी नेता भी देश के दौरे पर निकल पड़े और लोगों के विदेश के कपड़े और नमक के बहिष्कार करने की अपील करने लगे। पहली सितम्बर को सरकार ने घोषणा की कि विभाजन 16 अक्टूबर 1905 से प्रभावित होगा। इस घोषणा के बाद तो बहिष्कार आन्दोलन ने और जोर पकड़ा। हर रोज बैठकें होने लगीं और विदेशी माल के बहिष्कार का नारा बुलन्द होने लगा। विरोध बैठकों में भारी जन समूह इकट्ठा होता था। बारीसाल की बैठक में दस से बारह हजार लोग इकट्ठा हुए थे। विदेशी माल के बहिष्कार का आह्वान घर-घर पहुँच गया। इसका अंदाज इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सितम्बर 1904 से सितम्बर 1905 के बीच कलकत्ता के बाहर कई जिलों में अंग्रेजी कपड़ों की बिक्री से आय पाँच से पन्द्रह गुना तक कम हो गई।

16 अक्टूबर 1905 का दिन पूरे बंगाल में शोक दिवस के रूप में मनाया गया। घरों में चूल्हा नहीं जला, लोगों ने उपवास रखा और कलकत्ता में हड़ताल घोषित की गई। जनता ने जुलूस निकाला। सवेरे जत्थे-के-जत्थे लोगों ने गंगा स्नान किया और फिर सड़कों पर वन्देमातरम गाते हुए प्रदर्शन करने लगे; यह वन्देमातरम् समूचे आन्दोलन की ओर से युद्ध की दुन्दभी था। लोगों ने एक-दूसरे के हाथ पर राखियाँ बाँधी, यह जताने के लिए बंगाल को बाँटकर अंग्रेज उनकी एकता में दरार नहीं डाल सकते। बाद में दिन में आनन्द मोहन बोस और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने दो विशाल जनसभाओं को सम्बोधित किया। एक जनसभा में पचास हजार तथा

दूसरी में पचहत्तर हजार लोग इकट्ठे हो गए थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के झण्डे तले इससे पहले इतनी बड़ी संख्या में लोग इकट्ठे नहीं हुए थे। इन बैठकों के कुछ ही घण्टों के भीतर आन्दोलन के लिए पचास हजार रुपए इकट्ठे हो गए।

प्र.5. स्वदेशी आन्दोलनों के अन्त पर टिप्पणी कीजिए।
Comment on the end of the Swadeshi Movement.

उत्तर

स्वदेशी आन्दोलन का अन्त
(End of Swadeshi Movement)

1908 के मध्य तक आते-आते स्वदेशी आन्दोलन की ऊर्जा खत्म हो गई। इसके अनेक कारण थे। पहला तो यह कि आन्दोलन के खतरे को सरकार भाँप गई और उसने इसे निमर्मतापूर्वक दबाना शुरू कर दिया। दमनचक्र शुरू हो गया। सार्वजनिक सभाओं, प्रदर्शनों के समर्थक छात्रों को सरकारी स्कूलों से निकाला जाने लगा, सरकारी नौकरियों के दरवाजे इनके लिए बंद होने लगे, इन पर जुर्माना किया गया और पुलिस ने बेरहमी से पिटायी की। बारीसाल सम्मेलन में पुलिस ने जिस निर्ममता से लोगों की पिटाई की थी वह अपने आप में इस बात का सबूत है कि सरकार आन्दोलन के प्रति क्या रवैया अपनाए हुए थी।

दूसरा कारण था कांग्रेस पार्टी में आपसी मतभेद। 1907 में कांग्रेस विभाजन ने स्वदेशी आन्दोलन को बहुत बड़ी क्षति पहुँचाई हालांकि स्वदेशी आन्दोलन का दायरा बंगाल के बाहर तक फैला था, लेकिन बंगाल को छोड़कर देश का बाकी हिस्सा आधुनिक विचारधारा व संघर्ष को अपनाने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं था। अंग्रेजी हुकूमत ने इसका फायदा उठाया और दमन चक्र चालू हो गया। 1907 से 1908 के बीच बंगाल के नौ बड़े नेता जिनमें अश्विनी कुमार दत्त और कृष्ण कुमार मित्रा भी थे, निर्वासित कर दिए गए। तिलक को छः वर्ष की कैद हुई। पंजाब के अजीतसिंह और लाला लाजपतराय को निर्वासित किया गया तथा मद्रास के चिदम्बरम पिल्लै एवं आंध्र के हरिसर्वोत्तम राव को गिरफ्तार कर लिया गया। बिपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोष ने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया। इस प्रकार एकाएक समूचा आन्दोलन नेतृत्वहीन हो गया।

तीसरा कारण यह था कि स्वदेशी आन्दोलन के पास कोई प्रभावी संगठन नहीं था, आन्दोलन में तमाम गाँधीवादी तरीके जैसे अहिंसक असहयोग, जेलभरो आन्दोलन, सामाजिक सुधार, गाँवों में रचनात्मक कार्य इत्यादि अपनाए, लेकिन संगठन के अभाव में आन्दोलन इन तरीकों को कोई अनुशासित केन्द्रीय दिशा देने में असफल रहा। इन तमाम तरीकों को अनुशासित ढंग से असली जामा नहीं पहनाया जा सका, जैसा कि बाद में गांधी जी ने किया।

आखिरी बात यह है कि कोई जनान्दोलन लगातार नहीं चल सकता। इनमें एक ठहराव आता है। जब क्रांतिकारी शक्तियाँ अगले संघर्ष के लिए तैयारी करती हैं, जनमत तैयार होता है। इस स्वदेशी आन्दोलन के बाद भी ऐसा ही हुआ।

1908 के मध्य में जब यह आन्दोलन खत्म हुआ तो इसके कुछ समय बाद क्रांतिकारी आतंकवाद की शुरुआत हुई। स्वदेशी आन्दोलन ने नौजवानों के भीतर संघर्ष की चिंगारी सुलगाई थी। राष्ट्रीयता तथा सामूहिक राजनीतिक संघर्ष का पाठ पढ़ाया था, लेकिन इस समय ये क्रांतिकारी युवक अपने को अकेला पा रहे थे। स्वदेशी आन्दोलन समाप्तप्राय था और अंग्रेजी हुकूमत बेइंतहा जुल्म ढाती जा रही थी। निराश युवकों ने अलग-अलग अपने-अपने ढंग से आतंकवादी गतिविधियों का सहारा लिया। यानी यह अब तक के सामूहिक राजनीतिक संघर्ष से बिल्कुल भिन्न तरीका था।

इस प्रकार स्वदेशी आन्दोलन की समाप्ति के साथ भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का एक युग समाप्त हो गया। यह कहना गलत होगा कि स्वदेशी आन्दोलन असफल रहा। आन्दोलन के समाज के उस बड़े तबके में राष्ट्रीयता की चेतना का संचार किया जो उससे पहले राष्ट्रीयता के बारे में अनभिज्ञ था। इस आन्दोलन ने औपनिवेशिक विचारधारा तथा अंग्रेजी हुकूमत को काफी हद तक क्षति पहुँचाई और सांस्कृतिक जीवन को जितना प्रभावित किया उसकी इतिहास में मिसाल मिलनी मुश्किल है।

इस आन्दोलन ने जनमत तैयार करने के अनेक नए तरीके ईजाद किए हालांकि इन तरीकों को वह खुद अच्छी तरह इस्तेमाल न कर सका। लेकिन स्वदेशी आन्दोलन की सफलता को इस तर्क पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यही संघर्ष भावी राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव बनी।

प्र.6. कांग्रेस के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
What were the aims of Congress? Discuss.

उत्तर

कांग्रेस के उद्देश्य
(Objectives of Congress)

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सभापति ब्योमेशचन्द्र बैनर्जी ने इस संस्था के उद्देश्य निम्न प्रकार बताए थे—

1. साम्राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले कार्यकर्त्ताओं में जो भारतीय हितों के लिए प्रयत्नशील है। आपसी सम्पर्क और मित्रता को प्रोत्साहन देना।
2. समस्त देशवासियों में वंश, धर्म तथा प्रान्त सम्बन्धित दूषित संस्कारों को मिटाकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना।
3. महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा करने के बाद प्राप्त परिपक्व सम्मतियों का संग्रह करना।
4. उस नीति को निर्धारित करना, जिसके अनुसार भारत के राजनीतिज्ञ देश हित के लिए कठोर कार्य कर सकें।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में कई प्रस्ताव पारित किए गए, जिनके द्वारा प्रशासनिक सुधारों की माँग की गई। प्रथम प्रस्ताव के अनुसार, भारतीय प्रशासन की जाँच के लिए एक शाही आयोग नियुक्त किए जाने की माँग की गई। दूसरे प्रस्ताव के अनुसार इंग्लैण्ड में स्थित इण्डिया कौंसिल को समाप्त करने के लिए निवेदन किया गया। तीसरे प्रस्ताव के अनुसार, परिषद् के मनोनीत सदस्यों के स्थान पर चुने गए प्रतिनिधि सम्मिलित किए जाएँ और उन्हें प्रश्न पूछने का अधिकार दिया जाए।

प्र.7. उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवादी विचारधारा का निर्माण किस प्रकार हुआ? स्पष्ट कीजिए।
How did anti-colonial nationalist ideology form? Clarify it.

उत्तर

उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवादी विचारधारा का निर्माण
(Formation of Anti-colonism Nationalist Ideology)

उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए यह जरूरी था कि पहले तो उपनिवेशवाद को ठीक तरह से समझा जाए और फिर इस समझ के आधार पर एक राष्ट्रवादी विचारधारा विकसित की जाए। शुरुआती दौर में राष्ट्रवादी नेता इस मामले में छात्र भी थे और शिक्षक थी। 1870 और 1880 के दशकों में उपनिवेशवाद विरोधी कोई बनी बनाई विचारधारा पहले से मौजूद नहीं थी। अपने अनुभवों और अपने समय के यथार्थ को ठीक-ठीक परखते हुए इन नेताओं को खुद ही ऐसी एक विचारधारा विकसित करनी थी।

जाहिर है कि किसी वैचारिक संघर्ष के बिना कोई राष्ट्रीय संघर्ष छेड़ा ही नहीं जा सकता था। इन नेताओं को लोगों को यह समझाना था कि हम एक राष्ट्र है और उपनिवेशवाद हमारा दुश्मन और इसी दुश्मन के खिलाफ हमारा संघर्ष है। उन्हें बहुत से सवालों के जवाब तलासने थे। मिसाल के तौर पर कुछ सवाल ये थे कि क्या ब्रिटेन भारत के हित के लिए भारत पर शासन कर रहा है? क्या शासकों और शासितों के हित एक-दूसरे से मेल खाते हैं या इन दोनों के हितों में एक बुनियादी अंतर्विरोध है? फिर क्या भारतीय जनता के यह अंतर्विरोध भारत में सरकार चला रहे ब्रिटिश अफरशाहों के साथ है। ब्रिटानी सरकार के साथ है या उपनिवेशवादी तन्त्र के साथ? क्या भारतीय जनता का लड़ाई विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के मुकाबले टिक सकेगी? और यह लड़ाई कैसे चलाई जाएगी?

इन और इन जैसे ही दूसरे कई सवालों के जवाब तलाशने के दौर में कई गलतियाँ भी हुई। जैसे कि उस दौर के राष्ट्रवादी नेता कम-से-कम बीसवीं सदी की शुरुआत तक तो उपनिवेशवादी राज्य का स्वरूप ही समझने में विफल रहे। लेकिन तब इस तरह की कुछ गलतियों को किसी तरह टाला भी नहीं जा सकता था।

यह ठीक है कि उस समय भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ कोई जन-आन्दोलन नहीं चलाया। लेकिन उन्होंने उसके खिलाफ वैचारिक संघर्ष जरूर शुरू किया और चलाया। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रवादी या साम्राज्यवाद विरोधी कोई संघर्ष उपनिवेशवाद-विरोधी कोई आयाम ग्रहण करने से पहले उपनिवेशवाद के बारे में संघर्ष होता है और कांग्रेस के संस्थापक नेताओं के उपनिवेशवाद के बारे में यह संघर्ष वाकई बहुत अक्लमंदी से चलाया।

शुरू से कांग्रेस के अपने आपको एक पारी के रूप में नहीं, बल्कि एक आन्दोलन के रूप में लिया। केवल उन बुनियादों और व्यापक लक्ष्यों पर सहमति के अलावा कांग्रेस में शामिल होने के लिए किसी और विशेष प्रकार की राजनीतिक या सैद्धांतिक प्रतिबद्धता जरूरी नहीं थी। एक आन्दोलन के रूप में उसने लोकतन्त्र और धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रवाद के प्रतिबद्ध अपने समय की सभी राजनीतिक प्रवृत्तियों, विचारधाराओं और सामाजिक वर्गों व समूहों के साथ अपने को जोड़कर रखा।

सारांश यह है कि उस दौर के राष्ट्रवादी नेताओं के बुनियादी लक्ष्य ये थे कि सबसे पहले एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव रखी जाए, जनता में राजनीतिक चेतना पैदा की जाए और उपनिवेशवाद के खिलाफ एक राष्ट्रवादी विचारधारा का विकास किया जाए और उसका प्रचार किया जाए।

प्र.8. कांग्रेस के स्वरूप पर टिप्पणी कीजिए।
Comment on the form of Congress.

उत्तर

कांग्रेस का स्वरूप
(Form of Congress)

कांग्रेस आरम्भ से ही एक राष्ट्रीय संस्था थी। इसके द्वारा सभी जातियों तथा वर्गों के लिए खुले थे। इसकी प्रगति तथा विकास में देश की लगभग सभी प्रमुख जातियों के प्रतिनिधियों का हाथ था। इसके प्रथम अध्यक्ष उमेश चन्द्र बैनर्जी भारतीय ईसाई थे। दूसरे दादाभाई नौरोजी पारसी थे। तीसरे अध्यक्ष बदरूद्दीन तैय्यबजी थे जो जाति से मुसलमान थे। चौथे व पाँचवें अध्यक्ष जॉर्ज यूला तथा सर विलियम वेडरबर्न अंग्रेज थे। इस संस्था का जन्मदाता ह्यूम एक अंग्रेज अधिकारी था। प्रो० हीरालाल सिंह लिखते हैं, "कांग्रेस के कार्यक्रम में एक भी ऐसी बात न थी जिसके विरुद्ध कोई उँगली उठा सकता।" कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप की चर्चा करते हुए महात्मा गाँधी ने द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस में कहा था, "कांग्रेस सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय है। यह किसी विशेष जाति वर्ग या हित की प्रतिनिधि नहीं है। यह समस्त भारतीय हितों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज के मस्तिष्क में हुई। ए०ओ० ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान पारसियों दादाभाई नौरोजी और फिरोजशाह मेहता ने इसका पोषण किया। प्रारम्भ में ही कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, एग्लो इण्डियन आदि शामिल थे बल्कि मुझे यह कहना चाहिए कि इसमें सब धर्मों, सम्प्रदायों और हितों का पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था।"

कुछ इतिहासकार कांग्रेस को एक राष्ट्रीय संस्था इसलिए भी नहीं मानते कि इसके अधिकांश सदस्य और पदाधिकारी हिन्दू थे। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत की अधिकांश जनता हिन्दू है। कांग्रेस में मुसलमानों की संख्या इसलिए कम रही कि सैयद अहमद खाँ और कई अन्य मुसलमान नेता अपने सहधर्मियों को कांग्रेस के बाहर रखने का पूरा प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन कांग्रेस ने सदैव मुसलमानों सहित सभी वर्गों के हितों की रक्षा का पूरा प्रयास किया। उसकी गतिविधियों और कार्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि वह सदैव एक राष्ट्रीय संगठन के रूप में कार्य करती रही।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. स्वदेशी आन्दोलन के फैलाव, गरमपंथियों का बोलबाला एवं स्वावलम्बन के नारे पर विस्तृत वर्णन कीजिए।
Discuss in detail about expansion of Swadeshi Movement, influence of Extremist and slogan of self-reliance.

उत्तर

आन्दोलन का फैलाव
(Prevalence of Movement)

स्वदेशी व बहिष्कार आन्दोलन का संदेश पूरे देश में फैल गया। लोकमान्य तिलक ने पूरे देश में विशेषकर बम्बई और पुणे में इस आन्दोलन का प्रचार किया। अजीतसिंह और लाला लाजपतराय ने पंजाब व उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में इस आन्दोलन को पहुँचाया। उत्तर भारत में रावलपिंडी, कांगड़ा, मुल्तान और हरिद्वार में स्वदेशी आन्दोलन ने खूब जोर पकड़ा। सैयद हैदर रजा ने दिल्ली में इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। चिदम्बरम पिल्लै ने मद्रास प्रेसीडेंसी में इसका नेतृत्व किया, जहाँ बिपिनचन्द्र पाल ने अपने भाषणों से इस आन्दोलन को और अधिक मजबूत बनाया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस आन्दोलन के लिए काम करना शुरू किया। 1905 में गोखले की अध्यक्षता में हुए बनारस अधिवेशन का समर्थन किया। तिलक, बिपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय और अरविन्द घोष जैसे गरमपंथी नेताओं के समर्थक इस आन्दोलन को पूरे देश में फैलाना चाहते थे। वे महज स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन से ही संतुष्ट नहीं थे। अब लक्ष्य था 'स्वराज'। विभाजन को समाप्त करने की माँग अब बहुत छोटा मुद्दा रह गई थी। लेकिन गरमपंथी नेता अभी इसके लिए तैयार नहीं थे।

विभाजन के विरोध से उत्पन्न आन्दोलन अब नई राह पकड़ने लगा। नए लक्ष्य के लिए नए संघर्ष की राह, इसका आधार भी बहुत तेजी से मजबूत होने लगा। बारीसाल सम्मेलन (1906) के अध्यक्ष एस० अब्दुल रसूल ने कहा था, "पिछले पचास से सौ सालों के दौरान हम जो हासिल नहीं कर सके वह हमने छः महीनों में हासिल कर लिया है और हमें यहाँ तक पहुँचाया है बंगाल विभाजन ने। बंगाल जैसी शर्मनाक घटना ने महान् राष्ट्रीय आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया है।"

TOUCH 'n' PASS

बहरहाल 1906 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा में एक सही कदम उठाया। दादा भाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य ब्रिटेन या उसके उपनिवेशों की तरह भारत में अपनी सरकार का गठन करना अर्थात स्वराज की स्थापना था। फिलहाल कांग्रेस के नरमपंथी और गरमपंथी खेमों में से आन्दोलन की गति और संघर्ष के तरीकों को लेकर मतभेद चलता रहा और 1907 में सूरत अधिवेशन में स्वदेशी आन्दोलन को लेकर पार्टी विभाजित हो गई। इस विभाजन का स्वदेशी आन्दोलन पर गम्भीर प्रभाव पड़ा।

गरमपंथियों का बोलबाला (Swag of Extremists)

स्वदेशी आन्दोलन में गरमपंथियों का बोलबाला था। 1905 के बाद बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन पर उग्रवादियों की पकड़ मजबूत हो गई। जनता को आन्दोलन के लिए तैयार करने और संघर्ष के तमाम नए तरीके अपनाए जाने लगे। गरमपंथी राष्ट्रवादियों ने जनता के सामने अनेक विचार, योजना और तरीके रखे। व्यापक आन्दोलन के जरिए राजनीतिक स्वाधीनता हासिल करने का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए बहिष्कार आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन और शांतिपूर्ण प्रतिरोध तक ले जाना था। केवल विदेशी कपड़े का ही बहिष्कार नहीं, बल्कि सरकारी स्कूलों, अदालतों, उपाधियों, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार इसमें शामिल था। हड़ताल की भी बात की गई। उद्देश्य था कि प्रशासन एकदम पंगु हो जाए। भारतीय जनता के आर्थिक शोषण में अंग्रेजी व्यापारी असमर्थ रहे।

कुछ आन्दोलनकारियों का मानना था कि शांतिपूर्ण असहयोग आन्दोलन में सफलता मिल जाएगी। इनका मानना था कि यदि चौकीदार, सिपाही, सहायक, मुंसिफ और क्लर्क काम करना बंद कर दें तो मिनटों में ही देश में अंग्रेजी हुकूमत खत्म हो जाएगी। गोली बन्दूक और सिपाहियों को प्रशिक्षित करने की नौबत ही न आए लेकिन अरविन्द घोष जैसे गरमपंथी नेता इस बात की वकालत करते रहे कि यदि फिरंगी हुकूमत दमन का रास्ता अपनाएगी तो उसका हिंसक प्रतिरोध जायज होगा।

इस आन्दोलन में संघर्ष की जितनी भी धाराएँ फूटी, उनमें सबसे ज्यादा सफलता मिली विदेशी माल के बहिष्कार आन्दोलन को। यह आन्दोलन काफी लोकप्रिय और सफल रहा। बंगाल व देश के दूर-दराज के हिस्सों में विदेशी कपड़े की होली जलाई गई और विदेशी कपड़े बेचनेवाली दुकानों पर धरने दिए गए। औरतों ने विदेशी चूड़ियाँ पहनना व विदेशी बर्तनों का इस्तेमाल बंद कर दिया, धोबियों ने विदेशी कपड़े धोने से इन्कार कर दिया। यहाँ तक कि महन्तों ने विदेशी चीनी से बने प्रसाद को लेने से इन्कार कर दिया। इस आन्दोलन के चलते विशाल जनसभाओं और प्रदर्शनों की बाढ़ आ गई। जनमत तैयार करने का यह सबसे सशक्त तरीका सिद्ध हुआ। बड़े-बड़े शहरों से लेकर, जिलों, कस्बों, तालुकों, गाँवों व जनसभाओं के आयोजन से जनता में राजनीतिक चेतना आई। स्वराज के लिए मन मचलने लगा।

स्वावलम्बन का नारा (Slogan of Self-reliance)

स्वदेशी आन्दोलन ने जन साधारण के लिए स्वयंसेवी संगठनों की खूब मदद ली। इन संगठनों के आन्दोलनों के लिए जनमत तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण संगठन था 'स्वदेश बांधव समिति'। बारीसाल के एक अध्यापक अश्विनी कुमार दत्त के नेतृत्व में गठित इस समिति की 159 शाखाएँ पूरे जिले के दूर-दराज इलाकों में फैली थी। इस जिले में मुसलमानों की आबादी अधिक थी। अश्विनी कुमार दत्त बहुसंख्यक मुसलमान किसानों को आन्दोलन के लिए प्रेरित करने में सफल हुआ। जनता में राजनीतिक चेतना पैदा करने के लिए समिति ने उत्तेजक भाषणों और स्वदेशी गीतों का सहारा लिया, अपने सदस्यों को शारीरिक व नैतिक प्रशिक्षण दिया, अकाल तथा महामारी में राहत कार्य किए। स्कूल खोले, स्वदेशी दस्तकारी का प्रशिक्षण दिया और मुकदमे निबटाने के लिए पंच अदालतें बनाईं। अगस्त 1906 तक बारीसाल समिति ने 89 पंच अदालतों के जरिए 523 विवादों का निपटारा किया। बारीसाल समिति की जड़ें केवल बारीसाल तक ही सीमित नहीं थीं बल्कि ये बंगाल के अन्य हिस्सों में भी फैली हुई थी। अंग्रेजी सरकार इस समिति की बढ़ती लोकप्रियता और प्रभाव से बहुत चिन्तित थी।

स्वदेशी आन्दोलन ने अपने प्रचार के लिए पारम्परिक त्यौहारों, धार्मिक मेलों, लोक परम्पराओं, लोक संगीत, लोक नाट्य मंचों का भी सहारा लिया। गणपति महोत्सव व शिवाजी जयन्ती को तिलक ने बहुत लोकप्रिय बनाया और उनके माध्यम से स्वदेशी का प्रचार किया। यह महज पश्चिमी भारत तक ही सीमित नहीं था, बंगाल में भी इन त्यौहारों के माध्यम से स्वदेशी आन्दोलन का संदेश जनता तक पहुँचाया गया। लोक नाट्य परम्पराओं जैसे यात्रा के माध्यम से स्वदेशी आन्दोलन का संदेश गाँवों, कस्बों व देश के दूर-दराज के इलाकों में भी पहुँचा। ऐसे लोगों तक भी पहुँचा जो पहली बार आधुनिक राजनीतिक विचारों से परिचित हो रहे थे।

TOUCH 'n PASS

स्वदेशी आन्दोलन की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने 'आत्मनिर्भरता', 'आत्म शक्ति' का नारा दिया। आन्दोलनकारी नेताओं का मानना है कि सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने के लिए जनता में स्वावलम्बन की भावना भरना बहुत जरूरी है। स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता का प्रश्न राष्ट्रीय स्वाभिमान आदर और आत्मविश्वास के साथ जुड़ा था।

गाँवों के आर्थिक व सामाजिक पुनरुत्थान के लिए गाँवों में रचनात्मक कार्य शुरू करने की जरूरत महसूस की गई, लोगों में यह चेतना पैदा करने की कि अपनी प्रगति के लिए वे खुद आगे आएँ, रचनात्मक कार्यों में सामाजिक सुधार लागू करना तथा जाति प्रभुत्व, बाल विवाह, दहेज, शराबखोरी जैसी सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष छेड़ना शामिल था। आत्मनिर्भरता के लिए स्वदेशी अथवा राष्ट्रीय शिक्षा की भी जरूरत महसूस की गई।

टैगोर के शान्ति निकेतन की तर्ज पर बंगाल नेशनल कॉलेज की स्थापना की गई। इसके प्राचार्य बने अरविन्द। बहुत थोड़े समय में ही पूरे देश में अनेक राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हो गई। अगस्त 1906 में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् का गठन हुआ। इसमें उस समय में देश के सारे जाने-माने लोग शामिल थे। परिषद् का उद्देश्य था "राष्ट्रीय नियन्त्रण के तहत जनता को इस तरह की साहित्यिक, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा देना, जो राष्ट्रीय जीवन धारा से जुड़ी हो।" शिक्षा का माध्यम वे देशी भाषाएँ बनी जो क्षेत्र विशेष में प्रचलित थी। उद्देश्य था कि शिक्षा घर-घर पहुँचे। तकनीकी शिक्षा के लिए 'बंगाल इंस्टीट्यूट' की स्थापना की गई। चन्दा इकट्ठा कर कोष बनाया गया जिससे छात्रों को ऊँची शिक्षा के लिए जापान भेजा जा सकें।

आत्मनिर्भरता के लिए स्वदेशी उद्योगों की जरूरत महसूस की गई। लगभग इसी समय पूरे देश में तमाम स्वदेशी कल-कारखाने स्थापित होने लगे। कपड़ा मिलें, साबुन, माचिस के कारखाने, चर्म उद्योग, बैंक, बीमा कम्पनियाँ अस्तित्व में आईं। हालांकि इनमें से अधिकतर चल नहीं पाईं क्योंकि इनके मालिक व्यापारिक चतुराई और जोड़-तोड़ नहीं जानते थे। उन्होंने तो महज देशभक्ति के नाते स्वावलंबन के उद्देश्य से इन कारखानों की स्थापना की थी। कुछ कारखाने अवश्य जिन्दा रह पाए और अच्छा काम किया, जैसे आचार्य बी०सी० राय की बंगाल केमिकल्स फैक्टरी।

सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव (Impact Cultural Life)

स्वदेशी आन्दोलन का सबसे अधिक प्रभाव सांस्कृतिक क्षेत्र पर पड़ा। बंगला साहित्य विशेषकर काव्य के लिए तो यह स्वर्णकाल था। रविन्द्रनाथ टैगोर, रजनीकांत सेन, द्विजेन्द्रपाल राय, मुकुन्द दास, सैयद अबु मुहम्मद इत्यादि के उस समय के लिखे गीत, क्रान्तिकारी आतंकवादियों, नरमपंथियों, गाँधीवादियों और साम्यवादियों सबके लिए प्रेरणा स्रोत बने और आज भी ये गीत उतने ही लोकप्रिय हैं। टैगोर ने उस समय 'बंगलादेश' के स्वाधीनता संघर्ष को और तेज करने के लिए जो गीत लिखा था 'आमार सोनार बांगला' वह 1971 में बंगलादेश का राष्ट्रगान बना। ग्रामीण हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच उस समय लोकप्रिय लोक संगीत पर स्वदेशी आन्दोलन की गहरी छाप पड़ी।

कला के क्षेत्र में यही वह समय था जब रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय कला पर पाश्चात्य आधिपत्य को तोड़ा और मुगलों, राजपूतों की समृद्ध स्वदेशी पारम्परिक कलाओं व अजंता की चित्रकला से प्रेरणा लेनी शुरू कर दी। 1906 में स्थापित 'इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरिएण्टल आर्ट्स' की पहली छात्रवृत्ति भारतीय कला के मर्मज्ञ नंदलाल बोस को मिली। विज्ञान के क्षेत्र में जगदीश चन्द्र बोस, प्रफुल्लचन्द्र राय इत्यादि की उल्लेखनीय सफलताएँ, आविष्कार, स्वदेशी आन्दोलन को और भी मजबूत बनाने लगे। बहुआयामी कार्यक्रमों और गतिविधियों वाले इस स्वदेशी आन्दोलन में पहली बार समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को अपने दायरे में लिया। जनता का एक बहुत बड़ा हिस्सा पहली बार सक्रिय राष्ट्रवादी राजनीति में भागीदार बना। राष्ट्रीय आन्दोलन का सामाजिक दायरा काफी फैला और इसमें कुछ जमींदार, शहरी, निम्न मध्यम वर्ग के लोग शरीक हुए। पहली बार औरतें घर से बाहर निकलीं और प्रदर्शन में हिस्सा लेने लगीं एवं धरने पर बैठने लगीं। यही वह समय तथा जब पहली बार मजदूर वर्ग की आर्थिक कठिनाइयों को राजनीतिक स्तर पर उठाया गया था। उसे राजनीतिक संघर्ष से जोड़ा गया। आन्दोलनकारी नेता, जिनमें बहुत कुछ तत्कालीन अनेक राष्ट्रीय समाजवादी लहर से प्रभावित थे। विदेशी मालिकों के कारखानों में हड़ताल आयोजित करने लगे। ईस्टर्न रेलवे और क्लाईव जूट मिलें इसका उदाहरण हैं।

जहाँ तक किसानों, विशेषकर निचले तबके के किसानों को आन्दोलन के लिए तैयार करने की बात है, कहा जाता है कि स्वदेशी आन्दोलन इस मामले में असफल रहा। केवल बारीसाल इसका अपवाद माना जाता है लेकिन स्वदेशी आन्दोलन के छुट-पुट जगहों पर जितने किसानों को आन्दोलन के लिए तैयार किया था उनमें राजनीतिक चेतना जगाई वह अपने आपमें आन्दोलन की बहुत बड़ी सफलता थी। क्योंकि स्वदेशी आन्दोलन वास्तव में भारत में आधुनिक राजनीति की शुरुआत थी। समूचे किसान वर्ग को राजनीतिक संघर्ष के लिए तैयार न कर पाने की बात केवल स्वदेशी आन्दोलन के साथ ही नहीं जुड़ी है। स्वदेशी आन्दोलन के बाद

भारत में जो भी आन्दोलन हुए वे समूचे किसान वर्ग को प्रभावित नहीं कर सके। इनकी गतिविधियाँ भी क्षेत्र विशेष में सिमटकर रह गई। यह सच है कि किसान आन्दोलन के लिए किसानों को बड़े पैमाने पर संगठित नहीं किया जा सका, और किसान राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से जुड़ नहीं सके। लेकिन इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्वदेशी आन्दोलन में बैठकों, जन सभाओं, यात्राओं, प्रदर्शनों आदि के माध्यम से किसानों के एक बड़े तबके को आधुनिक राजनीतिक विचारधारा से परिचित करवाया।

साम्प्रदायिकता (Communalism)

जहाँ तक मुसलमानों का सवाल है स्वदेशी आन्दोलन समाज के विभिन्न तथ्यों के कुछ मुसलमानों को ही अपने साथ ले सका। बहुसंख्यक मुसलमानों ने साथ नहीं दिया, विशेषकर खेतिहर मुसलमानों ने। इसका प्रमुख कारण अंग्रेजी हुकूमत द्वारा मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का जहर घोलना था। अंग्रेजी हुकूमत स्वदेशी आन्दोलन को कमजोर करने के लिए समय-समय पर मुसलमानों को भड़काती रही, उनमें साम्प्रदायिकता का जहर घोलती रही। अंग्रेजी हुकूमत का साथ दिया बंगाल की तत्कालीन सामाजिक आर्थिक अवस्था ने। उस समय बंगाल के अधिकतर हिन्दू भू-स्वामी थे और मुसलमान खेतिहर मजदूर। अंग्रेजों ने मुसलमानों को खूब भड़काया और यही वह समय था, जब फिरंगी हुकूमत के इशारे पर 'इण्डियन मुस्लिम लीग' का गठन हुआ। ढाका के नवाब सलीमुल्लाह का इस्तेमाल विदेशी आन्दोलन के विरोध के रूप में किया गया। साम्प्रदायिक ताकतों ने स्वदेशी आन्दोलन को कमजोर करने के लिए मुल्लाओं और मौलवियों का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया और जब स्वदेशी आन्दोलन अपने चरम बिन्दु पर पहुँच रहा था तभी बंगाल में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे।

साम्प्रदायिकता के जहर ने तो स्वदेशी आन्दोलन को नुकसान पहुँचाया ही, खुद इस आन्दोलन के कुछ तरीकों से भी इसे क्षति पहुँची। हालांकि आन्दोलनकारियों ने इन तरीकों का इस्तेमाल बड़ी ईमानदारी से अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया था। ऐसे पारम्परिक रीति-रिवाजों, त्यौहारों और संस्थाओं का सहारा लेना, जिनका चरित्र बहुत हद तक धार्मिक था आन्दोलन के लिए नुकसानदेह साबित हुआ। हालांकि दुनिया में हर जगह जनता में पहली बार राजनीतिक चेतना पैदा करने के लिए उन्हीं चीजों का सहारा लिया जाता रहा है, किंतु समकालीन भारत की सामाजिक अवस्था शेष दुनिया से काफी भिन्न थी। जिस देश में स्वयं सरकार साम्प्रदायिकता को भड़का रही हो वहाँ धार्मिक रीति-रिवाजों और धार्मिक संस्थानों का सहारा लेना खतरनाक होता है। भारत में यही हुआ, साम्प्रदायिक ताकतों ने स्वदेशी आन्दोलन के उद्देश्यों को विकृत ढंग से पेश किया। यही नहीं सदियों के भाई-चारे और मेल-मिलाप से उपजी सांस्कृतिक परम्पराओं पर भी इन साम्प्रदायिक ताकतों ने साम्प्रदायिक मुलम्मा चढ़ा दिया। इसी कारण दुर्भाग्य से बंगाल के बहुसंख्यक मुसलमान स्वदेशी आन्दोलन में शरीक नहीं हुए और कुछ तो साम्प्रदायिक राजनीति के शिकार हो गए। इस साम्प्रदायिक राजनीति ने 1907 में बंगाल में हिन्दू-मुस्लिम दंगों को जन्म दिया।

प्र.2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पूर्वगामी संस्थाएँ एवं उसका प्रथम अधिवेशन का वर्णन कीजिए।
Discuss precursor (earlier) institutions of Congress and first session of Indian National Congress.

उत्तर

कांग्रेस की पूर्वगामी संस्थाएँ
(Preceder Associations of Congress)

भारत में राष्ट्रीय भावना के जागरण से उनमें राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संगठन की आवश्यकता अनुभव की। परिणामस्वरूप थोड़े ही समय में "ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन, बॉम्बे एसोसिएशन, पूना की सार्वजनिक सभा, इण्डियन लीग, इण्डियन एसोसिएशन आदि कई संस्थाएँ अस्तित्व में आईं। इन संस्थाओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसलिए हम इन्हें इण्डियन नेशनल कांग्रेस की अग्रगामी संस्थाओं के नाम से पुकारें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस सम्बन्ध में डॉ० आर०सी० मजूमदार लिखते हैं, "इण्डियन नेशनल कांग्रेस का उद्‌भव कोई आकस्मिक घटना न थी, न ही इसके तौर-तरीकों में कोई नयापन था। सन् 1883 और 1885 में होनेवाली नेशनल कान्फ्रेंस अपनी मौलिक रूपरेखा में काफी सीमा तक इसके अनुरूप थी।" 1885 ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। कांग्रेस की स्थापना तथा उसके कार्यों का अध्ययन करने से पूर्व कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्थाओं के बारे में जानना उपयोगी होगा।

1. **ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन**—ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना अक्टूबर 1851 ई० में कलकत्ता में की गई थी। इसके संस्थापक देश के अन्य भागों में भी इसकी शाखाएँ स्थापित करना चाहते थे, परन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली।

TOUCH 'n' PASS

इस संस्था के कर्णधार सर्व श्री राजेन्द्र लाल मित्र, राम गोपाल घोष, प्यारे चन्द्र मित्रा और हरिश्चन्द्र मुखर्जी थे, जिनके नेतृत्व में यह संस्था अपना कार्य करती थी। भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग रखनेवाली यह प्रथम संस्था थी। 1852 ई० में इस एसोसिएशन ने ब्रिटिश संसद को स्मृति पत्र भेजा, जिसमें निम्नलिखित माँगें प्रस्तुत की गई—(i) विधायी परिषदों में भारतीयों को शामिल किया जाए। (ii) ब्रिटेन के साथ भारत में भी प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था की जाए। (iii) भारतीय सरकार को कुछ सीमा तक आन्तरिक स्वतन्त्रता दी जाए। ब्रिटिश संसद में इस एसोसिएशन की माँगों को 1853 ई० के चार्टर एक्ट में पूरा करने का प्रयास किया था। इस संस्था ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

2. **इण्डिया लीग**—बंगाल के कुछ प्रगतिशील व्यक्तियों ने 1875 ई० में 'इण्डिया लीग' की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा देना और इनमें राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना था। कलकत्ता के एक अंग्रेजी दैनिक पत्र The Englishman ने इस सम्बन्ध में लिखा था कि "यह संस्था भारत में राजनीतिक चेतना का प्रमुख चिह्न है।" लेकिन यह संस्था अधिक समय तक जीवित न रह सकी क्योंकि इसका स्थान 'इण्डियन एसोसिएशन' ने ले लिया था।
3. **इण्डियन एसोसिएशन**—इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना 26 जुलाई 1876 ई० को कलकत्ते के इल्बर्ट हाल की एक सार्वजनिक सभा में हुई। इस सभा में 700 से अधिक व्यक्तियों ने भाग लिया। इस संस्था के कर्णधार सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी थे। उन्होंने इस संगठन के निम्न उद्देश्य बताए थे—(i) देश में शक्तिशाली जनमत का निर्माण करना, (ii) जन साधारण के हितों तथा उनकी आकांक्षाओं के आधार पर बनाकर भारतीयों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न करना, (iii) हिन्दू मुस्लिम मित्रता स्थापित करना एवं (iv) जन आन्दोलन में अधिक-से-अधिक लोगों को सम्मिलित करना।
1876 ई० में ब्रिटिश सरकार ने नागरिक सेवा में प्रवेश हेतु आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी थी। इस संघ ने सरकार की इस नीति का विरोध किया। उन्होंने भारतीयों को उनके विरुद्ध मिलकर आवाज उठाने की प्रेरणा दी। श्री बैनर्जी ने सम्पूर्ण देश का दौरा कर इस घोषणा के विरुद्ध जनमत जाग्रत किया। प्रो० हीरालाल सिंह लिखते हैं, "सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी का राजनीतिक जीवन 'इण्डियन सिविल सर्विस आन्दोलन' अधिक राजनीतिक आन्दोलन का अग्रसर बना इस एसोसिएशन ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट और शस्त्र अधिनियम के विरुद्ध संघर्ष किया। इस संस्था ने कांग्रेस की स्थापना की नींव रखी।
4. **बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन**—19वीं शताब्दी के आरम्भ में बॉम्बे एसोसिएशन की स्थापना की गई लेकिन उसे विशेष सफलता प्राप्त न हुई। इसके पश्चात् फिरोजशाह मेहता और बदरूद्दीन तैय्यबजी ने इसके स्थान पर बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन की स्थापना की। इस संस्था के प्रस्तावों, जुलूसों तथा इसी प्रकार के अन्य साधनों द्वारा राजनीतिक जागरण की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।
5. **पूना सार्वजनिक सभा (1867)**—महादेव गोविन्द रानाडे ने 1867 ई० में पूना में एक सार्वजनिक सभा की स्थापना की। इस संस्था का प्रमुख कार्य महाराष्ट्र के समाज में सुधार करना एवं जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना था। इस संस्था ने 19वीं सदी के अन्त तक महाराष्ट्र के लोगों में राजनीतिक चेतना फैलाने का स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म
(Birth of Indian National Congress)

लॉर्ड डफरिन के काल में 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ए०ओ० ह्यूम के द्वारा की गई थी। वह एक सेवानिवृत्त आई०सी०एस० अधिकारी था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का उद्देश्य भारतीयों में अंग्रेजों के विरुद्ध बढ़ते असन्तोष को रोकना तथा इसकी सहायता से ब्रिटिश राज्य को सुदृढ़ तथा सुरक्षित करना था। लाला लाजपत राय ने लिखा है, "इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना का मुख्य कारण यह था कि ह्यूम ब्रिटिश साम्राज्य की इन संकटों से रक्षा करना तथा उसको छिन्न-भिन्न होने से बचाना चाहते थे।" ह्यूम ने इसी उद्देश्य से 1 मार्च 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र लिखा। इसमें उन्होंने 50 नवयुवकों की माँग की, जो कि नि:स्वार्थ स्वतन्त्रता प्रेमी और नैतिक साहस रखने वाले हों। पत्र में ह्यूम ने लिखा है, "यदि आप लोग, देश की आशाओं के केन्द्र हैं, तथा उच्च शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं, अपने सुख-चैन तथा स्वार्थ को त्याग कर स्वाधीनता प्राप्त करने के काम में नहीं लग सकते ..... तब कहना होगा कि उन्नति की सब

आशाएँ व्यर्थ हैं, तथा भारत उसी प्रकार के शासन के योग्य है, जो उसे मिला हुआ है।'' पत्र के अन्त में ह्यूम ने लिखा था, ''आपके कन्धों पर रखा हुआ जूड़ा तब तक विद्यमान रहेगा, जब तक आप ध्रुव सत्य को समझकर उसके अनुसार कार्य करने को उद्यत न होंगे कि आत्म बलिदान तथा नि:सवार्थ कर्म ही स्थाई सुख तथा स्वतंत्रता के अचूक पथ प्रदर्शक हैं।''

ह्यूम ने अपनी योजना के सम्बन्ध में लॉर्ड डफरिन से भी बातचीत की। डफरिन ने ह्यूम द्वारा प्रस्तावित संगठन पर अपनी सहमति देते हुए कहा, ''भारत में ऐसी कोई संस्था नहीं है, जो इंग्लैण्ड के विरोधी दल की भाँति यहाँ भी कार्य कर सके और सरकार को यह बता सके कि शासन में क्या त्रुटियाँ हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है।'' लॉर्ड डफरिन ने यह भी कहा था, ''गवर्नर को ऐसी संस्थाओं की अध्यक्षता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि गवर्नर की उपस्थिति में लोग अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट नहीं कर सकेंगे।'' ह्यूम भारत में समाज सुधार करना चाहते थे इसलिए उन्होंने कहा था कि ''यह बहुत अच्छा होगा कि यदि भारत के मुख्य राजनीतिज्ञ एक स्थान पर इकट्ठे हों। सामाजिक मामलों पर विचार करें और एक-दूसरे के मित्र बनें। वह नहीं चाहता था कि ये लोग इकट्ठे होकर राजनीतिक मामलों पर बहस करे।'' नये संगठन की स्थापना से पूर्व ह्यूम इंग्लैण्ड गए और वहाँ उन्होंने लॉर्ड रिपन, डलहौजी, जॉन ब्राईट और स्लेग आदि राजनीतिज्ञों से भावी संगठन के बारे में विचार-विमर्श किया। भारत लौटने से पूर्व उन्होंने इंग्लैण्ड में ''भारत संसदीय समिति'' का संगठन किया। इस संगठन का प्रमुख कार्य भारतीय मामलों में ब्रिटिश संसद सदस्यों की रुचि उत्पन्न करना था।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन
(First Session of Congress)

ह्यूम ने इंग्लैण्ड से वापस आने पर कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन पूना में बुलाने का निश्चय किया। यह सम्मेलन 25 से 28 दिसम्बर 1885 ई० में बुलाया गया था। परन्तु पूना में हैजा फैल जाने के कारण सम्मेलन का स्थान बदलकर बम्बई कर दिया गया। 28 दिसम्बर 1885 ई० को दिन को 12 बजे बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज के विशाल भवन में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन आरम्भ हुआ। इसमें देश के विभिन्न भागों में 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, दिनशा इदुलजी वाचा, काशीनाथ तैलग, एन०जी० चन्दावरकर, वी० राघवाचार्य, एस० सुब्रह्मण्यम आदि प्रमुख थे। इस सम्मेलन की अध्यक्षता कलकत्ते के प्रमुख बैरिस्टर उमेशचन्द्र बनर्जी ने की। इसमें ह्यूम तथा अन्य कई सरकारी अधिकारियों ने भाग लिया, अधिवेशन में कई प्रस्ताव पारित किए गए, अधिवेशन की समाप्ति पर ह्यूम के कहने पर कांग्रेस के सदस्यों ने 'महारानी विक्टोरिया की जय' के नारे लगाए। इस प्रकार कांग्रेस की स्थापना सरकार की शुभ कामनाओं से हुई। कुपलैण्ड ने लिखा है, ''भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश राज की शिशु थी और ब्रिटिश अधिकारियों ने उसके पालने को आशीर्वाद दिया।'' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म पर टिप्पणी करते हुए डॉ० ताराचन्द ने लिखा है, ''कांग्रेस का जन्म भारत के राजनीतिक इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। इसने एक नवयुग के आगमन की घोषणा की। राष्ट्रीय एकता के युग की घोषणा जो ऊपर से लादी गई थी। बल्कि जनता के संकल्प की अभिव्यक्ति थी। कांग्रेस उस नए समाज की प्रवक्ता थी, जो पलासी के बाद 100 साल के दौरान हुए, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विकसित हुआ था। यह उस प्रक्रिया की पूर्णता थी, जिससे सभी भारतीयों का व्यक्तिगत रूप से और साथ ही सामूहिक रूप से सम्बन्ध था। परन्तु 1885 ई० में यह बताना कठिन था कि कांग्रेस का क्या भविष्य होगा। इस तरह की सभी संस्थाओं की तरह इसे भी बहुत बुरे समय से यानी जनता की उदासीनता और सरकार की नाराजगी के युगों से गुजरना पड़ा। उन मंजिलों से गुजर कर ही वह ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति को चुनौती देने का एक शक्तिशाली औजार बन सकी।''

प्र.3. कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य सम्बन्धी विवादों की विवेचना कीजिए।

Discuss the disputes related to the objectives of the formation of the Congress.

उत्तर

कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य सम्बन्धी विवाद
(Contradiction about the Aim of Formation of Congress)

कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य के प्रश्न पर इतिहासकार एक मत नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रमुख रूप से दो व्याख्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं। पहली धारणा के अनुसार कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए की गई थी, जबकि दूसरी धारणा यह है कि कांग्रेस की स्थापना भारतीयों के हित के लिए राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी।

पहली धारणा के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि कांग्रेस का जन्मदाता ए०ओ० ह्यूम एक अंग्रेज सेवानिवृत्त आई०सी०एस० अधिकारी था। ह्यूम जानता था कि भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असन्तोष व्याप्त है। कहीं वह असन्तोष भयंकर

TOUCH 'n PASS

विद्रोह का रूप धारण न कर ले, इस बात से वह चिन्तित था। ए०ओ० ह्यूम के जीवनी लेखक श्री वेडर बर्न ने लिखा है, "भारत के विभिन्न भागों से ब्रिटिश साम्राज्य के हितैषियों से ह्यूम को ब्रिटिश सरकार तथा भारत के भविष्य के लिए खतरे की चेतावनी मिल गई थी, क्योंकि जनता के कष्ट बढ़ गए थे और बुद्धिजीवी सरकार के विरुद्ध हो गए थे।" श्री वेडरबर्न ने यहाँ तक लिखा है कि "दक्षिण भारत के दंगे कुछ गिरोह की छिटपुट डकैतियों से आरम्भ हुए ..... यहाँ तक कि बाद में डाकुओं के जत्थे इकट्ठे मिल गए और पुलिस के लिए अत्यन्त शक्तिशाली सिद्ध हुए और पूना की सारी सेना को उनके विरुद्ध लगाना पड़ा ..... उनमें से एक वर्ग के नेता ने अपने आपको शिवाजी द्वितीय कहना प्रारम्भ कर दिया। उसने सरकार की शक्ति को ललकारा तथा चुनौती दी बम्बई के राज्यपाल मि० रिचर्ड टेम्पल के सिर को काटकर लाने के लिए 500 रु० का पुरस्कार घोषित किया गया और इस प्रकार राष्ट्रीय आधार पर विद्रोह करने का दावा किया जिस तरह की मूलरूप में छत्रपति शिवाजी के समय मराठा शक्ति की नींव रखी गई थी।"

एनी बेसेन्ट ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "ह्यूम यह पक्की तरह जानता था कि लाखों भारतीय अत्यन्त दुखी होकर भूखे मर रहे थे और इतना होने पर भी वे थोड़े से शासन वर्ग के लिए सब प्रकार का भोग साधन और विलास की सामग्री उत्पन्न कर रहे थे। उसको पुलिस की गुप्त रिपोर्ट पढ़ने का अवसर मिला था और वह अन्दरूनी असन्तोष की कहानी को जानता था तथा उसे भूमिगत षड्यन्त्र गतिविधियों और सार्वजनिक असन्तोष की लहर का आभास था, जो कि 1877 के अकाल के पश्चात् एक बहुत बड़ा खतरा बन गया था।"

लॉर्ड लिटन के अत्याचारी शासन और इल्बर्ट बिल विवाद के कारण भारत क्रान्ति के कगार पर पहुँच चुका था। ह्यूम ने यह अनुभव किया की यदि इस राष्ट्रीयता की लहर को नहीं रोका गया तो इसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। अत: ह्यूम ने कहा, "जिन्होंने इस आन्दोलन (कांग्रेस की स्थापना) को प्रारम्भिक वेग (गतिशक्ति) प्रदान किया, उनके सामने कोई विकल्प नहीं रह गया था। पश्चिमी विचारों, शिक्षा आविष्कार तथा यन्त्रों से उत्पन्न हुई, उत्तेजना बहुत तेजी से अपना काम कर रही थी और यह परम महत्त्व की बात की गई उस असन्तोष तथा उत्तेजना को अन्दर ही अन्दर फैलने देने की बजाए संवैधानिक ढंग से प्रकट करने के लिए कोई मार्ग ढूँढ़ा जाए।"

इस प्रकार ह्यूम ने जनता के असन्तोष को क्रान्ति का रूप ग्रहण करने से रोकने के लिए 'सुरक्षा वाल्व' का निर्माण किया, जो कि कांग्रेस थी। ह्यूम की जीवनी लेखक सर विलियम वेडरबर्न के अनुसार ह्यूम ने एक बार कहा था, "भारत में असन्तोष की बढ़ती हुई शक्तियों से बचने के लिए एक 'सुरक्षा वाल्व' की आवश्यकता है और कांग्रेस आन्दोलन से बढ़कर 'सुरक्षा वाल्व' दूसरी कोई चीज नहीं हो सकती" लॉर्ड डफरिन भी ह्यूम की इस बात से सहमत थे।

लाला लाजपतराय और नन्दलाल चटर्जी ने भी इस मत की पुष्टि की है कि ह्यूम ने भारत में बढ़ते हुए असन्तोष को रोकने तथा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा हेतु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी। लाला लाजपत राय ने 'यंग इण्डिया' में 1916 में प्रकाशित अपने लेख में 'सुरक्षा वाल्व' की परिकल्पना पर लम्बी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था, "कांग्रेस लॉर्ड डफरिन के दिमाग की उपज है।" इसके बाद अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा था, "कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य राजनीतिक आजादी हासिल करने से कहीं ज्यादा यह था कि उस समय ब्रिटिश साम्राज्य पर आसन्न खतरों से उसे बचाया जा सके। कांग्रेस के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के हित पहले स्थान पर थे और भारत का हित दूसरे स्थान पर। कोई यह नहीं कह सकता कि कांग्रेस अपने उस आदर्श (अंग्रेजी राज्य के प्रति निष्ठा) के प्रति ईमानदार नहीं रही है।" लेख के उपसंहार में उन्होंने कहा था, "इसलिए यह है कांग्रेस की उत्पत्ति-ग्रन्थि और प्रगतिशील राष्ट्रवादियों दृष्टि में इसको निर्दोष ठहराने के लिए इतना काफी है।" कुछ समय पश्चात् ह्यूम ने स्वयं कहा था, "हमारे कार्यों के परिणामस्वरूप उत्पन्न असन्तोष की बढ़ती हुई शक्तियों से बचाव के लिए सुरक्षा साधन की आवश्यकता थी, जिसकी रचना हमने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के रूप में की। इस अधिक प्रभावशाली सुरक्षा का आयोजन असम्भव था।" ह्यूम के जीवनी लेखक मि० बेडरबर्न ने लिखा है कि "ह्यूम साहब की यह योजना क्रान्ति का भय दूर करने तथा भारतीयों में उमड़ती राष्ट्रीयता की भावना को रोकने के उद्देश्य से बनाई गई थीं।"

डॉ० नन्दलाल चटर्जी के अनुसार "मि० ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना का विचार उस समय देश के सम्मुख प्रस्तुत किया, जबकि भारत पर रूसी आक्रमण का विशेष भय था। अत: यह स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य भारतीय आन्दोलन को ठीक दिशा में परिवर्तित कर देना तथा उस देश में रूसियों के हथकण्डे तथा शरारतें रोक देना था। जब रूस के आक्रमण का भय समाप्त हो गया, तो भारत सरकार का व्यवहार कांग्रेस के प्रति एकदम बदल गया।" रजनी पामदत्त ने भी अपनी पुस्तक 'इण्डिया टुडे' में लिखा है, "कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश सरकार की एक पूर्व निश्चित गुप्त योजना के अनुसार की गई।"

TOUCH 'n' PASS

यह स्पष्ट है कि कांग्रेस ने ब्रिटिश अधिकारियों की आशाओं को पूर्ण किया। अब शिक्षित भारतीयों का असन्तोष इसके माध्यम से वैधानिक रूप से व्यक्त होने लगा। इस प्रकार कांग्रेस राष्ट्रीय असन्तोष को व्यक्त करने का शान्तिमय साधन बन गई। सन् 1889 ई० की कांग्रेस की रिपोर्ट में कहा गया था, "कांग्रेस आन्दोलन की यह महत्ता है कि उसने भारत में फैली हुई छोटी-छोटी क्रान्तिकारी संस्थाओं को दबा दिया और राजनीतिक असन्तोष को वैधानिक उपायों द्वारा व्यक्त करने का साधन उपस्थित किया।"

कांग्रेस की स्थापना के सम्बन्ध में दूसरा मत यह है कि कांग्रेस की स्थापना भारतीयों के हित के लिए राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी। ह्यूम के अतिरिक्त भारतीय नेताओं ने भी कांग्रेस ने भी कांग्रेस की स्थापना में सहयोग दिया था। एनी बेसेण्ट लिखती है, "राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म मातृभूमि की रक्षा के हित प्रमुख भारतीयों तथा ह्यूम के द्वारा हुआ था।" इस सम्बन्ध में श्री गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है, "यह सम्भव है कि ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने तथा कांग्रेस का प्रयोग एक सुरक्षा वाल्व की तरह करने का विचार ह्यूम तथा वेडरबर्न के हृदयों में हो, किन्तु इस बात पर विश्वास करना असम्भव है कि दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, फिरोजशाह मेहता और रानाडे जैसे भारतीय नेता उनके हाथों में साधन मात्र थे या वे ब्रिटिश साम्राज्य को क्रान्ति के खतरे से बचाने का विचार रखते थे।" प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीयों के हित की दृष्टि से की गई थी।"

इसके अतिरिक्त ह्यूम एक उदारवादी और स्वतन्त्रता प्रेमी व्यक्ति थे वे अंग्रेजों की शोषण नीति और अमानवीय व्यवहार से दु:खी थे। उनका हृदय भारत की निर्धनता और दुर्दशा पर रोता था। उन्होंने अपने जीवन का काफी बड़ा भाग भारतीय जनता के कल्याण में ही लगाया था। वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत को ऊँचा उठाना चाहते थे। स्वयं लाला लाजपत राय ने ह्यूम के उच्च आदर्श को स्वीकारते हुए अपनी पुस्तक 'यंग इण्डिया' में लिखा है, "ह्यूम स्वतन्त्रता के पुजारी थे और उनका हृदय भारत की निर्धनता तथा दुर्दशा पर रोता था।" वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि कोई भी शासन चाहे देशी हो या विदेशी, बिना किसी दबाव के जनता की माँगों को पूरा नहीं करता। इसलिए वे यह चाहते थे कि भारतीयों के द्वारा स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस दिशा में प्रथम समान संगठित होना था, इसलिए उनके द्वारा संगठन का परामर्श दिया गया। अत: यह कहना पूर्ण रूप से सत्य नहीं है कि ह्यूम ने 'पूर्व निश्चित गुप्त योजना' या ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए ही कांग्रेस की स्थापना की थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम लिखे गए पत्र में उन्होंने भारतीयों को देश हित के लिए अपने कन्धे पर रखे हुए जूड़े को उतारने का स्पष्ट आह्वान किया था। ह्यूम ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों को वैधानिक रूप से संगठित करना चाहते थे। इसका प्रमाण यह है कि 1888 ई० के कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने भारतीयों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए उद्‌बोधित करते हुए कहा था कि "हमारे शिक्षित भारतीयों ने पृथक्-पृथक् रूप से तथा हमारे अखबारों ने व्यापक रूप से हमारी राष्ट्रीय महासभा के समस्त प्रतिनिधियों ने एक स्वर से सरकार को समझाने की चेष्टा की है। किन्तु सरकार ने जैसा कि प्रत्येक स्वेच्छाचारी का रवैया होता है, समझने से इन्कार कर दिया है। अब हमारा काम यह है कि देश में अलख जगाए, ताकि हर भारतीय जिसने भारत माता की छाती का दूध पिया है, हमारा साथी, सहयोगी तथा सहायक बन जाए और यदि आवश्यकता पड़े तो कामाडेन्ट और उसके बहादुर साथियों की तरह आजादी न्याय तथा अपने अधिकारों के लिए जो एक महासंग्राम हम छेड़ने जा रहे हैं उसका सैनिक बन जाए।"

कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य के सम्बन्ध में डॉ० जकारिया के ये शब्द अधिक निर्णयात्मक प्रतीत होते हैं, "भारतीय और ब्रिटिश समर्थकों के संयुक्त प्रयत्नों के परिणामस्वरूप इस महान राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ। इस कार्य में उन्हें प्रमुख प्रेरणा संकीर्ण राष्ट्रीय भावों से नहीं, अपितु सत्य और न्याय के उदात्त विचारों के प्रति सच्ची लगन और भक्ति से मिली, जिनके समर्थकों को वे अपने देश के लिए गौरव की बात मानते थे और जो पिछली शताब्दी के दोनों देशों के पारस्परिक सहयोग से किए गए कार्यों का सुखद परिणाम थी।"

कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य के सम्बन्ध में ऊपर दिए गए दोनों मत आँशिक रूप से सत्य हैं। वस्तुत: कांग्रेस की स्थापना भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए की गई थी। किन्तु उसके साथ ही कांग्रेस की स्थापना के मूल में भारतीयों के हित का विचार और भारतीयता की भावना विद्यमान थी। भारतीय राजनीति में उस समय दो प्रकार की विचारधाराओं में विश्वास करने वाले लोग थे। पहले मत के लोग हिस्सों के माध्यम से ब्रिटिश शासन को समाप्त करना चाहते थे। दूसरे मत के लोग ब्रिटिश राज्य का अन्त धीरे-धीरे करना चाहते थे। वे भारतीय प्रशासन में भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व चाहते थे, ताकि स्वशासन प्राप्त कर सकें। मि० ह्यूम तथा उनके अन्य सहयोगी भारतीय राजनीति की दूसरी विचारधारा से सम्बद्ध थे। कांग्रेस की स्थापना इसलिए की गई थी, ताकि देश वैधानिक प्रगति के मार्ग पर बढ़ सके।

प्र.4. कांग्रेस के लक्ष्यों का वर्णन विस्तार से कीजिए।
Discuss in detail about the objectives of Congress.

उत्तर

कांग्रेस के लक्ष्य
(Target of Congress)

प्रो० बिपिन चन्द्र ने अपनी पुस्तक 'भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कांग्रेस की स्थापना 1885 ई० के पहले के कुछ वर्षों से देश में चल रहे राजनीतिक कार्य-कलापों और गतिविधियों की स्वाभाविक परिणति थी। उस समय तक देश की राजनीतिक परिणति ऐसी बन गई थी कि यह जरूरी हो गया था कि कुछ बुनियादी काम और लक्ष्य तय किए जाए और उनके लिए संघर्ष शुरू किया जाए। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए यह जरूरी था कि देश के राजनीतिक कार्यकर्त्ता एक मंच पर आएँ। अखिल भारतीय आधार पर गठित कोई एक संगठन ही ऐसा मंच प्रदान कर सकता था। ये सभी लक्ष्य एक-दूसरे से जुड़े थे और एक-दूसरे पर आधारित थे और उन्हें तभी हासिल किया जा सकता था जब राष्ट्रीय स्तर पर कोई कोशिश शुरू की जाती। 28 दिसम्बर 1885 ई० को बम्बई में हुए सम्मेलन में जिन लोगों ने हिस्सा लिया था, उनके लिए ये बुनियादी लक्ष्य ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे और वे यह आशा लेकर ही वहाँ आए थे कि इन लक्ष्यों को हासिल करने की प्रक्रिया की शुरुआत बम्बई से हो सकेगी। कांग्रेस की सफलता और विफलता और बाद के वर्षों में उसके चरित्र का निर्धारण बजाए इसके कि उसकी स्थापना किन लोगों ने की बल्कि इससे किया जाना चाहिए कि अपनी स्थापना के बाद के वर्षों में कांग्रेस के लक्ष्य क्या रहे और इन लक्ष्यों को हासिल करने में यह कहाँ तक सफल रही। प्रो० विपिन चन्द्र के अनुसार ये लक्ष्य इस प्रकार थे—

1. **राष्ट्र का निर्माण**—उस समय भारत ने राष्ट्र बनने की प्रक्रिया के रास्ते पर कदम बढ़ाया ही था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रणेताओं के सामने पहला लक्ष्य यही था कि भारतीयों को एक राष्ट्र के रूप में जोड़ने और भारतीय जनता के रूप में उसकी पहचान बनाने की यह प्रक्रिया आगे बढ़ाई जाए। उपनिवेशवादी प्रशासक और उनके अनुयायी तब अक्सर यह कहा करते थे कि भारत एक नहीं हो सकता या आजाद नहीं हो सकता क्योंकि यह एक राष्ट्र नहीं है, बल्कि यह महज एक भौगोलिक शब्दावली है और सैकड़ों अलग-अलग धर्मों व जातियों के लोगों का समूह है। भारतीयों ने इसका खण्डन नहीं किया, बल्कि यह कहा कि वे एक राष्ट्र बनाने की दिशा में अग्रसर हैं। तिलक, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी तथा कई अन्य लोग अक्सर यह कहा करते थे कि भारत एक "बनता हुआ राष्ट्र" है। कांग्रेस के नेताओं को इसका अहसास था कि देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ देश के लोगों को एक-दूसरे के करीब ला रही है, लेकिन वे यह भी जानते थे कि लोगों को इस प्रक्रिया के बारे में जागरूक करना होगा और उनमें राजनीतिक चेतना पैदा करनी पड़ेगी तभी भारतीय राष्ट्र का लक्ष्य पाया जा सकेगा और इसलिए यह जरूरी था कि लोगों में राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा दिया जाए।

   भारत का राष्ट्र बनना एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया थी। इसका अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बीस साल बाद 1905 ई० में भी गोपाल कृष्ण गोखले ने इस बात पर फिर जोर दिया, "जहाँ तक हो सके, हमें ज्यादा-से-ज्यादा लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करनी चाहिए और इसे बढ़ाना चाहिए ताकि धर्म, जाति और वर्ग की विभिन्नताओं को परे रखकर वे एक जुट हो सकें।" कांग्रेस के नेताओं को इस बात का भी अहसास था कि भारत में जिस तरह की विभिन्नताएँ हैं, वैसी स्थिति दुनिया में कहीं नहीं है इसलिए उन्हें एक अलग किस्म की कोशिश करनी होगी और बड़ी सावधानी के साथ राष्ट्रीय एकता को पोषित करना होगा। सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीय भावना को पहुँचाने के उद्देश्य से यह तय किया गया कि कांग्रेस के अधिवेशन बारी-बारी से देश के विभिन्न हिस्सों में आयोजित किए जाएँ और अध्यक्ष उस क्षेत्र का हो, जहाँ अधिवेशन हो रहा है।

   सभी धर्मों के लोगों के बीच पहुँचने और अल्पसंख्यकों के मन में छाए हुए डर को दूर करने के लिए 1888 में अधिवेशन में यह तय किया गया कि अगर किसी प्रस्ताव पर हिन्दू या मुस्लिम प्रतिनिधियों के बहुत बड़े हिस्से को आपत्ति हो, तो वह प्रस्ताव पारित नहीं होगा। 1899 ई० में अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित एक प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि जहाँ-जहाँ पारसी, ईसाई, मुसलमान या हिन्दू अल्पसंख्यक हों वहाँ काउंसिल में उनको निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या, आबादी में उनके अनुपात से कम नहीं होनी चाहिए। इस प्रस्ताव की आवश्यकता का कारण यह बताया गया कि भारत अभी तक एक समरूप राष्ट्र नहीं था और इसलिए यहाँ के राजनीतिक ढंग यूरोप जैसे नहीं हो सकते थे।

TOUCH 'n' PASS

शुरुआती दौर में राष्ट्रीय नेता एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र का निर्माण करने पर दृढ़ प्रतिज्ञ थे और कांग्रेस स्वयं एक धर्म-निरपेक्ष संस्था थी।

2. **राष्ट्रीय कार्यक्रम**—शुरुआती दौर में कांग्रेस का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह था कि ऐसा राजनीतिक मंच या राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया जाए जिसके तहत देश के विभिन्न भागों में काम कर रहे राजनीतिक कार्यकर्त्ता इकट्ठे होकर अखिल भारतीय स्तर पर अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ चला सकें और लोगों को शिक्षित व संगठित कर सकें। इसके लिए उन अधिकारों की लड़ाई और उन समस्याओं को हाथ में लेना जरूरी था जो सभी भारतीय की अपनी लड़ाई और उसकी अपनी समस्या थी।

   इसी कारण कांग्रेस ने सामाजिक सुधार का सवाल नहीं उठाया। इसके दूसरे ही अधिवेशन में कांग्रेसाध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने कहा था, "राष्ट्रीय कांग्रेस को अपने आपको सिर्फ उन सवालों तक ही सीमित रखना चाहिए जो सवाल पूरे राष्ट्र से जुड़े हों और जिन सवालों पर सीधी भागीदारी की गुंजाइश न हो।" इसलिए सामाजिक सुधारों पर चर्चा करने के लिए कांग्रेस उचित मंच नहीं थी। दादाभाई नौरोजी ने इसे स्पष्ट किया था, "हम यहाँ एक राजनीतिक संगठन के रूप में इकट्ठे हुए हैं, ताकि हम अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं से अपने शासकों को अवगत करा सकें।"

   आधुनिक राजनीति यानि सामूहिक भागीदारी की राजनीति, आन्दोलन, लामबन्दी, भारत के लिए नई चीजें थीं। यह धारणा की राजनीति कुछ लोगों की बपौती नहीं, बल्कि सबके अधिकार क्षेत्र की चीज है, भारतीय जनता के दिमाग में अभी तक बनी नहीं थी। जब तक जनता को यह सब कुछ मालूम न पड़ जाए तब तक आधुनिक राजनीतिक आन्दोलन चलाना नामुमकिन है और जब जनता में प्रारम्भिक राजनीति चेतना आती है, तो इसके बाद उसमें एक निश्चित दृढ़ राजनीतिक विचारधारा उत्पन्न की जा सकती है।

   कांग्रेसी नेताओं के सामने सबसे बड़ा और पहला काम जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित करना, प्रशिक्षित करना, संगठित करना और जनमत तैयार करना, पूर्ववर्ती राष्ट्रवादियों के शुरू के प्रयास इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए थे।"

   राजनीतिक चेतना जगाने और जनमत तैयार करने का काम सबसे पहले शिक्षित वर्ग से शुरू किया गया, इसके बाद बाकी वर्गों में। इसका तात्कालिक उद्देश्य, जनता को लगातार राजनीतिक गतिविधियों में शरीफ करना था। वे जनता की तत्कालिक कठिनाईयों को दूर करने के लिए किसी संघर्ष में फँसना नहीं चाहते थे। अपने समय की सबसे सशक्त सत्ता के खिलाफ एक संगठित राजनीतिक विरोध को जन्म देने के लिए अपने अन्दर आत्म-विश्वास और दृढ़ता पैदा करनी थी।

3. **सशक्त नेतृत्व की तलाश**—राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने के लिए पहली जरूरत थी एक सशक्त राष्ट्रीय राजनीतिक की। इटली के सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी चिन्तक अंतोनिमो ग्रामशी ने इसे "आन्दोलन के मुख्यालय" की संज्ञा दी है। लेकिन किसी भी देश में कोई राजनीतिक आन्दोलन तभी सफल हो सकता है, जब वहँ की जनता संगठित हो, पूरा देश एक हो। राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रथम चरण तब शुरू होता है, जब राष्ट्रीय भावनाओं और राष्ट्रीय अस्मिता के कारण जनता को संगठित करने का काम शुरू करते हैं।

   लेकिन इसके लिए जरूरी है कि पहले राष्ट्रीय भावनाओं के वाहक भावी नेता खुद एक मंच पर आए, एकबद्धता हो एक-दूसरे को अच्छी तरह समझे, सर्वमान्य दृष्टिकोण अपनाएँ और एक निश्चित लक्ष्य के लिए निश्चित कार्यक्रम तय करें। 1885 में कांग्रेस सम्मेलन से पहले मार्च महीने में सम्मेलन में भाग लेने वाले राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं की सूचना के लिए जो पर्चा जारी किया गया था, उसमें लिखा था, "कांग्रेस की स्थापना का लक्ष्य यह है कि राष्ट्रीय उत्थान में लगे तमाम उत्साही कार्यकर्त्ता एक-दूसरे को अच्छी तरह जान लें।"

   कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष वोमेशचन्द्र बैनर्जी ने यही बात फिर दोहराई। उन्होंने कहा, "कांग्रेस का उद्देश्य, भाईचारे के माध्यम से भारतीय जनता के बीच सभी जाति, वर्ण व क्षेत्रीय पूर्वाग्रहों को समाप्त करना और देश के लिए काम करनेवालों के बीच भाईचारे और दोस्ती को मजबूत बनाना है।" दूसरे शब्दों में, कांग्रेस के संस्थापक समझ गये थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू करने के लिए राष्ट्रीय नेतृत्व को जन्म देने की जरूरत है। राष्ट्रीय नेतृत्व और आन्दोलन की सामाजिक विचारधारा का सवाल उस समय गौण था।

   शुरू में राष्ट्रीय नेताओं का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक लोकतन्त्र का अन्तर्राष्ट्रीयकरण व स्वदेशीकरण था। यह 'जनता की प्रभुसत्ता' पर आधारित था। दादाभाई नौरोजी ने इसी सिद्धान्त को इन शब्दों से कहा "राजा जनता के लिए बने हैं, जनता राजा के लिए नहीं।"

TOUCH 'n PASS

कांग्रेस का गठन संसद की तरह हुआ था। वास्तव में कांग्रेस शब्द उत्तरी अमेरिका के इतिहास से लिया गया शब्द है जिसका अर्थ है 'लोगों का समूह', कांग्रेस सत्र की कार्यवाही बड़े ही लोकतांत्रिक ढंग से चली। मुद्दों पर निर्णय से पहले पूरी बहस होती और कभी जरूरत पड़ती तो वोट भी डाले जाते। इस तरह यह कांग्रेस ही थी, जिसने लोकतंत्र को लोकप्रिय बनाया और स्वदेशीकरण की प्रक्रिया की नींव डाली। कुछ लेखक गलत तर्क देते हैं कि यह काम एकाधिकारवादी, उपनिवेशवादी अंग्रेजी हुकूमत ने किया।

प्र.5. उग्रवादी आन्दोलन की प्रगति में कांग्रेस में फूट किस प्रकार पड़ी? विवेचना कीजिए।
How did the split in Congress occur in the progress of Extremist Movement? Elaborate it.

उत्तर उग्रवादी आन्दोलन की प्रगति कांग्रेस में फूट (गरम दल तथा नरम दल)
[Split in Congress (Extremists and Moderates)]

बनारस के कांग्रेस अधिवेशन में उग्रवादी दल का जन्म

भारतीय राजनीति में उग्रवाद के उदय से कांग्रेस संगठन का प्रभावित होना नितान्त आवश्यक था। 1905 ई० में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में बाल गंगाधर तिलक तथा उनके कुछ समर्थकों ने उदारवादियों की कार्यविधि की आलोचना करते हुए उसे राजनीतिक भिक्षावृत्ति की संज्ञा दी और एक नई नीति अपनाने का सुझाव दिया। अरविन्द के शब्दों में, "इस नीति का सार यह था कि सरकार के साथ उस समय तक असहयोग किया जाना चाहिए, जब तक कि वह भारतीयों को प्रशासनिक तथा वित्तीय क्षेत्र में अधिक अधिकार न दे।" उग्रवादियों ने कहा कि कांग्रेस निष्क्रिय प्रतिरोध के मार्ग को अपनाकर ही भारत के राष्ट्रीय जीवन पर से विदेशी नौकरशाही के प्रभुत्व का अन्त कर सकती है। उन्होंने यह भी कहा कि ब्रिटिश माल और सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार किया जाए एवं स्वदेशी के पक्ष में आन्दोलन चलाया जाए। परन्तु यह बात उदारवादियों के गले नहीं उतरी। उनका विचार था कि इसे अपनाने से भारत की राष्ट्रीय प्रगति में बाधा पड़ेगी। उदारवादियों का अब भी ब्रिटिश न्याय भावना और संवैधानिक साधनों की प्रभावदायकता में विश्वास था।

इसी अधिवेशन में कांग्रेस के दोनों वर्गों द्वारा 'स्वराज्य' की अलग-अलग ढंग से व्याख्या की गई। उदारवादियों के अनुसार इसका तात्पर्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना था। इसके विपरीत उग्रवादी इसका आशय पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने में लेते थे। परस्पर विरोधी विचारों के कारण बनारस अधिवेशन में कांग्रेस के दो दल बन गए थे। उन दिनों 'प्रिंस ऑफ वेल्स' भारत आने वाला था। अत: उदारवादियों ने एक प्रस्ताव रखा कि उसका स्वागत किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम लाला लाजपत राय ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा था, "देश में भीषण दुर्भिक्ष है, त्राहि-त्राहि मची हुई है और लोग भूख से मर रहे हैं। इसके अतिरिक्त लॉर्ड कर्जन के शासन ने भारी असन्तोष उत्पन्न कर दिया है। ऐसे अवसर पर युवराज को आमन्त्रित करना नौकरशाही की चालाकी है। उनका वास्तविक उद्देश्य जनता का ध्यान राजनीतिक असन्तोष से हटाकर जुलूसों और तमाशों की ओर लगाना है। हमें उनके धोखे में नहीं आना चाहिए।" बाल गंगाधर तिलक सहित अनेक नवयुवक ने लाला जी के इस विचार का समर्थन किया।

उग्रवादी दल का जन्म 1907 ई० में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में फूट के बाद हुआ, परन्तु नींव बहुत पहले ही रखी जा चुकी थी। उदारवादियों के असफलता के परिणामस्वरूप कांग्रेस के कुछ ऐसे लोगों का पदार्पण हुआ, जो उग्र तथा क्रान्तिकारी मार्ग पर चलने के पक्ष में थे। धीरे-धीरे कांग्रेस दो दलो—नरम और गरम में बँट गई। उदारवादियों का दल नरम दल तथा उग्रवादियों का दल गरम दल कहलाने लगा। दोनों दलों के बीच पहली बार 1905 ई० में बनारस के अधिवेशन में खुला संघर्ष हुआ परस्पर विरोधी विचारों के कारण ही इस अधिवेशन में कोई भी महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित नहीं हो सका। कांग्रेस के अधिवेशन की समाप्ति के बाद उग्रवादियों की प्रथम बैठक हुई। जिसे लोकमान्य तिलक ने सम्बोधित किया। इस प्रकार, अनाधिकार रूप से उग्रवादी या गरम दल का जन्म हुआ।

कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन (1906) और बल परीक्षा
(Calcutta Session 1906 of Congress and Power Examination)

1906 में कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस के अन्दर गरम और नरम दलों की फूट और भी गहरी हुई। जहाँ उग्रवादी दल नेता तिलक को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहते थे और वहीं उदारवादी दल इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे। अत: इस प्रश्न पर दोनों दलों में झगड़ा

TOUCH n PASS

होना अनिवार्य था। ऐसी स्थिति में उदारवादियों ने दादाभाई नौरोजी को इंग्लैण्ड से बुलाकर सभापति पद पर आसीन कर दिया। दादाभाई नौरोजी की उम्र उस समय 82 वर्ष थी। अत: उन्हें भारतवर्ष का पितामह (Great Grand Oldman of India) कहा जाता था। गरम दल वालों के हृदय में भी नौरोजी के लिए विशेष सम्मान था। इस प्रकार वयोवृद्ध दादाभाई ने अपनी योग्यता और चातुर्य से कांग्रेस में फूट उत्पन्न न होने दी। सी०वाई० चिन्तामणि ने लिखा है, "दोनों दलों (गरम और नरम) में जो मतभेद था उसमें निरन्तर वृद्धि होती गई तथा 1906 के शीतकाल तक वह ऐसा उग्र होता गया कि 82 वर्ष के वयोवृद्ध दादाभाई को इंग्लैण्ड से भारत बुलाकर अध्यक्ष बनाने के अतिरिक्त कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, वह महान था, परन्तु विषय निर्वाचित समिति के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि मैंने जितने अधिवेशन देखे हैं, वह उनमें सबसे अधिक कोलाहल तथा विद्रोह से पूर्ण था। असहिष्णुता का बाजार गर्म था और वृद्ध नेताओं के प्रति अभद्रता भी दिखाई गई। अन्त में, भीष्म पितामह दादाभाई के प्रभाव तथा प्रयत्नों से समझौता हुआ। उस समय तो समझौता हो जाने के कारण कांग्रेस का अधिवेशन टूटने से बच गया किन्तु परिणाम अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि दोनों पक्ष उस समझौते की अपने अनुकूल व्याख्या करते रहे।"

दादाभाई ने दूरदर्शिता से काम लेते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण का प्रारम्भ सर हेनरी बैरनमेन के इस वाक्य से किया, "सुराज्य किसी भी दशा में स्वराज्य का स्थापन नहीं हो सकता।" इस प्रकार उन्होंने कांग्रेस का लक्ष्य 'स्वराज्य' घोषित किया। नौरोजी के सभापति होने पर भी गरम दल वाले स्वराज्य, स्वदेशी आन्दोलन, विदेशी बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा का समर्थन आदि प्रस्तावों को पास करवाने में सफल हुए। डॉ० आर०सी० मजूमदार ने लिखा है, "कांग्रेस अधिवेशन में इस प्रकार के प्रस्ताव पारित होना वस्तुत: उग्र दल की ही विजय थी।" इन प्रस्तावों के पास हो जाने से उग्रवादियों को काफी सन्तोष हुआ तथा कांग्रेस की एकता बनी रही। इस बात का प्रमाण था कि भारतीय राजनीति में उदारवादियों का पहले जैसा प्रभाव तथा सम्मान नहीं रहा था।

सूरत कांग्रेस अधिवेशन में फूट (1907) (Split in Surat Session of Congress in 1907)

कांग्रेस का अगला अधिवेशन, 1907 में सूरत में हुआ, जो कांग्रेस के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। स्वराज्य के अर्थ तथा उसकी प्राप्ति के साधनों को लेकर नरम और गरम दल में तीव्र मतभेद था। उग्रवादी चाहते थे कि कांग्रेस 'स्वराज्य' की प्राप्ति के लिए सक्रिय आन्दोलन करे जबकि उदारवादी किसी प्रकार का आन्दोलन करने के लिए तैयार नहीं थे। इसी बीच लॉर्ड मिण्टो ने प्रशासनिक सुधारों के सम्बन्ध में घोषणा की, उससे दोनों पक्षों के मतभेद और तीव्र हो गए। परिणामस्वरूप सूरत अधिवेशन में संकट का जन्म हुआ। सूरत अधिवेशन अध्यक्ष के चुनाव के प्रश्न को लेकर दोनों गुटों में फिर मतभेद उत्पन्न हो गया। उग्रवादी सूरत कांग्रेस का अध्यक्ष लाला लाजपत राय को बनाना चाहते थे, जबकि उदारवादी रास बिहारी घोष को। उदारवादियों का इस समय कांग्रेस में बहुमत था, इसलिए ऐसी परिस्थिति में लाला लाजपत राय ने जो सम्मान तथा प्रतिष्ठा के भूखे नहीं थे, उदारता से अपना नाम वापस ले लिया। परिणामस्वरूप नरम दल के स्तम्भ डॉ० रास बिहारी घोष इस अधिवेशन के सभापति नियुक्त हुए। उग्रवादियों ने इसका विरोध किया। फलत: अध्यक्ष के भाषण के पूर्व ही दोनों दलों में मारपीट तथा हो हल्ला शुरू हो गया और थोड़े ही समय में स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो गई। कहा जाता है कि सदस्यों में आपस में जूते और लाठियाँ तक चल गई और पुलिस ने बलपूर्वक कांग्रेस भवन को खाली करा दिया। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने सत्य ही कहा था कि "सूरत की घटना कांग्रेस के इतिहास में सबसे अधिक दु:खद घटना है।"

इस घटना के साथ ही कांग्रेस दो दलों में विभाजित हो गई। उदारवादियों ने जिनकी संख्या 1600 में से 900 थी, एक अलग सभा की। इसमें यह निश्चित किया गया कि 100 व्यक्तियों के एक समिति कांग्रेस का विधान तैयार करे। इस मनोनीत समिति ने कांग्रेस का विधान तैयार किया। इस समय उदारवादियों ने उग्रवादियों को कांग्रेस से निकाल दिया, जिसके कारण कांग्रेस स्पष्ट रूप से दो दलों में विभाजित हो गई। प्रथम, गरम दल जिसके नेता लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक एवं विपिन चन्द्र पाल थे एवं द्वितीय, नरम दल उसके नेता गोपाल कृष्ण गोखले थे। उदारवादियों ने नए विधान की प्रथम धारा में कहा था, "भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य है कि भारत की जनता को उसी प्रकार की शासन व्यवस्था प्राप्त हो जिस प्रकार की शासन व्यवस्था ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों में प्रचलित है और उनके समान ही भारतवासी भी साम्राज्य के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों में भागी बने। इन उद्देश्यों की प्राप्ति वर्तमान शासन व्यवस्था में धीरे-धीरे सुधार कर राष्ट्रीय एकता तथा जनोत्साह को बढ़ावा देकर और देश के मानसिक, नैतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक साधनों को सुसंगठित कर वैधानिक रीति से किया जाए।" उग्रवादी दल 1916 ई० तक कांग्रेस से अलग रहा। 1916 ई० में इन दोनों पक्षों में समझौता हुआ, जिसके परिणामस्वरूप दोनों का एकीकरण हो गया और वे सम्मिलित ढंग से कार्य करने लगे।

उग्रवादियों का दमन
(Suppression of Extremists)

ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की फूट का लाभ उठाते हुए उग्रवादियों का कठोरता के साथ दमन करने की नीति अपनायी। मई 1907 ई० में पंजाब के लाला लाजपत राय और सरदार अजित सिंह को बिना मुकदमा चलाए मांडले की जेल में बन्द कर दिया गया। बंगाल में सरकार ने अरविन्द घोष के ऊपर अभियोग चलाने का निष्फल प्रयास किया। बंगाल में अनेक व्यक्तियों पर आतंकवादी कार्यों के लिए मुकदमा चलाकर उन्हें दण्डित किया गया। 1908 ई० में 'समाचार-पत्र' अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता नष्ट कर दी गई। 1908 ई० में 'केसरी' नामक समाचार-पत्र में सरकार के विरुद्ध लिखे गए लेखों के आधार पर लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के आरोप में छः वर्ष का कारावास देकर मांडला जेल भेज दिया गया। इसके अलावा बंगाल में कई नेताओं तथा समाचार-पत्रों के सम्पादकों को बिना मुकदमा चलाए कैद में डाल दिया। 1911 ई० में 'षड्यन्त्रकारी सभा अधिनियम' लागू किया गया। जिसके द्वारा सरकार के विरुद्ध सभाएँ आयोजित करने पर सख्त प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अंग्रेज सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति के फलस्वरूप देश में क्रांतिकारी और आतंकवादी आन्दोलनों का सूत्रपात शुरू हुआ।

महाराष्ट्र में उग्रवादी आन्दोलन
(Extremists Movement in Maharashtra)

महाराष्ट्र में तिलक ने उग्रवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। तिलक एक महान् देशभक्त तथा स्वतन्त्रता प्रेमी थे। उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि, विद्वता धर्मनिष्ठा तथा त्याग के द्वारा न केवल महाराष्ट्र के लोगों का ही दिल जीता, अपितु वे सम्पूर्ण देश के प्रिय नेता बन गए। तिलक ने 1880 ई० में 'केसरी' व 'मराठा' नामक दो समाचार-पत्रों का प्रकाशन आरम्भ किया। इन पत्रों के द्वारा उन्होंने नवयुवकों में आत्म-विश्वास तथा आत्म-निर्भरता की भावनाएँ जागृत करने का विशेष प्रयास किया। तिलक पाश्चात्य संस्कृति की गरिमा के विरोधी थे। वे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के महान् पुजारी थे। भारत में विदेशी शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध जनता को संगठित करने तथा उसमें साहस और बलिदान की भावना जागृत करने के लिए गणपति उत्सव का आयोजन आरम्भ किया। यह नवयुवकों को संगठित करने तथा उन्हें राजनीतिक शिक्षा देने में काफी लोकप्रिय रहा।

शिवाजी का नाम सम्पूर्ण महाराष्ट्र में एकता, शक्ति, देशप्रेम और बलिदान का प्रतीक माना जाता था। महाराष्ट्र की जनता में शिवाजी के प्रति अटूट श्रद्धा विद्यमान थी। इसलिए तिलक ने शिवाजी उत्सव मनाने का निश्चय किया, ताकि जनता को संगठित किया जा सके तिलक ने महान स्वतन्त्रता सेनानी एवं वीर योद्धा शिवाजी का आदर्श महाराष्ट्रवासियों के सामने रखा। तिलक ने शिवाजी के उत्सव के अवसर पर कहा कि "महापुरुष सामान्य नैतिक सिद्धान्तों के ऊपर होते हैं। गीता में कृष्ण ने कहा है कि यदि हम स्वार्थ की भावनाओं से प्रेरित न हो, तो अपने गुरुओं और सम्बन्धियों की हत्या में कोई पाप नहीं होता। शिवाजी ने अपने पेट के लिए कुछ नहीं किया। उन्होंने दूसरों की भलाई के लिए प्रशंसनीय उद्देश्य से ही अफजल खाँ की हत्या की थी। ईश्वर ने हिन्दुस्तान को मलेच्छों को नहीं दिया था। कूपमण्डूक की भाँति अपने दृष्टिकोण को सीमित न कर दण्ड संहिता से ऊपर उठकर भगवद्गीता के पवित्र वातावरण में महापुरुषों के कृत्यों पर विचार करो।" शिवाजी उत्सव और गणपति उत्सव ने राष्ट्रीय शक्ति के संगठित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

तिलक ने महाराष्ट्र में अकाल और प्लेग फैलने पर जनता की सहायता के लिए 'अकाल सहायता कोष' की स्थापना की। इस समय उन्होंने अपने समाचार-पत्रों में सरकार की 'अकाल और प्लेग निवारण नीति' की कटु आलोचना की। उनके इन विचारों से प्रभावित होकर दामोदर तथा बालकृष्ण चापेकर नामक दो नवयुवकों ने मि० रैण्ड और लेफ्टिनेन्ट आमर्स्ट इन दो प्लेग अधिकारियों को गोली से उड़ा दिया। सरकार ने इसके लिए तिलक को दोषी ठहराया और उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें 18 मास की कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इससे सम्पूर्ण देश की जनता में रोष उत्पन्न हो गया और उग्रवादी आन्दोलन को और अधिक बल मिला।

1908 ई० में खुदीराम बोस ने बम फेंककर मिसेज कनेडी की हत्या कर दी। तिलक ने अपने समाचार-पत्र में इस हत्या को उचित ठहराया। परिणामस्वरूप उन पर राजद्रोह का अपराध लगाकर मुकदमा चलाया गया। न्यायालय के निर्णय के बाद तिलक ने कहा था, "मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि ज्यूरी का निर्णय चाहे जो हो, मैं अपने आपको निश्चित रूप से निर्दोष मानता हूँ। विभिन्न वस्तुओं के भाग्य का संचालन करने के लिए उच्चतर शक्तियाँ हैं और प्रतीत होता है कि जिस आदर्श का मैं प्रतिनिधित्व करता हूँ, वह ईश्वर इच्छा के अनुसार मेरे स्वतंत्र रहने की अपेक्षा मेरे कपटों से अधिक फलीभूत होगा।" सरकार ने तिलक को छः वर्ष का

TOUCH 'n' PASS

कठोर कारावास देकर मांडले (बर्मा) की जेल में भेज दिया। उनकी अनुपस्थिति में राष्ट्रीय आन्दोलन नेतृत्वविहीन हो गया। परिणामस्वरूप वह मन्द पड़ गया।

पंजाब में उग्रवादी आन्दोलन
(Extremist Movement in Punjab)

पंजाब में उग्रवादी आन्दोलन का नेतृत्व लाला लाजपत राय ने किया, वे एक शिक्षा सुधारक, समाज तथा धर्म सुधारक थे। उन्होंने आर्य समाज की उन्नति में विशेष योगदान दिया। उनके भाषणों से जनता प्रभावित हुए बिना नहीं रहती थी। इस सम्बन्ध में सी०वाई० चिन्तामणि ने लिखा है, "एक सार्वजनिक वक्ता के रूप में अरुंडेल जार्ज तथा लाला लाजपत राय दोनों का एक साथ स्मरण करता हूँ। जनता के रोष को जाग्रत कर देने की दोनों में समान क्षमता थी।" लाला लाजपत राय ने जनता में आत्मविश्वास और आत्मबल की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया, ताकि भारतीयों को स्वतन्त्रता की लड़ाई में सफलता प्राप्त हो सके।

बंगाल में उग्रवादी आन्दोलन
(Extremist Movement in Punjab)

लॉर्ड कर्जन ने अपने शासन काल में कई ऐसे काम किए, जिनसे जनता में असन्तोष की भावना चरम सीमा तक जा पहुँची। परन्तु भारत में कर्जन के शासन काल का सबसे मूर्खतापूर्ण कार्य बंगाल विभाजन था। कर्जन ने 19 जुलाई 1905 को भारत की राष्ट्रीय एकता को कुचलने के उद्देश्य से बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी। भारतीयों ने इसका विरोध किया। फिर भी 16 अक्टूबर को इसे कार्यान्वित कर दिया गया। बंगाल में विभाजन का तीव्र विरोध करने के लिए जुलूस निकाले गए, प्रदर्शन किए गए तथा अनेक सभाएँ आयोजित की गईं। 'वन्दे मातरम्' के गान से सारा बंगाल गूँज उठा और सार्वजनिक सभाओं के आयोजन ने एक नया वातावरण पैदा कर दिया। इन सभाओं में राष्ट्रीय उद्घोषणा पढ़ी जाती थी। इसमें कहा गया था, "चूँकि सरकार ने सर्वव्यापी विरोध के होते हुए भी बंगाल के विभाजन के निर्णय को लागू किया, हम यह अहद और उद्घोषणा करती है कि हम अपने प्रान्त के खण्डन के बुरे प्रभावों को रोकने और उसकी जाति की एकता को बनाए रखने के लिए यथाशक्ति सब कुछ करेंगे, ईश्वर हमारी सहायता करे।"

ब्रिटिश सरकार ने इस आन्दोलन का दमन करने के लिए असंख्य लोगों को दण्डित किया। इसके बावजूद आन्दोलन का क्षेत्र व्यापक होता चला गया। उग्रवादियों ने स्वदेशी और बहिष्कार की नीति अपनाई। विभाजित प्रान्तों की एकता के प्रतीक स्वरूप पुरुषों की कलाईयों में लाल धागे बाँधें गए। आन्दोलनकारियों ने घर-घर जाकर जनता से अपील की और स्वदेशी व्रत की प्रतिज्ञा करवाई। स्वदेशी व्रत इस प्रकार था, "ईश्वर को साक्षी मानकर और आने वाली पीढ़ियों के सामने खड़े हुए, हम यह गम्भीर व पवित्र व्रत लेते हैं कि हम देश में बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग करेंगे और विदेशी माल के प्रयोग से बचेंगे, अत: ईश्वर हमारी सहायता करे।"

इस आन्दोलन के दौरान विदेशी वस्तुओं की दुकानों पर धरना दिया गया और स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। बंगाल में इस आन्दोलन का नेतृत्व बिपिन चन्द्र पाल एवं अरबिन्द घोष जैसे नेताओं ने किया। बंगाल के नवयुवकों ने भी इस आन्दोलन में उत्साह से भाग लिया। इस उग्रवादी आन्दोलन ने धीरे-धीरे आतंकवादी रूप धारण कर लिया। ब्रिटिश सरकार इस आन्दोलन को कुचलने में असफल रही। अन्तत: सरकार ने 1911 ई० में बंगाल विभाजन को रद्द कर दिया। इस काल में उग्रवादी आन्दोलन ने राष्ट्रीय चेतना को नई दिशा प्रदान करने में आशातीत सफलता प्राप्त कर ली।

उग्रवादी आन्दोलन का मूल्यांकन
(Evaluation of Extremist Movement)

उग्रवादी आन्दोलन का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, इस सत्य को मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता। उदारवादी भी देशभक्त थे, परन्तु उनके साधन प्रभावदायक नहीं थे। उग्रवादियों का मानना था कि प्रार्थना पत्रों से सरकार राजनीतिक सुधार भी नहीं करेगी, स्वतन्त्रता देना तो बहुत दूर की बात है। अत: उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया मोड़ दिया। उग्रवादियों ने स्वदेशी आन्दोलन तथा बहिष्कार के साधन अपनाए, जिसने जनता में आत्म-निर्भरता, आत्मविश्वास और राष्ट्रीयता की नई लहर उत्पन्न कर दी। परिणामस्वरूप यह आन्दोलन एक जन-आन्दोलन बन गया। इस आन्दोलन से देश के कोने-कोने में हलचल मच गई। उग्रवादियों के स्वदेशी आन्दोलन तथा बहिष्कार के साधनों को महात्मा गाँधी ने भी अपने

TOUCH 'n PASS

असहयोग आन्दोलन का मुख्य आधार बनाया। उग्रवादियों ने एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की योजना बनाई, जो भारत की युवा पीढ़ी में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करे तथा उसमें अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति निष्ठा भी उत्पन्न करे। उग्रवादियों का यह कार्य अत्यन्त दूरदर्शितापूर्ण था। उग्रवादी आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार बहुत प्रभावित हुई और उसने राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर उग्रवादियों के हाथों में जाने से रोकने के लिए 1909 ई० में मार्ले मिन्टो सुधार पारित किए। यदि उग्रवादी आन्दोलन प्रारम्भ न होता, तो इन सुधारों के पारित होने में कुछ अधिक समय लग सकता था।

किसी भी प्राचीन देश को स्वतन्त्रता तभी प्राप्त हो सकती है, जबकि आन्दोलन का नेतृत्व करने वाला वर्ग स्वयं कष्ट और त्याग के लिए तत्पर हो। अधिकांश उदारवादी नेताओं में इस प्रकार की त्याग भावना का अभाव था, लेकिन उग्रवादी प्रत्येक कष्ट और त्याग के लिए तत्पर रहते थे। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय एवं बिपिन चन्द्र पाल आदि उग्रवादी दल के नेता सही अर्थों में सच्चे लोक नायक थे। 1908 ई० में जब तिलक को 8 वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया, तो इस अन्याय के विरुद्ध कई स्थानों पर दंगें हुए। ब्रिटिश सरकार ने इस कार्य के विरोध में बम्बई के मिलों के मजदूरों द्वारा एक व्यापक हड़ताल की गई। इस सम्बन्ध में लेनिन ने कहा था कि यह हड़ताल भारत के श्रमिक वर्ग की 'पहली राजनीतिक कार्यवाही' है। इस प्रकार, उग्रवादियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जन-आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया।

हिन्दू धर्म और संस्कृति से प्रभावित होने के कारण उग्रवादियों को भारत के हिन्दुओं को संगठित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई। परन्तु उसने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति मुसलमानों में उदासीनता ला दी। ब्रिटिश शासन और सरकारी अधिकारियों ने उग्रवादियों की धार्मिक निष्ठा का मुसलमानों में प्रचार कर उन्हें हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने का सफल प्रयास किया। उन्होंने मुसलमानों से कहा कि यह जो ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन चलाया जा रहा है। उसका मुख्य उद्देश्य भारत में विशुद्ध हिन्दू राज्य की स्थापना करना है। इस प्रकार के भ्रामक प्रचार के कारण साधारण मुस्लिम जनता अंग्रेजों के बहकाने में आ गई। परिणामस्वरूप मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के निर्देशानुसार अपने लिए 'मुस्लिम लीग' नामक संस्था की स्थापना की। इस प्रकार, उग्र राष्ट्रीयता के युग में भारत में साम्प्रदायिकता का बीज बोया गया, जो आगे चलकर अखण्ड भारत के लिए घातक सिद्ध हुआ। जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, "उग्र राष्ट्रीयता सामाजिक रूप में निश्चितत: प्रतिक्रियावादी थी।"

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना ..... में हुई थी।

(क) ढाका (ख) कलकत्ता
(ग) दिल्ली (घ) लाहौर

उत्तर (क) ढाका

प्र.2. अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना वर्ष ..... में हुई थी।

(क) 1906 (ख) 1907
(ग) 1904 (घ) 1905

उत्तर (क) 1906

प्र.3. निम्नलिखित में से कौन अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का संस्थापक था?

(क) नवाब सलीमुल्ला खान (ख) आगा खान
(ग) सर मौहम्मद इकबाल (घ) सर सैय्यद अहमद खान

उत्तर (क) नवाब सलीमुल्ला खान

प्र.4. मुस्लिम लीग के संस्थापक ..... थे।

(क) एम०ए० जिन्ना (ख) नवाब सलीमुल्लाह
(ग) शौकत अली (घ) लियाकत अली

उत्तर (ख) नवाब सलीमुल्लाह

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. निम्नलिखित कथनों पर विचार करें। कथन

दावा (A) : लीग ने कांग्रेस के मुस्लिम लोगों के अधिकारों को प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

कारण (R) : इस प्रकार का अधिकार केवल मुस्लिम लीग को है।

(क) (A) गलत है, लेकिन (R) सही है
(ख) (A) सही है, लेकिन (R) गलत है
(ग) दोनों (A) और (R) सही हैं और (R) (A) का सही स्पष्टीकरण नहीं है
(घ) दोनों (A) और (R) सही हैं और (R) (A) का सही स्पष्टीकरण है

उत्तर (ख) (A) सही है, लेकिन (R) गलत है

प्र.6. अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की लंदन शाखा 1908 में ..... की अध्यक्षता में प्रकाशित हुई थी।

(क) एम०ए० जिन्ना (ख) लियाकत अली खान
(ग) अमीर अली (घ) आगा खान

उत्तर (ग) अमीर अली

प्र.7. मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल ने 1906 में शिमला में मिण्टो से मुलाकात की और ..... के लिए अनुरोध किया।

(क) नामांकन द्वारा मुस्लिमों को विशेष प्रतिनिधित्व (ख) हिन्दुओं को उच्च प्रतिनिधित्व
(ग) एक समय निर्वाचन क्षेत्र (घ) मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र

उत्तर (घ) मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र

प्र.8. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सन्दर्भ में निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही नहीं है?

(क) मौलाना बरकत अल्लाह और मौलाना ओबेदुल्ला सिंधी उन लोगों में से थे जिन्होंने काबुल में भारत की अनन्तिम सरकार बनायी थी
(ख) 1906 में गठित अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने बंगाल के विभाजन और अलग निर्वाचन क्षेत्रों का जोरदार विरोध किया
(ग) जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ, तो सैय्यद अहमद खान ने इसका विरोध किया
(घ) हकीम अजमल खान राष्ट्रवादी और उग्रवादी अहरार आन्दोलन शुरू करने वाले नेताओं में से एक थे

उत्तर (ख) 1906 में गठित अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने बंगाल के विभाजन और अलग निर्वाचन क्षेत्रों का जोरदार विरोध किया

प्र.9. वर्ष 1907 में मुस्लिम लीग का वार्षिक सत्र ..... में आयोजित किया गया था।

(क) लखनऊ (ख) अलीगढ़ (ग) कराची (घ) ढाका

उत्तर (ग) कराची

प्र.10. मुस्लिम लीग के प्रथम अध्यक्ष कौन थे?

(क) एम०ए० जिन्ना (ख) हसन खान (ग) हामिद खान (घ) आगा खान

उत्तर (घ) आगा खान

प्र.11. मुस्लिम लीग की स्थापना 1906 ई० में हुई थी। उस समय उसके उद्देश्यों में कौन-सी बात सम्मिलित नहीं थी?

(क) द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त (ख) भारत का साम्प्रदायिक विभाजन
(ग) पाकिस्तान की माँग (घ) उपर्युक्त सभी

उत्तर (घ) उपर्युक्त सभी

प्र.12. मुस्लिम लीग को प्रथम पृथक् निर्वाचन का अधिकार कब मिला?

(क) 1906 ई० में (ख) 1907 ई० में (ग) 1909 ई० में (घ) 1912 ई० में

उत्तर (ग) 1909 ई० में

TOUCH 'n PASS

प्र.13. उस नेता का नाम बताइए, जिसके विरोध के कारण 1928 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौते की सभी उम्मीदें समाप्त हो गयी थीं?

(क) एम०आर० जयकर (ख) सर मुहम्मद इकबाल (ग) जवाहरलाल नेहरू (घ) मुहम्मद अली जिन्ना

उत्तर (क) एम०आर० जयकर

प्र.14. मुस्लिम लीग ने भारत विभाजन की माँग सर्वप्रथम कब की?

(क) 1906 ई० में (ख) 1916 ई० में (ग) 1940 ई० में (घ) 1946 ई० में

उत्तर (ग) 1940 ई० में

प्र.15. भारत में मुसलमानों के लिए पृथक् राज्य 'पाकिस्तान' की माँग मुहम्मद अली जिन्ना ने किस वर्ष की है?

(क) 1935 ई० में (ख) 1940 ई० में (ग) 1942 ई० में (घ) 1944 ई० में

उत्तर (ख) 1940 ई० में

प्र.16. पाकिस्तान की माँग वर्ष ..... में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में की गयी थी।

(क) 1932 (ख) 1942 (ग) 1940 (घ) 1936

उत्तर (ग) 1940

प्र.17. अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने लाहौर प्रस्ताव (Lahore Resolution) को वर्ष ..... में अंगीकृत किया था।

(क) 1942 (ख) 1941 (ग) 1939 (घ) 1940

उत्तर (घ) 1940

प्र.18. निम्नलिखित में से किसने पाकिस्तान के गठन की माँग का विरोध किया?

(क) मौलाना अशरफ अली थानवी (ख) मुहम्मद इकबाल
(ग) खान अब्दुल गफ्फार खान (घ) मुहम्मद अली जिन्ना

उत्तर (ग) खान अब्दुल गफ्फार खान

प्र.19. उस पंजाबी मुसलमान का नाम बताइए, जो कैम्ब्रिज का छात्र था और जिसने 1933 में 'पाक-स्तान' (Pak-Stan) नामक शब्द गढ़ा था?

(क) खान रहमद खा (ख) अमानत अली (ग) नुसरत फतेह अली (घ) चौधरी रहमत अली

उत्तर (घ) चौधरी रहमत अली

प्र.20. मुस्लिम लीग के 1943 के कराची अधिवेशन में कौन-सा नारा दिया गया था?

(क) जय जवान जय किसान (ख) बाँटो और राज करो
(ग) बाँटो और छोड़ो (घ) करो या मरो

उत्तर (ग) बाँटो और छोड़ो

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

मुस्लिम लीग का उदय
Emergence of Muslim League

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य क्या था?
What was the main objective of Muslim League?

उत्तर 1906 में "भारतीय मुसलमानों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए" मुस्लिम लीग की स्थापना की गई।

प्र.2. मुस्लिम लीग का पहला अधिवेशन कब और कहाँ हुआ?
When and where did the first session of Muslim League take place?

उत्तर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसंबर 1906 को ढाका में, ढाका के नवाब सलीम उल्ला खान के नेतृत्व में इसका पहला अधिवेशन 29 दिसम्बर, 1907 को कराची में हुआ था। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता आगा खां ने की थी।

प्र.3. मुस्लिम लीग का संविधान कहाँ तैयार किया गया?
Where did the Constitution of Muslim League prepare?

उत्तर अप्रैल सन् 1941 में मद्रास में मुस्लिम लीग के सम्मेलन में संकल्प लाहौर की पार्टी के संविधान में शामिल किया गया और इसी के आधार पर पाकिस्तान आंदोलन शुरू हुआ।

प्र.4. मुस्लिम लीग के समय वायसराय कौन था?
Who was the Viceroy at the time of Muslim League?

उत्तर मुस्लिम लीग के समय लॉर्ड मिंटो द्वितीय 1905 से 1910 तक भारत का वायसराय था। 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के गठन के अलावा उनकी अवधि के दौरान स्वदेशी आंदोलन भी हुआ।

प्र.5. मुस्लिम लीग के उद्देश्य लिखिए।
Write the objectives of Muslim League?

उत्तर मुस्लिम लीग के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश राज्य के प्रति राजभक्ति की भावना में वृद्धि करना और यदि सरकार के किसी कानून द्वारा मुस्लिम जनता में कोई गलत धारणा फैली हो, तो उसे दूर करना।
2. भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक अधिकारों व हितों की देखभाल और उनमें वृद्धि करना। मुसलमानों की इच्छाओं व आवश्यकताओं को सरकार के सामने प्रस्तुत करना।
3. उपर्युक्त उद्देश्यों के अन्तर्गत ही यदि सम्भव हो सके तो भारत की अन्य जातियों के साथ मित्रता स्थापित करना।

प्र.6. मुस्लिम लीग की नीति में क्या बदलाव आए?
What changes did take place in the policy of Muslim League?

उत्तर मुस्लिम लीग का गठन कट्टरवादी मुस्लिमों द्वारा किया गया था। इस संस्था को राष्ट्रवादी मुस्लिमों का समर्थन कभी प्राप्त नहीं हुआ। राष्ट्रवादी मुस्लिमों की स्वयं की संस्था 'जमीयत उल-उलमाएँ हिन्द' की स्थापना का ही परिणाम था कि सन् 1912 के आस-पास मुस्लिम लीग में परिवर्तन होने लगा। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप सन् 1916 में लीग एवं कांग्रेस में समझौता हो गया। सन् 1916 में हुए लखनऊ अधिवेशन में दोनों ने एक समान योजना निर्धारित की। जिसे 'लखनऊ समझौता' या 'कांग्रेस लीग'

TOUCH 'n' PASS

कहा जाता है। इस योजना के दो भाग थे। **पहला—मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्या समाधान से जुड़ा था तथा दूसरा—प्रस्तावित सुधार से।** परन्तु इस समझौते से अनजाने में ही पाकिस्तान की नींव पड़ गयी तथा साम्प्रदायिक सिद्धान्त को अपनाने के कारण कांग्रेस उनका विरोध भी नहीं कर सकती थी। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू-मुस्लिम समझौते के सम्बन्ध में साम्प्रदायिक भाग को स्वीकार कर लिया किन्तु संवैधानिक सुधार योजना को नहीं स्वीकार किया।

प्र.7. मुस्लिम लीग के कुल कितने अधिवेशन हुए?
How many session of Muslim League had taken place?

उत्तर अन्तिम वाचन 17 नवम्बर 1949 से 26 नवम्बर 1949 तक हुए। कुल बैठकें 105 तथा 12 अधिवेशन सम्पन्न किए गए। भारत विभाजन से पहले 4 अधिवेशन सम्पन्न हुए।

प्र.8. मुस्लिम लीग के सबसे प्रभावशाली नेता कौन थे?
Who was the most influential leader of Muslim League?

उत्तर मुहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम लीग के एक महत्वपूर्ण नेता थे।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुस्लिम लीग की स्थापना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on the formation of Muslim League.

उत्तर

मुस्लिम लीग की स्थापना
(Formation of Muslim League)

भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय बहावी आन्दोलन के प्रभाव, सर सैय्यद अहमद खाँ के प्रयत्नों एवं अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति के परिणामस्वरूप हुआ। इस साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। मुस्लिम लीग की स्थापना ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को ठोस तन्त्र प्रदान किया।

मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसम्बर 1906 में ढाका में हुई। लीग का गठन कांग्रेस के विरोध में मुसलमानों द्वारा किया गया था। भारत के अभिजात मुस्लिम लागों को राजनीति में प्रवेश करने का अवसर वायसराय लॉर्ड मिन्टों के निमन्त्रण से प्राप्त हुआ। इस अवसर से वे पूर्णत: राजनीतिज्ञ बनकर शिमला लौटे। अलीगढ़ की राजनीति पूरे देश में छा गई। 1 अक्टूबर 1906 को लॉर्ड मिन्टो से यह दल मिला। मुसलमानों ने वायसराय से अनुरोध किया कि मुस्लिम लोगों के लिए प्रान्तीय, केन्द्रीय व स्थानीय निर्वाचन हेतु अलग साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था की जाए। मिन्टो ने इनकी माँगों का पूर्ण समर्थन किया। इसी का परिणाम था कि सलीमुल्ला के नेतृत्व में मुस्लिम नेताओं द्वारा 30 दिसम्बर 1906 को 'मुस्लिम लीग' का गठन हुआ।

प्र.2. भारत में साम्प्रदायिकता बढ़ाने में उपनिवेशवाद की देन का उल्लेख कीजिए।
Discuss about the contribution of colonialism in enhance communalism in India.

उत्तर

उपनिवेशवाद की देन
(Contribution of Colonism)

भारत में साम्प्रदायिक चेतना का जन्म उपनिवेशवाद के दबाव तथा उसके खिलाफ संघर्ष करने की जरूरत से उत्पन्न परिवर्तनों के कारण हुआ। विभिन्न अंचलों तथा देश के बढ़ते हुए आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक एकीकरण भारत को एक आधुनिक राष्ट्र बनाने की प्रक्रिया उपनिवेशवाद तथा भारतीय जनता का बढ़ता हुआ अन्तर्विरोध तथा आधुनिक सामाजिक वर्गों एवं उपवर्गों का निर्माण इन तमाम कारणों से लोगों में अपने साझा हितों को देखने के लिए नए तरीकों की जरूरत हुई। संपर्कों और वफादारियों के व्यापक आयामों की खोज तथा नई पहचानों की रचना जरूरी हो गई। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जिस नई राजनीति का जन्म हुआ उसके कारण भी यह सब आवश्यक हो गया। आधुनिक राजनीति का आधार ही था अधिक-से-अधिक भारतीयों में राजनीतिक चेतना पैदा करना तथा उन्हें सक्रिया करना।

नए विचारों और नई धाराओं के सहारे नए उदीयमान राजनीतिक यथार्थ तथा सामाजिक सम्बन्धों को जज्ब करने तथा एकता के नए आधारों एवं नई सामाजिक-राजनीतिक पहचानों को अपनाने की प्रक्रिया को एक कठिन और क्रमिक प्रक्रिया होना ही था।

TOUCH 'n' PASS

राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक-भाषाई विकास तथा वर्ग संघर्ष की आधुनिक धारणाओं का प्रसार एवं प्रक्रिया का अनिवार्य नतीजा था। लेकिन जहाँ भी इन धारणाओं का विकास धीमी गति से या आंशिक रूप में हुआ, नए यथार्थ को जज्ब करने, संपर्क के व्यापक दायरे बनाने और नई पहचानों और विचारधाराओं का विकास करने के लिए लोगों ने जाति, इलाके, अचल, नस्ल धर्म, सम्प्रदाय और पेशें जैसे आत्म-पहचान के पुराने, परिचित, पूर्व-आधुनिक तरीकों के प्रति झुकाव प्रकट किया, जो अपरिहार्य था। इस तरह की परिस्थितियों में दुनिया भर में ऐसी ही घटनाएँ हुई है। लेकिन अकसर ऐसा होता है कि इन पुरानी, अपर्याप्त और मिथ्या धारणाओं तथा पहचानों का स्थान राष्ट्र, राष्ट्रीयता और वर्ग की नई तथा ऐतिहासिक रूप से आवश्यक धारणाएँ और पहचान लेने लगती है। भारत में भी बड़े पैमाने पर यही हुआ, हालांकि सर्वत्र एक जैसे ढंग से नहीं। यहाँ खास बात यह हुई कि देश के कुछ हिस्सों में आम जनता के कुछ वर्गों में धार्मिक चेतना साम्प्रदायिक चेतना में बदल गई। भारत में जो स्थिति थी, उसकी कुछ बातें इसमें मददगार थीं, इससे समाज के कुछ हिस्सों की जरूरतें पूरी होती थी तथा कुछ सामाजिक और राजनीतिक ताकतों को फायदा था।

यद्यपि भारत में साम्प्रदायिकता का विकास अनिवार्य तथा अपरिहार्य नहीं था, लेकिन यह समझना गलत है कि यह सिर्फ सत्ता-लोलुप राजनीतिज्ञों या धूर्त प्रशासकों के षड्यन्त्र का नतीजा था। इसकी जड़े सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में थी। पूरी सामाजिक स्थिति ही ऐसी थी, जो इसके लिए जमीन तैयार कर रही थी और उसके अभाव में यह लम्बे समय तक टिक ही नहीं सकती थी।

प्र.3. सर सैयद अहमद के राजनीतिक दृष्टिकोण पर टिप्पणी कीजिए।

Comment on the political perspective of Sir Sayyad Ahmad.

उत्तर

सर सैयद अहमद का राजनीतिक दृष्टिकोण
(Political Outlook of Sir Sayyad Ahmad)

यह लगभग सर्वमान्य-सा मत है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश अधिकारियों के प्रोत्साहन से हुई। परन्तु शीघ्र ही कांग्रेस ने अधिकारी वर्ग की आशाओं के विपरीत ऐसी माँगें उनके सामने प्रस्तुत करनी प्रारम्भ कर दी कि दोनों के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गए। उनकी कुछ प्रमुख माँगों में विभिन्न विधान परिषदों में भारतीयों का अधिकतम प्रतिनिधित्व, आई०सी०एस० की परीक्षा इंग्लैंड और भारत में एक साथ किया जाना और सैनिक व्यय में कटौती जैसी माँगे सम्मिलित थीं। सैयद अहमद ने प्रारम्भ में तो कांग्रेस की गतिविधियों पर ध्यान नहीं दिया, पर कुछ ही दिनों बाद इसके विरुद्ध उनका विष-वमन प्रारम्भ हो गया।

यहाँ पर विचारणीय है कि सैयद अहमद अपने कांग्रेस-विरोधी उद्‌गारों से संकुचित साम्प्रदायिकता से नहीं वरन् अपने सामंती दृष्टिकोण से प्रेरित थे। पश्चिमी सभ्यता से वे प्रभावित अवश्य थे पर उनकी स्वयं की मानसिकता नहीं बदली थी। राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रतिनिधित्व प्रणाली की माँग को वह निम्न वर्गों के हाथ में सत्ता का हस्तान्तरण समझते थे। अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट के स्तम्भों पर सर सैयद ने कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार के लिए जमकर उपयोग किया। इसी पत्रिका के एक लेख में, जिसका शीर्षक 'कांग्रेस का दोष' था, उन्होंने प्रतियोगी परीक्षाओं के समकालिक करने की कांग्रेस की माँग को मुसलमानों के हितों की विरुद्ध बताया, क्योंकि यह समुदाय शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ था। ब्रिटिश राज के प्रति अटूट स्वामिभक्ति और अपनी कौम की पृथक् हित-साधना सैयद अहमद का राजनीतिक दृष्टिकोण बनता जा रहा था।

दुर्भावना के बावजूद राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में मुसलमान भाग लेते रहे। 1887 के तीसरे अधिवेशन के सभापति एक मुसलमान बदरुद्दीन तैयबजी थे। 13 जनवरी, 1888 को लिखे एक पत्र में तैयबजी ने सैयद अहमद से अपने दिमाग में इस विचार को निकाल देने को कहा कि कांग्रेस मुसलमानों का अहित चाहती थी। एक दूसरे पत्र में उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि सैयद अहमद कांग्रेस को मात्र बंगालियों के प्रभुत्व वाली संस्था समझते हैं। परन्तु इन तर्कों का सैयद अहमद पर कोई असर नहीं पड़ा। बल्कि उन्हीं की विचारधारा के अनुरूप उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के भूस्वामियों का एक वर्ग, जिसमें संडीला का ताल्लुकेदार, बनारस का महाराजा, भिनगा का राजा आदि सम्मिलित थे, कांग्रेस-विरोधी खेमे में शामिल हो गए।

कांग्रेस-विरोधी-अभियान में एम०ए० कॉलेज के प्रिंसिपल थियोडर बेक के रूप में सैयद अहमद को एक दुर्लभ सहयोगी मिला। 1883 में प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त बेक केम्ब्रिज विश्वविद्यालय का एक मेधावी छात्र था और 1899 तक इस पद पर बना रहा। अलीगढ़ के छात्रों को कांग्रेस से यथासंभव दूर रखने के लिए बेक ने छात्रावासों में जाकर और स्वयं उन्हें अपने निवास-स्थान पर बुलाकर उनको मानसिक रूप से इसके लिए तैयार किया। 23 अगस्त 1886 को अपने एक भाषण में बेक ने यह घोषणा की कि इस कॉलेज के कुछ विशेष उद्देश्य हैं, जो मात्र शैक्षणिक नहीं वरन् सामाजिक और राजनीतिक भी हैं। इसके राजनीतिक उद्देश्यों में मुसलमानों और अंग्रेजों के बीच समझदारी को बढ़ावा देना है।'' कांग्रेस-विरोधी राजनीतिक विचारधारा को

इंग्लैण्ड में प्रचारित करने के लिए बेक की सहायता से अगस्त 1888 में यूनाइटेड इंडियन पैट्रियाटिक ऐसोसिएशन की स्थापना की गई। इसी संगठन के तत्त्वाधान में 1889 में चार्ल्स ब्रैडलॉ के उस विधेयक के विरुद्ध, जिसका उद्देश्य भारत में प्रतिनिधि प्रणाली का विस्तार करना था, बीस हजार मुसलमानों के हस्ताक्षरों से युक्त एक अपील हाउस ऑफ कॉमन्स को भेजी गई। हस्ताक्षरकर्त्ताओं में बहुतो को अपील के मन्तव्य का पता नहीं था।

कांग्रेस की नीतियों के विरोध का एकमात्र लक्ष्य यह था कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की माँगों को स्वीकार न करे। फिर भी 1892 में इंडियन काउन्सिल ऐक्ट पारित हो गया। मुस्लिम हितों की पुनः रक्षा करने की आवश्यकता पड़ी। इसके लिए 1893 में मुहम्डन एंग्लों ओरिएन्टल डिफेन्स एसोसिएशन की तुलना में इस संगठन की बैठकें न तो सार्वजनिक होनी थी और न ही इसकी कोई शाखा स्थापित की जानी थी। डिफेंस एसोसिएशन के उद्घाटन-भाषण में बेक ने यह घोषणा की कि संप्रति देश में दो आन्दोलन चल रहे हैं—पहला, राष्ट्रीय कांग्रेस का और दूसरा, गो-हत्या विरोधी। एक अन्य लेख में बेक ने गृह सरकार की इस बात के लिए भर्त्सना की कि वह देशद्रोही आन्दोलनकर्ताओं के दबाव में आकर उनकी माँगे स्वीकार करती जा रही है। वस्तुतः उसका प्रभाव कॉलेज के जीवन पर बहुत बढ़ गया था। यह प्रभाव सैयद अहमद के अन्तिम वर्षों में स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था। यहाँ तक कहा जाता है कि 1884 के बाद यह वास्तव में बेक की राजनीति थी जो सैयद अहमद के नाम से विकसित हो रही थी। अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण उन्होंने अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट के समापन का काम बेक को ही सौंप दिया था जिसका लाभ उसने खूब उठाया। परन्तु इन तथ्यों से सैयद अहमद के व्यक्तित्व को कम प्रभावहीन नहीं समझना चाहिए। सैयद अहमद की ब्रिटिश राज के प्रति स्वामिभक्ति, प्रतिनिधित्व प्रणाली का विरोध और प्रतियोगी परीक्षाओं का भारत और इंग्लैण्ड में साथ किए जाने के विरुद्ध धारणाएँ बेक के आने से पूर्व ही बन चुकी थी। उनकी दृष्टि में कांग्रेस-आन्दोलन में भाग लेना मुसलमानों के हितों को आघात पहुँचाने के समान था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. साम्प्रदायिकता को परिभाषित कीजिए एवं इसका यथार्थ स्पष्ट कीजिए।
Define communalism and explain its real meaning.

उत्तर

साम्प्रदायिकता-परिभाषा
(Definition of Communalism)

साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक विचारधारा के तीन तत्त्व या चरण होते हैं और उनमें एक तारतम्य होता है। इस क्रम में सबसे पहला स्थान इस विश्वास का है कि एक ही धर्म माननेवालों के सांसारिक हित यानी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हित भी एक जैसे ही होते हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा के उदय का यह पहला आधार है इसी में धर्म पर आधारित सामाजिक राजनीतिक समुदायों की धारणा का जन्म होता है। वर्गों, जातीय समूहों, भाषाई-सांस्कृतिक जमायतों, राष्ट्रों या प्रान्तों और राज्यों जैसी राजनीतिक-क्षेत्रीय इकाइयों के स्थान पर धर्म पर आधारित इन समुदायों को ही भारतीय समाज की बुनियादी इकाइयों के रूप में देखा जाने लगता है। ऐसा मान लिया जाता है कि भारतीय जनता धर्म पर आधारित इन समुदायों के सदस्यों के रूप में ही अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन का संचालन कर सकती है तथा अपने सामूहिक यारी गैर व्यक्तिगत हितों की सुरक्षा कर सकती है। इन विभिन्न समुदायों के अपने अलग-अलग नेता होते हैं, जो अपने को राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या किसी खास वर्ग का नेता बतलाते हैं।

साम्प्रदायिक विचारधारा का दूसरा तत्त्व, यह विश्वास है कि भारत जैसे बहुभाषी समाज में एक धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हित यानी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक हित अन्य किसी भी धर्म के अनुयायियों के सांसारिक हितों से भिन्न है। साम्प्रदायिकता अपने तीसरे चरण में तब प्रवेश करती है, जब यह मान लिया जाता है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों या 'समुदायों के हित एक-दूसरे के विरोधी हैं। इस चरण में आकर साम्प्रदायिक व्यक्ति जोर देकर यह कहने लगता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के सांसारिक हित एक हो ही नहीं सकते, उनमें परस्पर विरोध होना ही है।

अतः बुनियादी रूप से साम्प्रदायिकता ही वह विचारधारा है, जिसके आधार पर साम्प्रदायिक राजनीति खड़ी होती है। साम्प्रदायिक हिंसा, साम्प्रदायिक विचारधारा का ही एक स्वाभाविक नतीजा है। इसी तरह हिन्दू, मुस्लिम, सिख या ईसाई साम्प्रदायिकताएँ एक दूसरी से जुदा नहीं है। वे एक ही वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ हैं। ऊपर से भले ही अलग-अलग दिखती हों, पर उनके मूल में एक ही तरह की साम्प्रदायिक विचारधारा काम करती रहती है।

किसी भी व्यक्ति, दल या आन्दोलन में साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म पहले चरण से होता है। बहुत से जातीय समूह इसके शिकार हो जाते हैं, यद्यपि वे साम्प्रदायिकता के अन्य दो तत्त्वों को स्वीकार नहीं करते यानि यह नहीं मानते कि धर्म पर आधारित विभिन्न समुदायों के हित अनिवार्य रूप से एक-दूसरे के विरोधी ही होते हैं। ये वही लोग थे, जिन्होंने अपने को सिर्फ राष्ट्रीयतावादी कहने के बजाय राष्ट्रीयतावादी हिन्दू, राष्ट्रीयतावादी मुसलमान या राष्ट्रीयतावाद सिख के रूप में देखा।

साम्प्रदायिकता के दूसरे चरण को उदार साम्प्रदायिकता या हाल की लोकप्रिय शब्दावली का प्रयोग करें तो नरमपंथी साम्प्रदायिकता कह सकते हैं। उदार साम्प्रदायिकतावादी भी मूलत: साम्प्रदायिक राजनीति ही कर रहा था, फिर भी उसकी आस्था कुछ उदारवादी लोकतान्त्रिक, मानवतावादी और राष्ट्रीयतावादी मूल्यों में थी। वह यह तो मानता ही था कि भारत का निर्माण ऐसे विभिन्न धर्माधारित समुदायों से हुआ है, जिनके अपने-अपने अलग-अलग और विशेष हित है जिनमें कभी-कभी टकराव की भी नौबत आ जाती है, फिर भी वह यह मानता था और सार्वजनिक रूप से कहता भी था कि इन विभिन्न साम्प्रदायिक हितों को परस्पर समाहित किया जा सकता है तथा सामान्य राष्ट्रीय हितों से उनकी संगति बैठाई जा सकती है और इस प्रकार भारत को एक राष्ट्र बताया जा सकता है। 1937 के पहले अधिकांश साम्प्रदायिकतावादी, मसलन 1925 के पूर्व हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, अलीबन्धु तथा 1922 के बाद मुहम्मद अली जिन्ना, मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपतराय और एन०सी० केलकर इसी उदारवादी साम्प्रदायिक ढाँचे के तहत काम करते थे।

साम्प्रदायिकता का तीसरा या अन्तिम चरण उपस्थित हुआ उग्रवादी साम्प्रदायिकता के उदय के साथ उग्रवादी साम्प्रदायिकता यानि ऐसी साम्प्रदायिकता जिसके तौर तरीके फासीवादी होते हैं। उग्रवादी साम्प्रदायिकता के मूल में भय या घृणा थी तथा भाषा, कर्म एवं आचरण के स्तर पर उसका मिजाज हिंसक था। अपने राजनीतिक विरोधियों को वह अपना दुश्मन मानती थी तथा उनके खिलाफ वह युद्ध की भाषा बोलती थी। इसी चरण में आने के बाद साम्प्रदायिकतावादियों ने घोषणा करनी शुरू की कि मुसलमान, मुस्लिम संस्कृति और इस्लाम तथा हिन्दू धर्म और उसकी संस्कृति के अस्तित्व पर खतरा है। साथ ही, मुस्लिम एवं हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों ने यह सिद्धान्त पेश करना शुरू किया कि मुसलमान और हिन्दू दो अलग-अलग राष्ट्र हैं तथा उनके बीच ऐसा स्थायी द्वंद्व है, जिसे कभी भी समाहित नहीं किया जा सकता। 1937 के बाद मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ शुरू से ही इस उग्रवादी या फासीवादी साम्प्रदायिकता की ओर बढ़ रहे थे।

यद्यपि साम्प्रदायिकता के ये तीनों दौर अलग-अलग वक्त पर आए, लेकिन वे एक-दूसरे को प्रभावित भी करते रहे और उनमें एक तरह की निरन्तर भी बनी रही। पहले चरण की साम्प्रदायिकता ने उदारवादी और उग्रवादी साम्प्रदायिकता को मजबूत किया तथा उनके खिलाफ संघर्ष चलाना कठिन कर दिया। इसी तरह उदारवादी साम्प्रदायिकता उग्रवादी साम्प्रदायिकता के विचारधारात्मक विकास को रोक नहीं सके।

साम्प्रदायिक यथार्थ का मतलब
(Real Meaning of Communalism)

साम्प्रदायिकता से जुड़े कुछ और पहलुओं पर भी हमें गौर करना चाहिए। जब कोई साम्प्रदायिकतावादी अपने समुदाय के हितों की रक्षा की बात करता था या उसमें निष्ठा रखता था तो वास्तविक जीवन में ये हित धर्म के दायरे के बाहर नहीं होते थे। सच तो यह है कि हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अन्य समुदायों के आर्थिक-राजनीतिक हित एक ही थे और उस स्तर पर उनके बीच कोई सामुदायिक विभाजन नहीं किया जा सकता था। हिन्दू या मुसलमान के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर या क्षेत्रीय स्तर पर भी उनका कोई अलग-अलग राजनीतिक-आर्थिक जीवन नहीं था। क्षेत्र, भाषा, वर्ग, जाति सामाजिक, हैसियत, सामाजिक परम्पराएँ, खान-पान और पहनावा, इन सभी मामलों में हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई सामुदायिक एकता नहीं थी, बल्कि अनेक दृष्टियों से बहुत से हिन्दू और बहुत से मुसलमान एक दूसरे के नजदीक थे। जहाँ तक उच्चवर्गीय मुसलमान का सवाल है, उसका जीवन सांस्कृतिक दृष्टि से भी गरीब मुसलमान के बजाय उच्च वर्गीय हिन्दू के ज्यादा करीब था। इसी तरह सांस्कृतिक स्तर पर पंजाबी हिन्दू किसी बंगाली हिन्दू की तुलना में पंजाबी मुसलमान के ज्यादा करीब था, जैसे बंगाली मुसलमान पंजाबी मुसलमान की तुलना में बंगाली हिन्दू के ज्यादा निकट था। इस तरह जाहिर है कि भारतीय जनता का साम्प्रदायिक विभाजन अवास्तविक था और इसका उद्देश्य वास्तविक विभाजनों यानि विभिन्न भाषाई-सांस्कृतिक अंचलों तथा सामाजिक वर्गों के अस्तित्व तथा एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो रही वास्तविक एकता के इर्द-गिर्द धुंध पैदा करना था।

यदि साम्प्रदायिकता हितों का सचमुच कोई वजूद नहीं था, तो साम्प्रदायिकता भी सामाजिक यथार्थ की कोई आंशिक एक पक्षीय था वर्गीय समझ नहीं थी, बल्कि वह चीजों को गलत या अवैज्ञानिक दृष्टि से देखने की कोशिश थी। कभी-कभी यह कहा जाता है कि साम्प्रदायिक व्यक्ति का नजरिया चूँकि संकीर्ण होता है, अत: वह सिर्फ अपने समुदाय के हितों के बारे में ही सोचता है, लेकिन

अगर ऐसे हित होते ही न हो तो वह समुदाय या सह-धर्मावलम्बियों के हितों की रक्षा कैसे कर सकता है? वह अपने तथाकथित समुदाय का प्रतिनिधि नहीं हो सकता था। समुदाय के हितों के बारे में ही सोचता है। समुदाय के हितों की रक्षा करने के नाम पर वह जाने या अनजाने कुछ दूसरे ही हितों की रक्षा कर रहा था। इस प्रकार वह या तो दूसरों के साथ छल कर रहा था या अचेतनरूप से आत्मछल का शिकार था। साम्प्रदायिक मान्यताएँ, साम्प्रदायिक तर्कप्रणाली और साम्प्रदायिक समाधान—इन सबका कोई वास्तविक आधार था ही नहीं। साम्प्रदायिकतावादी जिन चीजों को समस्याओं के रूप में पेश कर रहे थे, वे वास्तविक समस्याएँ नहीं थी और न वे समाधान ही वास्तविक समाधान थे, जिन्हें वे समाधान कहकर पेश कर रहे थे। साम्प्रदायिकतावादी न केवल गलत समाधान देता था, बल्कि गलत सवाल भी उठाता था।

कभी-कभी यह कहा जाता है कि साम्प्रदायिकता तो अतीत की एक विरासत है। लेकिन सच्चाई यह है कि साम्प्रदायिकता प्राचीन और मध्ययुगीन विचारधाराओं का इस्तेमाल जरूर करती है तथा उन पर आधारित भी होती है। लेकिन मूलत: यह एक आधुनिक विचारधारा और राजनीतिक प्रवृत्ति थी, जो आधुनिक सामाजिक समूहों, वर्गों और ताकतों की सामाजिक आकांक्षाओं को व्यक्त करती थी और उनकी राजनीतिक जरूरतों को पूरा करती थी। इसकी सामाजिक जड़ों तथा इसके सामाजिक, राजनीतिक जरूरतों को पूरा करती थी। इसकी सामाजिक जड़ों तथा इसके सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक लक्ष्यों को भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में खोजा जा सकता है। समकालीन सामाजिक-आर्थिक ढाँचे ने न केवल इसे पैदा किया, बल्कि पुष्पित-पल्लवित भी किया।

साम्प्रदायिकता का उदय आधुनिक राजनीति के उदय से जुड़ा हुआ है। आधुनिक राजनीति प्राचीन मध्य युगीन था। 1857 के पहले की राजनीति का सीधा विकास ही थी, बल्कि वह एक नई जमीन पर विकसित हुई। राष्ट्रीयतावाद तथा समाजवाद जैसी अन्य दृष्टियों की तरह ही राजनीति और विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता का उदय भी तभी सम्भव हुआ जब जनता की भागीदारी, जन-जागरण और जनमत के आधार पर चलने वाली राजनीति अपने पाँव-जमा चुकी थी। आधुनिक युग के पहले की राजनीति में उच्च वर्ग का वर्चस्व था और जन-साधारण उपेक्षित था। जनता विद्रोह भी करती थी, तो राजनीतिक व्यवस्था के बाहर और उसका विद्रोह सफल होने पर उसके नेताओं को पुराने शासक वर्गों में शामिल कर लिया जाता था। बहुत से दृष्टि-सम्पन्न भारतीयों ने इस बात को भली-भाँति समझा भी। उदाहरण के लिए जवाहरलाल नेहरू ने 1936 में लिखा, "यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि भारत में साम्प्रदायिकता एक परवर्ती घटना है, जिसका जन्म हमारी आँखों के सामने ही हुआ है।" ऐसा भी नहीं है कि साम्प्रदायिकता जैसी चीज का विकास सिर्फ भारत में ही हुआ है। यह भारत के विशेष ऐतिहासिक या सामाजिक विकास का अनिवार्य या अपरिहार्य नतीजा भी नहीं था। यह उन स्थितियों की उपज था, जिन्होंने दूसरे समाजों में साम्प्रदायिकता जैसी घटनाओं और विचारधाराओं को जन्म दिया है, जैसे फासीवाद सामीवाद-विरोध, नस्लवाद, उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट संघर्ष या लेबनान में ईसाई-मुस्लिम संघर्ष।

प्र.2. भारतीय इतिहास के साम्प्रदायिक इस्तेमाल एवं अलीगढ़ आन्दोलन का वर्णन कीजिए।
Describe the communal use of Indian History and the Aligarh Movement.

उत्तर

इतिहास का साम्प्रदायिक इस्तेमाल
(Communal Use of History)

भारतीय इतिहास खासतौर से प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय इतिहास की साम्प्रदायिक तथा अवैज्ञानिक, विकृत व्याख्या साम्प्रदायिक चेतना के फैलाव का एक मुख्य औज़ार बनी। साम्प्रदायिक विचारधारा का यह एक बुनियादी अंग भी था। स्कूल-कॉलेजों में भारतीय इतिहास बुनियादी रूप से साम्प्रदायिक दृष्टि से ही पढ़ाया जा रहा था और इससे साम्प्रदायिकता के उदय और विकास में भारतीय सहायता मिली। पीढ़ियों से, बल्कि आधुनिक स्कूल व्यवस्था की शुरुआत से भी पहले साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा और बाद में अन्य लेखकों द्वारा इतिहास की विकृत व्याख्याएँ पेश की गई। इसका असर इतना गहरा था कि कुछ कट्टर राष्ट्रवादियों ने भी, भले ही काफी अचेतन स्तर पर, इनमें से कुछ व्याख्याओं को अंगीकार कर लिया। उस समय के बहुत से नेताओं को इसका अहसास भी था। उदाहरण के लिए गाँधीजी ने लिखा, "हमारे देश में साम्प्रदायिक सौहार्द तब तक स्थायी रूप से नहीं लाया जा सकता, जब तक हमारे स्कूल-कॉलेजों में इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के जरिए इतिहास की बेहद विकृत व्याख्याएँ पढ़ाई जाती रहेंगी।" लेकिन इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्याएँ केवल पाठ्य-पुस्तकों के जरिए नहीं फैलाई जा रही थी, इसके लिए उनसे भी ज्यादा कविताओं, नाटकों, ऐतिहासिक उपन्यासों और कहानियों, समाचारपत्रों तथा लोकप्रिय पत्रिकाओं और परचों का इस्तेमाल किया जा रहा था तथा सार्वजनिक मंच से दिए गए व्याख्यानों, कक्षा की पढ़ाई, पारिवारिक और निजी चर्चाओं तथा बातचीत के माध्यम से भी वह जहर फैलाया जा रहा था।

TOUCH 'n' PASS

इतिहास को साम्प्रदायिक रंग देने की शुरुआत सबसे पहले उन्नीसवीं शताब्दी में हुई। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स ने भारतीय इतिहास के प्राचीन काल को हिन्दू युग और मध्य काल को मुस्लिम युग की संज्ञा दी। इस लिहाज से उसे आधुनिक काल को ईसाई युग कहना चाहिए था। दूसरे ब्रिटिश और भारतीय इतिहासकारों ने भी इस मामले में उसका अनुसरण किया। मध्यकाल में मुस्लिम जनता भी उतनी ही निर्धन, शोषित और दमन का शिकार थी, जितनी हिन्दू जनता और जमींदारों, जागीरदारों तथा शासकों में हिन्दू-मुसलमान दोनों थे, फिर भी इन लेखकों ने घोषित कर दिया कि उस दौर में सभी मुसलमान शासक थे और सभी हिन्दू शासित। यानी भारत की राज्य-व्यवस्था के चरित्र का निर्णय इस बात से किया जाने लगा कि शासक का अपना धर्म क्या था। बाद में किसी खास समय के समाज और सांस्कृतिक के रूप में याद किया जाने लगा।

हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों ने इस साम्राज्यवादी प्रचार को भी जल्द ही अंगीकार कर लिया कि मध्य युग के शासक हिन्दू-विरोधी थे, हिन्दुओं पर जुल्म करते थे और उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाते थे। सभी साम्प्रदायिकतावादी इतिहासकारों ने, साम्राज्यवादियों की हाँ में हाँ मिलाते हुए, मध्यकालीन इतिहास को हिन्दू-मुस्लिम विवाद का एक दीर्घ अध्याय करार दिया और यह माना कि पूरे मध्य युग में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ अलग-अलग मौजूद रही। मध्यकाल के मुसलमान शासकों को, उनके धर्म के कारण, विदेशी भी घोषित कर दिया गया, आजादी की लड़ाई के दिनों में 'हजार वर्ष की गुलामी' और 'विदेशी शासन' जैसे मुहावरे आम हो गए थे और इसका प्रयोग कभी-कभी राष्ट्रवादियों द्वारा भी किया जाता था। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इतिहास की हिन्दू साम्प्रदायिक दृष्टि इस मिथक पर बहुत बल देती थी कि भारतीय समाज प्राचीन काल में एक महान ऊँचाई पर पहुँच गया था और मध्यकाल में मुस्लिम शासन तथा वर्चस्व के कारण उसका लगातार पतन होता गया। भारतीय अर्थव्यवस्था और टेक्नोलॉजी, धर्म और दर्शन, कला और साहित्य तथा संस्कृति और समाज में मध्यकाल ने जो मौलिक योगदान किया, उसे पूरी तरह नकार दिया गया।

स्वाभाविक था कि मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादियों पर इसकी प्रतिक्रिया होती। उन्होंने पश्चिम एशिया में 'इस्लामिया उपलब्धियों के स्वर्ण युग' का राग अलापना शुरू किया और उसके नायकों, मिथकों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं के गीत गाने लगे। उन्होंने प्रचारित करना शुरू किया कि मध्यकाल के सभी मुसलमान शासक वर्ग में थे या कम-से-कम मुस्लिम शासन से लाभान्वित हो रहे थे। वे सभी मुसलमान शासकों को, यहाँ तक कि औरंगजेब जैसे मदांध राजाओं को भी, महिमामंडित करने की कोशिश करते थे तथाकथित पतन का उनका भी अपना एक सिद्धान्त था। उनके अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी में राजनीतिक सत्ता छिन जाने के बाद एक समुदाय के रूप में मुसलमानों का पराभव हुआ और हिन्दू आगे बढ़ने लगे।

कुछ लेखकों के अनुसार भारत में साम्प्रदायिकता के विकास का मुख्य कारण यहाँ कई धर्मों का समानान्तर अस्तित्व था। लेकिन यह वास्तविकता नहीं है। भारत में साम्प्रदायिकता के विकास में धर्म की कोई बुनियादी भूमिका नहीं थी। धर्म के दो रूप है। उसका एक रूप में निष्ठाओं की वह पद्धति जिनके अनुसार व्यक्ति अपने जीवन का संचालन करता है और दूसरा रूप है धर्म पर आधारित सामाजिक राजनीतिक पहचान की विचारधारा यानी साम्प्रदायिकता दूसरे शब्दों में, धर्म साम्प्रदायिकता का कारण नहीं बनता, हालाँकि सभी तरह के साम्प्रदायिकतावादी धार्मिक मतभेदों का इस्तेमाल करते हैं। इन मतभेदों का इस्तेमाल उन सामाजिक आवश्यकताओं आकांक्षाओं संघर्षों इत्यादि को ढकने या विकृत रूप में पेश करने के लिए किया जाता है, जिनका धर्म से कुछ भी लेना-देना नहीं है। साम्प्रदायिकता के दायरे में धर्म उसी हद तक आता है, जिस हद तक वह गैर-धार्मिक मामलों में राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। के०एम० अशरफ जब साम्प्रदायिकता को 'मजहब की सियासी दुकानदारी बतलाते हैं तो इस पहलू का बहुत ही सटीक विश्लेषण करते हैं। साम्प्रदायिकता की प्रेरणा धर्म ने कतई नहीं दी और न साम्प्रदायिक राजनीति धार्मिक उत्थान चाहती थी उसके लिए धर्म एक औज़ार भर था।

लेकिन साम्प्रदायिकतावादियों ने धर्म का प्रयोग अपने अनुयायियों को गोलबन्द करने के लिए जरूर किया। साम्प्रदायिकता 1939 के बाद और खासतौर से 1945-47 के दौरान जनता के बीच अपनी जड़े तभी जगा पाई, जब उसने यह या वह 'धर्म खतरे में है'। का उत्तेजक नारा लगाना शुरू किया। इसके अलावा साम्प्रदायिक तनाव और दंगों का तात्कालिक कारण धार्मिक आचरण की विभिन्नता ही होती थी। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि इसमें धार्मिकता का योगदान जरूर था। धार्मिकता की परिभाषा धार्मिक मामलों में ऐसी गहरी भावनात्मक प्रतिबद्धता के रूप में की जा सकती है, जो धार्मिक लगावों को गैर-धार्मिक मामलों तक ले जाती है और इस तरह उन्हें व्यक्ति के निजी संसार तक सीमित नहीं रहने देती। धार्मिकता से साम्प्रदायिकता नहीं पैदा हुई, लेकिन उसने यह जमीन जरूर तैयार की जिसमें साम्प्रदायिकता का पौधा फल-फूल सकता था। अत: धर्म-निरपेक्षता का तकाजा यह नहीं था कि धर्म को समाप्त कर दिया जाए, बल्कि यह था कि धार्मिकता के आवेग को कम किया जाए तथा धर्म की भूमिका को व्यक्ति के निजी जीवन तक ही सीमित रखा जाए।

अलीगढ़ आन्दोलन
(Aligarh Movement)

19वीं शताब्दी के सातवें दशक में, जब ब्रिटिश शासक वर्ग में मुसलमानों के प्रति सन्देह की भावना अपनी पराकाष्ठा पर थी, उनकी स्वामिभक्ति का विश्वास उन्हें कैसे दिया जाए, यह सैयद अहमद की सबसे बड़ी समस्या थी इस दिशा में उन्होंने साइंटिफिक सोसायटी की स्थापना की। 1864 में इसे अलीगढ़ लाया गया। इस सोसायटी का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश राज्य के स्थायित्व के लाभों को बताना था, साथ ही पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान की प्रमुख पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करके उसे लोकप्रिय बनाना था। लगभग सत्ताईस पुस्तकों का अनुवाद उर्दू भाषा में किया गया। 1867 में अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट पत्रिका अलीगढ़ से प्रारम्भ की गई। अलीगढ़ आन्दोलन की मुख्य विचारधारा को समझने का मुख्य स्रोत इस पत्रिका में समय-समय पर लिखे गए लेख ही है। वस्तुत: अलीगढ़ क्रमश: मुस्लिम नवचेतना का केन्द्र बनता जा रहा था। 1869-70 में सैयद अहमद इंग्लैण्ड गए और पश्चिमी सभ्यता और सम्पन्नता देखकर स्तब्ध रह गए। वहीं पर उन्होंने यह निश्चय किया कि अलीगढ़ में एक ऐसी आवासीय शिक्षण-संस्था का निर्माण करेंगे जो पश्चिमी शिक्षा का केन्द्र बने।

प्र.3. मुस्लिम लीग की स्थापना कब हुई? इसका विस्तार से वर्णन कीजिए।
When did Muslim League form? Describe in detail.

उत्तर

मुस्लिम लीग की स्थापना
(Formation of Muslim League)

(क) उग्र हिन्दू धार्मिक आन्दोलन (Extremist Hindu Movement)

अलीगढ़ आन्दोलन ने जिस बौद्धिक जागरुकता का विस्तार किया, उससे मुसलमानों को अपनी एक पहचान स्थापित करने में सहायता मिली। इसी जागरुकता से आगे चलकर उन्हें राजनीतिक रूप से संगठित होने का अवसर मिला। पर इस स्थिति को उत्पन्न करने में एक बहुत बड़ा सहयोगी तत्त्व था—हिन्दू उग्रवादी धार्मिक आन्दोलन, जिसके फलस्वरूप मुस्लिम सामुदायिक भावनाएँ मुस्लिम साम्प्रदायिक भावनाओं में परिवर्तित हो गई।

यद्यपि हिन्दू धार्मिक पुनरुत्थान का सूत्रपात राजा राममोहन राय द्वारा बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना से हुआ, लेकिन हिन्दू धर्म के जिस रूप ने उत्तर और पश्चिम भारत के बहुसंख्यक हिन्दू समाज को प्रभावित किया उसने प्रतिनिधि स्वामी दयानन्द सरस्वती थे जिन्होंने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। भारत के इस भाग में आर्य समाज की लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि इस क्षेत्र में अभी भी सामाजिक दृष्टिकोण से मुस्लिम प्रभाव विद्यमान था। आर्य समाज जहाँ एक ओर हिन्दू कुरीतियों पर आक्रमण कर रहा था, वही इस आन्दोलन का एक पक्ष था दूसरे धर्मों के प्रति, विशेषकर इस्लाम के प्रति, असहिष्णुता। इस असहिष्णुता का सबसे ज्वलन्त प्रमाण हमें गो-हत्या के विरुद्ध आन्दोलन में मिलता है।

साधारणत: ब्रिटिश अधिकारी वर्ग भारतीय जनता की धार्मिक परम्पराओं में हस्तक्षेप के विरुद्ध था। गो-हत्या के सम्बन्ध में वे हिन्दू सामाजिक मान्यताओं से अवगत थे इसलिए मांसाहारियों के लिए गो-हत्या सार्वजनिक स्थानों से दूर सैनिक छावनियों में ही की जाती थी। इस कारण इस प्रश्न को लेकर नए धार्मिक उग्रवाद की दिशा अंग्रेजों की तरफ नहीं मोड़ी जा सकती थी, पर ऐसा करना मुसलमानों के विरुद्ध सम्भव था। 1882 में दयानन्द ने गौरक्षिणी सभा की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप लाहौर, अम्बाला एवं फीरोजपुर में गो-हत्या के विरुद्ध दंगे हुए। 1886 में लुधियाना और दिल्ली में कई दंगे हुए। इस दृष्टि से सबसे दुर्भाग्यपूर्ण वर्ष 1893 सिद्ध हुआ। दंगे पूर्वी उत्तर प्रदेश के मऊ स्थान से प्रारम्भ हुए और जूनागढ़ तथा बम्बई तक फैल गए। सितम्बर 1893 में बम्बई में तीन दिन तक दंगे होते रहे जिनमें 80 जाने गईं और 300 मंदिर, मस्जिद और दुकानें नष्ट कर दी गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने आप में पूर्णत: धर्मनिरपेक्ष थी, पर उसके बहुत से सदस्य गोरक्षिणी सभाओं के भी सदस्य थे। उनको अनुशासित करने के लिए कांग्रेस की धर्म निरपेक्षता की छवि पर असर पड़ा। प्रोफेसर जॉन मैक्लेन ने अपनी पुस्तक इंडियन नेशनलिज्म एंड अर्ली कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रवाद और आरम्भिक कांग्रेस) में इन दंगों की वजह से कांग्रेस अधिवेशनों में मुसलमानों की गिरती सदस्यता का संकेत दिया हैं। उनके अनुसार 1885 से 1892 तक कांग्रेस अधिवेशन में कुल 6,413 सदस्यों ने भाग लिया, जिनमें मुसलमानों की संख्या 868 या 13.5 प्रतिशत थी। 1893 से 1905 के बारह वर्षों के काल में कुल सदस्य संख्या 10,677 थी जिसमें 761 अर्थात् 7.1 प्रतिशत मुसलमान थे।

हिन्दू धार्मिक आन्दोलनों की यही आक्रामक प्रवृत्ति पश्चिमी भारत, विशेषत: महाराष्ट्र में दिखाई पड़ती है। इसका नेतृत्व बालगंगाधर तिलक ने किया वो स्वयं साम्प्रदायिकतावादी नहीं थे, परन्तु विदेशी सत्ता के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिए

TOUCH 'n PASS

उन्होंने जिन राजनीतिक प्रतीकों का प्रयोग किया, उससे हिन्दू मुस्लिम विद्वेष में वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, उन्होंने शिवाजी महोत्सव का आयोजन किया। शिवाजी को गो-रक्षा के संदर्भ में तो जाना ही जाता था, अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से तिलक ने मुस्लिम सुल्तानों और मुगल शासकों के विरुद्ध शिवाजी के कारनामों का अतिरंजित रूप प्रस्तुत किया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि मुस्लिम लेखक बीजापुर और औरंगजेब के समर्थ में तथ्य प्रस्तुत करने लगे।

उत्तर-पश्चिमी प्रान्त में इसी काल में उर्दू भाषा के भविष्य को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया। इस प्रान्त में अरबी लिपि में उर्दू भाषा का प्रयोग, विशेषकर न्यायालयों और शासन के निम्न स्तरों पर, लम्बी अवधि से किया जा रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में उर्दू के बदले देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को शासन की भाषा के रूप में प्रयोग की माँग की जाने लगी। बिहार और मध्य प्रान्त में हिन्दी को आठवें दशक में अपना लिया गया था। मुसलमानों के रुष्ट हो जाने के भय से उत्तर-पश्चिमी प्रान्त में इस माँग को स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु 1900 में प्रान्त के लेफ्टीनेंट गर्वनर ऐन्थनी मैक्डॉनेल ने बिना किसी पूर्व-मन्त्रणा के हिन्दी को न्यायालयों की वैकल्पिक भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया जो हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के लिए हानिकर सिद्ध हुआ।

(ख) ब्रिटिश नौकरशाही की भूमिका (Role of British Bureaucracy)

1905 के बंग-विभाजन का राष्ट्रवादी आन्दोलन पर तो प्रभाव पड़ ही, मुस्लिम साम्प्रदायिकता को अग्रसर करने में भी इसका बहुत योगदान है। लॉर्ड कर्जन ने विभाजन से पूर्व ही पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को यह आश्वासन दिया था कि नए सूबे में उनकी वही प्रधानता स्थापित हो जाएगी, जो कभी मुस्लिम सूबेदारों के युग में थी। कर्जन की इसी नीति का पालन नए प्रान्त के लेफ्टीनेंट गर्वनर वैम्पफील्ड फुलर और उसके उत्तराधिकारी लैंसलाट हेयर ने किया। इन अधिकारियों का प्रयास ढाका के नवाब के संरक्षण में एक सरकारपरस्त और विभाजन को समर्थन करनेवालों का वर्ग तैयार करना था।

इसी समय इंग्लैण्ड में लिबरल सरकार में भारत सचिव लॉर्ड मॉर्ले ने सांविधानिक सुधारों के सम्बन्ध में घोषणा की। उसने विशेषत: शिक्षा के विस्तार एवं संचार-साधनों के निरन्तर विकास के संदर्भ में भारत में प्रतिनिधि शासन प्रणाली के विस्तार का समर्थन किया। इस घोषणा ने मुसलमानों को विभिन्न विधानसभाओं में अपने भविष्य के प्रति उद्वेलित कर दिया। 1892 के इंडियन काउंसिल्स एक्ट के पंद्रह साल के कार्यान्वयन ने पेशेवर वर्ग, विशेषकर वकील वर्ग का इन सभाओं में आधिपत्य स्थापित कर दिया था। 1893 से 1907 के मध्य केन्द्रीय विधानसभा में केवल 12 प्रतिशत स्थान मुसलमानों को प्राप्त हुए थे जबकि जनसंख्या के वे 23 प्रतिशत थे। सरकारी नौकरियों में भी मुसलमानों की नियुक्ति के प्रश्न पर स्थिति विश्वासजनक नहीं थी। 1904 में लॉर्ड कर्जन के आदेशों पर किए गए एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि भारत की सेवा में लगे पचहत्तर रुपए या इससे अधिक वेतन पर करने वाले हिन्दुओं की संख्या 1427 थी और मुसलमानों की मात्र 213। यह अनुपात सात हिन्दुओं पर एक मुसलमान का पड़ता था जबकि कुल जनसंख्या के वे एक चौथाई थे।

आश्चर्य नहीं कि चुनाव प्रणाली के और भी विस्तार की सम्भावना ने शिक्षित मुसलमानों को 'एक उदासीन' बहुमत की दया पर निर्भर करने की आशंका से भर दिया। इसलिए नए सुधारों में मुसलमानों को समुचित स्थान दिलाने के लिए वाइसराय के सम्मुख उनके विचारों को रखने का निश्चय किया गया। इस प्रयत्न में अलीगढ़ कॉलेज के प्रिंसिपल डब्ल्यू० ए० वी० आर्कबोल्ड ने मुख्य भूमिका निभाई। 1 अगस्त 1906 में आर्कबोल्ड शिमला में थे। अलीगढ़ कॉलेज के सेक्रेटरी मोहसिन-उल-मुल्क ने 4 अगस्त 1906 को आर्कबोल्ड को लिखे एक पत्र में नए सुधारों में मुसलमानों के पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए वाइसराय को एक स्मृति-पत्र प्रस्तुत करने और उससे प्रमुख मुसलमानों के एक शिष्ट मंडल द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने की उपादेयता पर सलाह माँगी। 8 अगस्त 1906 को लॉर्ड मॉर्ले को लिखे एक पत्र में लॉर्ड मिन्टो ने मोहसिन-उल-मुल्क के पत्र का, जिसमें मुसलमानों के लिए एक पृथक् चुनाव प्रणाली की माँग की गई थी, उल्लेख किया है। चार दिनों की अल्प अवधि में ही मोहसिन-उल-मुल्क द्वारा लिखे गए पत्र का उच्चतम अधिकारियों के पत्राचार का विषय बन जाना निश्चित योजना का परिणाम था। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों में 1 अक्टूबर 1906 को आगा खाँ के नेतृत्व में एक पैंतीस सदस्यीय शिष्ट मंडल शिमला में वाइसराय से मिला। वाइसराय को दिए गए स्मृति-पत्र में मुसलमानों की देश के हिन्दू समुदाय के साथ कई समान हितों पर कार्य करने की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए उनके कुछ विशिष्ट हितों पर ध्यान आकर्षित किया गया। यह धारणा व्यक्त की गई कि इन विशिष्ट हितों की रक्षा प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा निर्वाचित सदस्य नहीं कर सकते, इसलिए मुस्लिम सदस्यों के निर्वाचन के लिए केवल मुसलमानों द्वारा निर्मित पृथक् चुनाव मंडलों की स्थापना की माँग की गई। इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया कि भविष्य में किए गए किसी सांविधानिक परिवर्तन में न केवल मुसलमानों की संख्या, वरन् उनके राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्त्व का भी ध्यान रखा जाए। लॉर्ड मिन्टो ने अपने उत्तर में स्मृति-पत्र में कही गई बातों की गंभीरता को स्वीकार किया और अपनी धारणा प्रकट करते हुए यह कहा कि किसी भी ऐसी चुनाव प्रणाली का जिसमें भारत में बसे अनेक समुदायों की परम्पराओं

और मान्यताओं का समुचित ध्यान नहीं रखा गया हो, असफल होना अनिवार्य है। उसने मुसलमानों को, एक समुदाय के रूप में, अपने प्रशासन में किए गए परिवर्तनों में पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन दिया।

लॉर्ड मिण्टो और लॉर्ड मॉर्ले तथा भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार के पत्राचार में 1906 में दिए गए पृथक् चुनाव सम्बन्धी आश्वासन को नए सांविधानिक परिवर्तन का आधार माना गया था। इसलिए जब भारत सचिव ने नवम्बर 1905 में पृथक् चुनाव के स्थान पर मिश्रित चुनाव मंडलों की अपनी योजना प्रस्तुत करनी चाही तो लॉर्ड मिन्टो सहित समस्त मुस्लिम संगठित समुदाय ने इसका घोर विरोध किया। लन्दन में मुस्लिम लीग की शाखा के अध्यक्ष सर अमीर अली के नतृत्व में लॉर्ड मार्ले के सुझावों का इतना योजनाबद्ध प्रचार हुआ कि दबाव में आकर उसे अपने प्रस्ताव वापस लेने पड़े। परिणामस्वरूप 1909 के इंडियन काउन्सिल्स एक्ट के अन्तर्गत ब्रिटिश भारत की प्रत्येक विधानसभा के लिए मुसलमानों को अपने समुदाय पर आधारित चुनाव मंडलों से अपने प्रतिनिधियों को, अपनी जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक अनुपात में, चुनने का अधिकार मिला। इसके अतिरिक्त उन्हें साधारण चुनाव मंडलों में भी मत देने का अधिकार दिया गया था। यह अधिकार उनके विरुद्ध कटुता फैलाने में सहायक हुआ।

अक्टूबर 1906 के मुस्लिम शिष्टमंडल का संगठन उन्हें एक राजनीतिक दल के रूप में परिवर्तित होने की सफल भूमिका थी। 30 दिसम्बर 1906 को जब ढाका में मुहम्मडन एजुकेशन कॉन्फ्रेन्स की बैठक हो रही थी, तभी उस अधिवेशन को ढाका के नवाब की अध्यक्षता में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के नाम से घोषित कर दिया गया। 1908 में आगा खाँ को मुस्लिम लीग का स्थायी अध्यक्ष बनाया गया। उसी वर्ष अलीगढ़ के अधिवेशन में चालीस सदस्यीय एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गई। क्रमश: उसकी प्रान्तीय शाखाएँ स्थापित की गई। 1912 से पूर्व, जब बंगाल के विभाजन को रद्द किया गया, मुस्लिम लीग अपने अधिवेशनों में जो प्रमुख माँगे रखती थी उनमें पृथक् चुनाव प्रणाली को बनाए रखने की माँग, राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वदेशी और बहिष्कार के कार्यक्रमों का विरोध और बंगाल विभाजन का समर्थन करना जैसी माँगे शामिल थीं। लीग का नेतृत्व नवाबों और जमींदारों के हाथ में था। परन्तु 1911 के बाद अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रभाव के कारण, जिसमें बालकन युद्ध और तुर्की में युवा तुर्क आन्दोलन सम्मिलित थे, भारतीय मुसलमानों में सर्व इस्लाम की विचारधारा की लोकप्रियता बढ़ी जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा। मुस्लिम समुदाय का एक युवा वर्ग कांग्रेस के उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखने लगा और 1913 में लीग ने अपने संविधान में परिवर्तन करके अपना उद्देश्य भारत में औपनिवेशक स्वशासन (Dominion Status) की माँग करना निश्चित किया। कांग्रेस की नीतियों से क्रमश: निकटता कांग्रेस लीग समझौते में परिणत हुई।

प्र.4. गाँधी जी द्वारा प्रारम्भ किए गए असहयोग आन्दोलन के कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the reasons of Non-Cooperation Movement storted by Gandhiji.

उत्तर गांधी जी द्वारा 1920 ई० में असहयोग आन्दोलन को प्रारम्भ किया गया, जिसके निम्नलिखित कारण थे—

1. **युद्ध का परिणाम**—प्रथम विश्व युद्ध के समय ब्रिटेन ने कहा था कि वह लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले रहा है। ब्रिटेन की इस घोषणा के कारण भारतीय यह सोचने लगे कि जब ब्रिटेन लोकतन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले रहा है तो युद्ध की समाप्ति के बाद वह भारत में लोकतन्त्र की स्थापना अवश्य ही करेगा। लेकिन जब युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत को पूर्ण स्वराज्य नहीं दिया तो सभी राष्ट्रवादियों को काफी निराशा हुई और लोग ब्रिटिश सरकार के इरादों पर सन्देह करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप बदल गया और उसने एक नई दिशा अपनाई।
2. **शोचनीय आर्थिक स्थिति**—1917 से ही देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। युद्ध काल में भारत को डेढ़ अरब पौण्ड युद्ध का भार सहन करना पड़ा था। इससे भारत की स्थिति बहुत अधिक खराब हो गई थी। देश में वस्तुओं का अभाव होने के कारण आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में भारी वृद्धि हो गई, जिसके कारण जन-साधारण के लिए जीवन निर्वाह करना कठिन हो गया। भुखमरी की नौबत आ गई और किसानों तथा मजदूरों की दशा और भी दर्दनाक हो गई। ऐसी स्थिति में सरकार ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के स्थान पर जनता से और अधिक कर वसूलना आरम्भ कर दिया जिससे सर्वत्र विरोध की लहर उत्पन्न हो गई।
3. **अकाल तथा महामारी**—भारतीय जनता की आर्थिक दशा तो पहले ही शोचनीय थी, परन्तु अकाल तथा महामारी ने उनकी दशा को और भी अधिक शोचनीय बना दिया। 1917 में पर्याप्त वर्षा न होने के कारण समस्त देश में अकाल पड़ा,

TOUCH 'n PASS

अनेक व्यक्ति अकाल के ग्रास बने। परन्तु सरकार ने जनता के दुख को दूर करने के लिए कोई पर्याप्त प्रयास नहीं किया। इसी प्रकार महामारी के कारण बहुत से लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा, परन्तु सरकार ने उसकी भी रोकथाम के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाए। शासन के इस उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण से भारतीयों में असन्तोष का उत्पन्न होना नितान्त स्वाभाविक था।

4. **भर्ती तथा वसूली**—ब्रिटिश सरकार ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सेना में भर्ती करने तथा युद्ध व्यय के लिए धन व्यय की वसूली करने के लिए जो उपाय काम में लिए वे अन्यायपूर्ण थे। अधिकारियों ने गाँव-गाँव का दौरा और प्रत्येक कुटुम्ब से दो-दो तीन-तीन व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से सेना में भर्ती किया गया। मुजफ्फरपुर के न्यायाधीश मि० कोल्ड स्ट्रीम ने लिखा, "युद्ध ऋण उगाहने के लिए तथा सैनिकों की भर्ती के लिए जो उपाय काम में लाए गए, वे बहुधा अनाधिकृत, आपत्तिजनक तथा अत्याचारपूर्ण थे। सरकार के इन कार्यों के विरुद्ध भारतीय जनता के मन में कटुता उत्पन्न होना स्वाभाविक था।
5. **सरकार का दमन चक्र**—एक ओर सरकार जनता को राजनीतिक सुधारों का आश्वासन दे रही थी और दूसरी ओर देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के उद्देश्य से ही सरकार ने प्रेस अधिनियम और राजद्रोहात्मक अधिनियम पास किए। बंगाल और पंजाब में सरकार आन्दोलनकारियों को निर्ममतापूर्वक कुचल रही थी। सरकार के इन दमनकारी कार्यों का परिणाम यह हुआ कि क्रान्तिकारी एकता के सूत्र में बँध गए। पंजाब के सम्बन्ध में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने लिखा है, "सर माईकेल ओडवायर ने कठोर और दमनकारी शासन, उनके अत्याचारी भर्ती के तरीकों, उनके जबरदस्ती वसूल किए गए युद्ध सहायता, धन और तमाम राजनीतिक नेताओं के ऊपर किए गए उनके अत्याचारों के असन्तोष में जलते हुए अंगारों को सिर्फ रोक रखा था, जो ज्वाला में फूट पड़ने को तैयार थे।
6. **छटनी की नीति**—प्रथम विश्व युद्ध के दौरान सरकार ने सेना में भर्ती के लिए अनुचित तरीके अपनाए। सरकार ने जितनी तेजी से भर्ती की, उतनी ही तेजी से युद्ध के अन्तिम चरण में छँटनी प्रारम्भ कर दी। इससे बहुत लोग बेकार हो गए। जिससे बेकारी की समस्या उत्पन्न हो गई। सरकार की इस नीति के विरुद्ध जनता में असन्तोष की भावना उत्पन्न हुई।
7. **1919 के सुधारों के प्रति असन्तोष**—प्रथम विश्व युद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार की बहुमूल्य सेवाएँ की थी। युद्ध काल में सरकार ने इन सेवाओं के बदले बहुमूल्य रियायतें देने का आश्वासन दिया था। इस कारण जनता को यह विश्वास था कि युद्ध के बाद इन्हें कुछ प्राप्त होगा, किन्तु माण्टफोर्ड ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। इस योजना ने उत्तरदाई सरकार की स्थापना नहीं की, भारत सरकार पर गृह सरकार का नियन्त्रण पूर्ववत् बना रहा और प्रान्तों में उततरदायित्वपूर्ण शासन की स्थापना नहीं की गई। अगस्त 1918 ई० कांग्रेस अधिवेशन में इन सुधारों को 'अपर्याप्त', 'असन्तोषजनक' तथा निराशाप्रद मानकर स्वीकार करने के लिए अयोग्य ठहराया।
8. **रौलेट एक्ट**—युद्ध में क्रान्तिकारियों के दमन के लिए 'भारत सुरक्षा अधिनियम' पारित किया गया, किन्तु यह अधिनियम केवल युद्ध काल के लिए ही था। जबकि युद्ध के बाद भी क्रान्तिकारी सक्रिय थे, जिन्हें दबाने के लिए सरकार को एक कानून की आवश्यकता थी। संक्षेप में ब्रिटिश सरकार भारत की राष्ट्रीय भावना को कुचलना चाहती थी। अत: उन्होंने 1917 ई० में न्यायाधीश सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की, जिसे आतंकवादियों को कुचलने के उपाय बताने को कहा गया। इस कमेटी ने 1918 ई० में अपना प्रतिवेदन दे दिया। कमेटी की सिफारिश पर सरकार ने केन्द्रीय विधानमण्डल में फरवरी 1919 में दो विधेयक प्रस्तुत किए जिन्हें रौलेट विधेयक कहा जाता है। इसके विरुद्ध सारे देश के आवाज उठाई परन्तु सरकार ने इस विरोध की ओर ध्यान नहीं दिया। इस सम्बन्ध में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने लिखा है, "इन दोनों विधेयकों का विरोध परिषद के गैर-सरकारी, भारतीय सदस्यों, निर्वाचित सदस्यों और मनोनीत सदस्यों सभी ने समान रूप से किया। परन्तु सरकार अपनी बात पर अड़ी रही और तनिक भी नहीं झुकी।" सरकार ने भारतीय जनता के विरोध की बिल्कुल परवाह नहीं की उसने दो विधेयकों में से एक को 18 मार्च 1919 ई० को कानून का रूप दे दिया, जिसे रौलट एक्ट कहा गया।

   रौलेट एक्ट के अनुसार मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वे संदिग्ध क्रान्तिकारियों की मामूली जाँच पड़ताल के बाद ही नजरबन्दी का आदेश जारी कर सकते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि सरकार किसी व्यक्ति को बिना कारण बताए और बिना उस पर मुकदमा चलाए जेल में डाल सकती थी और उसको चाहे जितने समय जेल में रख सकती थी। यहाँ तक कि किसी व्यक्ति के सन्देह मात्र होने पर भी उसे बन्दी बनाया जा सकता था। इस प्रकार इस कानून के आधार पर सरकार

TOUCH 'n PASS

किसी भी व्यक्ति को तंग कर सकती थी और उसे अपने पक्ष में अपील या वकील का अधिकार न था। साराँश यह है कि इस अधिनियम से भारतीयों की स्वतन्त्रता निरर्थक एवं महत्त्वहीन हो गई इस कारण भारतीय नेताओं ने रोलट एक्ट को 'काला अधिनियम' (Black Act) तथा आतंकवादी और अपराध अधिनियम (Anarchist and Revolutionary Crimes) की संज्ञा दी। मोतीलाल नेहरू के अनुसार, इस कानून द्वारा अपील, वकील और दलील व्यवस्था का अन्त कर दिया।'' सी० आर० दास ने इस अधिनियम के बारे में लिखा है, ''इसने भारतीय शासन को किसी भी राजनीतिक आन्दोलन या सरकार विरोधी कार्य का दमन करने के लिए असाधारण शक्तियाँ प्रदान कर दी। इसके द्वारा सरकार बिना मुकद्दमा दायर किए किसी व्यक्ति को बन्दी बना सकती थी। इससे 'साक्षी अधिनियम' (Evidence Act) की वह धारा भी समाप्त कर दी गई जिसके अनुसार किसी पुलिस अधिकारी के सम्मुख दी गई गवाही नहीं मानी जा सकती थी।''

महात्मा गाँधी ने रोलट अधिनियम का विरोध किया। उन्होंने देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। कहीं-कहीं 30 मार्च को और कहीं-कहीं 6 अप्रैल 1919 को शोक दिवस तथा हड़ताल मनाई गई। इसमें हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने समान रूप से भाग लिया। उनमें अपूर्व एकता देखने को मिली। सारे देश में हड़तालें शान्तिपूर्ण हुई और लोगों ने उपवास किए। सिर्फ कहीं-कहीं कानून ने हिंसात्मक रूप ले लिया। दिल्ली में जनता और पुलिस में झगड़ा हो गया। पुलिस ने गोली चलाई जिसमें आठ व्यक्ति हताहत हुए। जनता उत्तेजित हो उठी। गाँधीजी की गिरफ्तारी के समाचार ने आग में घी का काम किया। वे स्थिति को शान्त करने के लिए दिल्ली जा रहे थे जबकि उन्हें रास्ते में ही गिरफ्तार कर बम्बई भेज दिया गया। गाँधी जी की गिरफ्तारी से जनता का रोष उमड़ पड़ा फिर भी आन्दोलन आमतौर पर शान्त ही रहा। लेकिन सरकार ने अपना दमन चक्र चालू कर दिया। बड़ी कठोरता और निर्ममता से आन्दोलन को दबाया जाने लगा। पंजाब के गवर्नर डायर ने आन्दोलन को कुचलने का दृढ़ निश्चय किया। डॉ० किचलू और डॉ० सत्यपाल को बन्दी बनाकर अज्ञात स्थान पर भेज दिया गया। स्वभावत: पंजाब की जनता उत्तेजित हो उठी। अमृतसर के नागरिकों ने जुलूस निकाला। पुलिस ने शान्तिपूर्ण जुलूस पर गोली चलाई, दस व्यक्ति मरे और कई आहत हुए। जनता की उत्तेजना और भी बढ़ गई। वह शवों के साथ नगर की ओर चल पड़ी, रास्ते में कई अंग्रेजों की हत्या कर दी और कई सार्वजनिक भवनों में आग लगा दी।

9. **जलियाँवाला बाग हत्याकांड**—अमृतसर की उत्तेजित जनता को कुचलने के लिए नगर को सेना के अधिकार में सौंप दिया गया। इसका सर्वेसर्वा जनरल डायर था। 12 अप्रैल को शहर में सार्वजनिक सभा करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया जिसकी पूरी जानकारी जनता को नहीं कराई गई। 13 अप्रैल को बैशाखी का त्यौहार पड़ता था। उसी दिन सरकार की नीति का विरोध करने के लिए जलियाँवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। बाग शहर के बीच में था और चारों ओर से दीवारों से घिरा हुआ था। इसके आने-जाने के लिए केवल एक ही संकरी गली थी। हजारों की संख्या में स्त्री, पुरुष और बच्चे सभा में एकत्रित हुए थे। जब सभा का कार्य शान्तिपूर्वक चल रहा था जनरल डायर ने 200 देशी और 50 गोरे सिपाहियों को साथ लेकर बाग के एकमात्र दरवाजे को रोक लिया और निहत्थी जनता पर गोलियों की बौछार शुरु कर दी। सिपाहियों ने गोली चलाना तभी बन्द किया जब कारतूस समाप्त हो गए। आतंकग्रस्त भीड़ तुरन्त तितर-बितर होने लगी थी। लेकिन दस मिनट तक निहत्थी भीड़ पर गोलियों की बौछार होती रही। जनरल डायर तो एक हथियार लैस गाड़ी भी गोली चलाने के लिए ले गया था लेकिन तंग रास्ते के कारण गाड़ी बाग में न जा सकी। इसमें लगभग 400 आदमी मारे गए और लगभग 2000 आदमी घायल हुए। हण्टर कमीशन के सामने बयान श्री गिरधारी लाल ने बताया, ''मैंने सैकड़ों व्यक्तियों को मरे हुए देखा, सबसे खराब बात यह थी कि गोली ऊपर दरवाजे की ओर से चलाई जा रही थी जिससे होकर लोग भाग रहे थे। बहुत से लोग भागते हुए भीड़ में पैरों के तले कुचले गए और मारे गए। खून की धारा बह रही थी। अधिकारियों ने मृतकों और घायलों की देखभाल के लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया था। मृतकों में बड़ी उम्र के आदमी और छोटे लड़के थे। कुछ की आँखों पर गोलियाँ लगी थी और नाक, छाती, बाँह, टाँगे छितरा गई थी। मेरा यह अनुमान है कि उस समय एक हजार से ज्यादा मृतक और आहत व्यक्ति थे।''

10. **सैनिक शासन**—इस अन्यायपूर्ण और अमानुषिक कार्य के केवल दो दिन बाद ही पंजाब के पाँच जिलों में सैनिक शासन लागू कर दिया गया। जनता से बड़ी नृशंसतापूर्ण तथा कठोरतापूर्ण व्यवहार किया गया। लोगों को डण्डों से पिटवाया गया। कुछ स्थानों पर उन्हें पेट के बल रेंगकर जाने के लिए मजबूर किया गया। छात्रों को विभिन्न स्थानों पर दिन में कई फौजी अफसरों के सामने हाजिरी देने के लिए बाध्य किया गया। यह आदेश दिया गया कि हिन्दुस्तानी अंग्रेज अफसरों को सलाम

TOUCH 'n PASS

करें। उनके सामने कोई घोड़े या सवारी पर न चढ़े तथा छाता न लगाए। इस प्रकार जनता पर तरह-तरह के अमानुषिक कार्य किए गए।

11. **हंटर समिति**—सरकार के लाख प्रयत्न के बाद भी अमृतसर की घटनाओं पर अधिक दिनों तक पर्दा न हटा। देश के कोने-कोने से इसके विरोध में आवाजें उठने लगी। इसकी जाँच के लिए माँग की गई, जनता की जोरदार माँग पर सरकार को झुकना पड़ा। उसने लॉर्ड हन्टर की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जिसके सदस्य तीन अंग्रेज और दो भारतीय सर चिमनलाल सितलवाद और पण्डित जगत नारायण थे।

हण्टर समिति की रिपोर्ट निष्फल नहीं हुई। उसने अधिकारियों के नृशंस कार्यों पर पर्दा डालने का प्रयास किया। सत्याग्रह को दोषी ठहराया गया। डायर के कार्य को उचित बताया गया। लेकिन समिति ने इतना स्वीकार किया कि डायर ने अनुचित साधनों का प्रयोग किया था और अधिकारियों ने जनता पर पाश्विक अत्याचार किया था।

कांग्रेस ने भी जाँच पड़ताल के लिए एक समिति का गठन किया। इसके अध्यक्ष महात्मा गाँधी और सदस्य चितरन्जन दास, मोतीलाल नेहरू और डॉ० जयकर को समिति ने अपनी रिपोर्ट में अधिकारियों के अमानुषिक कार्यों की घोर निन्दा की।

पंजाब की घटनाओं की जाँच पड़ताल का कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। केवल जनरल डायर को नौकरी से अलग कर दिया गया, लेकिन पंजाब के गवर्नर तथा भारत के वायसराय के कार्यों की सराहना की गई। लॉर्ड सभा में जनरल डायर को माफ कर देने के लिए प्रस्ताव लाया गया, उसे ब्रिटिश साम्राज्य का शेर कहा गया और उसे 'प्रतिष्ठा की तलवार' तथा 2000 पौण्ड की भेंट दी गई। इससे भारतीयों के दिलों पर गहरा आघात पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति रही-सही राजभक्ति जाती रही। भारतीय जनता अब ब्रिटिश सरकार में विश्वास तथा उससे न्याय की आशा करने के लायक नहीं रही। महात्मा गाँधी पर इस घटना का तत्काल प्रभाव पड़ा और वे कट्टर असहयोगी बन गए।

12. **खिलाफत आन्दोलन**—टर्की का सुल्तान संसार भर के मुसलमानों का खलीफा (धर्मगुरु) था। भारत के मुसलमानों की उसके प्रति अगाध श्रद्धा थी। प्रथम विश्वयुद्ध टर्की अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ा था। मुसलमानों की यह आशंका थी कि यदि टर्की युद्ध में हार गया तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएँगे और खलीफा की सारी शक्ति नष्ट कर दी जाएगी। अत: जब अंग्रेजों ने युद्ध काल में भारतीय मुसलमानों से सहयोग माँगा तो उन्होंने सहयोग करने में आनाकानी कर दी। युद्ध में भारतीय मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करना भी आवश्यक था। अत: ब्रिटिश प्रधानमंत्री लायड जार्ज ने भारतीय मुसलमानों को वचन दिया कि 'युद्ध की समाप्ति के पश्चात इंग्लैण्ड टर्की के विरुद्ध प्रतिरोध की नीति नहीं अपनाएगा और न ही टर्की साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने देगा। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री के आश्वासन पर भारतीय मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार को हर प्रकार की सहायता दी। युद्ध में टर्की हार गया तो अंग्रेज अपने वायदे से मुकर गए। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ब्रिटेन ने भारतीय मुसलमानों को दिए गए वचन की परवाह किए बिना टर्की साम्राज्य का विघटन करने का निश्चय किया। ब्रिटेन के इस विश्वासघात से भारतीय मुसलमानों में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भारी असन्तोष उत्पन्न हो गया।

गाँधीजी ने इस अवसर को हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सुनहरा अवसर समझा। अत: उन्होंने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों से पूर्ण सहानुभूति दिखाई और अंग्रेज सरकार के विश्वासघात का विरोध किया। 24 नवम्बर 1919 ई० दिल्ली में 'अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन' हुआ, इसकी अध्यक्षता महात्मा गाँधी ने की। इस अवसर पर गाँधी जी ने हिन्दुओं से कहा कि वे मुसलमानों की सहायतार्थ खिलाफत सम्बन्धी अहिंसात्मक आन्दोलन में सम्मिलित हो जाएँ।

गाँधीजी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन इसलिए किया था क्योंकि उनकी दृष्टि में टर्की के प्रति अंग्रेजों की नीति विश्वासघात की थी। इसके अतिरिक्त सहयोग आन्दोलन में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनकी माँगों का समर्थन करना जरूरी था। यही कारण था कि मुसलमानों ने भी गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन का समर्थन किया था।

गाँधीजी की सलाह पर 19 फरवरी 1920 ई० को डॉ० अन्सारी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल वायसराय से मिलने हेतु इंग्लैण्ड गया, किन्तु उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। इसके बाद मार्च 1920 ई० में मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली के नेतृत्व में एक शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड गया। यद्यपि इस शिष्टमण्डल को भारत मन्त्री लॉर्ड मान्टेग्यू का समर्थन प्राप्त था, परन्तु उसको भी सफलता नहीं मिली। शिष्टमण्डल निराश होकर भारत लौट आया।

ब्रिटिश सरकार ने भारत की खिलाफत समिति की माँग की ओर ध्यान नहीं दिया और 30 अगस्त 1920 ई० को 'सेवर्स की सन्धि' पर हस्ताक्षर कर दिए जिसके अनुसार टर्की का विभाजन कर दिया गया। उसके थ्रेस और एशिया माईनर के

TOUCH 'n PASS

समृद्ध प्रदेश छीन लिए गए। टर्की के अरब, इराक, सीरिया तथा मिस्र आदि क्षेत्रों को ब्रिटेन तथा फ्रांस द्वारा आपस में बाँट लिया गया, और उसके कुछ प्रदेश को स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया। टर्की के सुल्तान को बन्दी बनाकर कस्तुतुनियाँ में भेज दिया गया। ब्रिटेन के इस विश्वासघात से भारतीय मुसलमानों की भावना को गहरी ठेस पहुँची अत: उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध एक आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जिसे खिलाफत आन्दोलन कहते हैं। खिलाफत समर्थकों की माँग थी कि "टर्की साम्राज्य का संधारण किया जाए तथा ऐहिक और आध्यात्मिक संस्था के रूप में खिलाफत का अस्तित्व बना रहे।" इस आन्दोलन के प्रमुख नेताओं शौकत अली, मुहम्मद अली और अब्दुल कलाम आजाद ने सारे देश में खिलाफत कमेटियाँ स्थापित की और इसे लोकप्रिय बनाने का काम जोर-शोर से शुरू कर दिया। गाँधी जी ने इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए देश का दौरा किया। उन्होंने हिन्दुओं को इसे सहयोग देने का परामर्श दिया इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से हिन्दू खिलाफत कमेटियों के सदस्य बन गए और धन से भी मुसलमानों की सहायता की। इधर बहुत से मुसलमान भी कांग्रेस के सदस्य बन गए। दोनों सम्प्रदायों ने महात्मा गाँधी को अपना नेता मान लिया। गाँधी जी ने खिलाफत समिति को ब्रिटिश सरकार के प्रति असहयोग की नीति अपनाने की सलाह दी। समिति ने इस सलाह को स्वीकार कर लिया। उसने इसे कार्यरूप देने का निश्चय किया। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, "मौलाना लोगों ने भी धार्मिक रीति से इसका जोरों से समर्थन किया और फतवा निकाला, जिसके द्वारा सरकार के साथ किसी के सहयोग को हराम ठहराया गया।"

महात्मा गाँधी ने अगस्त 1920 ई० में भारत के वायसराय को पत्र लिखा, "पिछले महीने जो घटनाएँ घटी है उनसे मेरी यह धारणा पुष्ट हुई है कि खिलाफत के मामले में साम्राज्य की सरकार का रवैया बहुत अनैतिक, असंगत और अन्यायपूर्ण रहा है और अपनी अनैतिकता को छुपाने के लिए सरकार ने एक गलती के बाद दूसरी गलती की और बढ़ती रही। ऐसी सरकार के लिए मेरे पास न आदर शेष रह सकता है और न स्नेह। महामहिम द्वारा सरकारी अपराधों की अवहेलना, सर माईकल ओ-डायर को दोषमुक्त करना, 'मॉण्टेग्यू का प्रेषण तथा सबसे अधिक पंजाब की घटनाओं से अनभिज्ञता और हाउस ऑफ लॉर्डस द्वारा भारतीयों की भावना के कठोर अनादर से मेरा मन साम्राज्य के भविष्य के बारे में घोर सन्देहों से भर गया है। वर्तमान सरकार से पूरी तरह मैं विलग हो गया हूँ और मेरे लिए अब यह सब पूर्ण सहयोग देना असम्भव हो गया, जो मैं अब बार-बार देता रहा था।..... मैं समझता हूँ कि मेरा आचरण सत्य के विरुद्ध होगा। यदि मैं सरकार को राक्षसी सरकार न कहूँ जो धोखाधड़ी, हत्या और घोर क्रूरता की अपराधी हो और जो फिर पश्चाताप करने की बजाए अपने पापों को छिपाने के लिए अधिकाधिक असत्य का सहारा लेती जा रही हो।"

निष्कर्ष—इस प्रकार रोलट एक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, हण्टर कमेटी की रिपोर्ट और खिलाफत आन्दोलन के कारण महात्मा गाँधी सहयोगी से असहयोगी बन गए। इन्हीं कारणों का महात्मा गाँधी ने 1922 ई० में ब्रह्म फोल्ड के न्यायालय में इस प्रकार वर्णन किया था, "मुझे सर्वप्रथम आघात रोलट एक्ट से लगा जिसका निर्माण जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिए किया गया था। मुझे अपनी अन्तरात्मा की ओर से प्रेरणा मिली कि इसके विरुद्ध तीव्र आन्दोलन चलाना चाहिए। इसके उपरान्त मेरे सामने पंजाब के अत्याचार आए, जो जलियाँवाला बाग के कत्लेआम के साथ प्रारम्भ हुए थे और पेट के बल चलने के आदेशों, खुलेआम कोड़े लगाए जाने तथा इसी प्रकार की अन्य अवर्णनीय अपमान और तिरस्कारों के साथ समाप्त हुए, मैंने यह भी अनुभव किया कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा टर्की की स्वाधीनता और इस्लाम के स्थानों की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में दिए गए आश्वासन कदाचित कभी पूर्ण नहीं होंगे। परन्तु मित्रों की भविष्यवाणी और डरावनी चेतावनी के बावजूद, 1919 की अमृतसर कांग्रेस में सरकार से सहयोग करने तथा मयण्ट फोर्ड सुधारों को क्रियान्वित करने के लिए लड़ा। केवल इस आशा से कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री भारतीय मुसलमानों से की गई अपनी प्रतिज्ञा को शीघ्र पूरा करेंगे, पंजाब के घाव भर जाएँगे और सुधार चाहे वे कितने ही अपूर्ण तथा असन्तोषजनक क्यों न हों। भारतीय जीवन में आशा का एक नया युग प्रारम्भ करेंगे। मगर यह आशा पूरी न हो सकी। खिलाफत की प्रतिज्ञा के पूरी होने की कोई आशा नहीं थी। पंजाब के अपराधों पर लीपा-पोती की गई, अधिकाँश अपराधियों को दण्डित भी न किया गया, वे अपने पदों पर पूर्ववत बने रहे, कुछ भारतीय कोष से पेन्शन लेते रहे और कुछ को तो पुरस्कृत भी किया गया। मैंने यह भी अनुभव किया कि सुधारों ने केवल हृदय परिवर्तन ही नहीं किया वरन् वे भारत के आर्थिक शोषण तथा दासता को स्थाई रखने के साधन तथा उपाय थे।"

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सन्दर्भ में 16 अक्टूबर, 1905 का दिन निम्नलिखित में से किस कारण से जाना जाता है?
(क) स्वदेशी आन्दोलन की औपचारिक घोषणा कलकत्ता टाउन हॉल में की गयी थी
(ख) बंगाल का विभाजन लागू हुआ
(ग) दादाभाई नौरोजी ने घोषणा की कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज है
(घ) लोकमान्य तिलक ने पूना में स्वदेशी आन्दोलन शुरू किया
उत्तर (ख) बंगाल का विभाजन लागू हुआ

प्र.2. बंगाल विभाजन के बाद कौन-सा आन्दोलन शुरू हुआ?
(क) सविनय अवज्ञा (ख) स्वदेशी आन्दोलन
(ग) भारत छोड़ो आन्दोलन (घ) असहयोग आन्दोलन
उत्तर (ख) स्वदेशी आन्दोलन

प्र.3. निम्नलिखित में से सबसे बाद में क्या हुआ?
(क) अनुबन्ध नीति (ख) बंगाल का विभाजन
(ग) स्थायी बंदोबस्त (घ) सहायक गठबन्धन
उत्तर (ख) बंगाल का विभाजन

प्र.4. बंगाल का विभाजन विरोधी आन्दोलन शुरू किया गया था—
(क) 20 जुलाई, 1905 (ख) 7 अगस्त, 1905
(ग) 16 अक्टूबर, 1905 (घ) 7 नवम्बर, 1905
उत्तर (ख) 7 अगस्त, 1905

प्र.5. बंगाल विभाजन से सम्बन्धित भारत के वायसराय का नाम बताइये—
(क) लॉर्ड हार्डिंग (ख) लॉर्ड कर्जन (ग) लॉर्ड लिटन (घ) लॉर्ड मिण्टो
उत्तर (ख) लॉर्ड कर्जन

प्र.6. बंगाल विभाजन के समय बंगाल का लेफ्टिनेन्ट गवर्नर था—
(क) सर एंड्रयू फ्रेजर (ख) एच०एच० रिस्ले (ग) ब्रोड्रिक (घ) ए०टी० अरुंडेल
उत्तर (क) सर एंड्रयू फ्रेजर

प्र.7. निम्नलिखित में से किसने बंगाल विभाजन (1905) के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व किया?
(क) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (ख) सीआर दास (ग) आशुतोष मुखर्जी (घ) रवीन्द्रनाथ टैगोर
उत्तर (क) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

प्र.8. निम्नलिखित में से कौन स्वदेशी आन्दोलन के आलोचक थे और उन्होंने पूर्व और पश्चिम के बीच बेहतर समझ की वकालत की थी?
(क) डब्ल्यू सी० बनर्जी (ख) एस०एन० बनर्जी (ग) आर०एन० टैगोर (घ) बी०जी० तिलक
उत्तर (ग) आर०एन० टैगोर

प्र.9. बंगाल में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का सुझाव सबसे पहले किसने दिया था?
(क) अरबिन्दो घोष (ख) कृष्ण कुमार मित्रा (ग) मोतीलाल घोष (घ) सतीशचन्द्र मुखर्जी
उत्तर (ख) कृष्ण कुमार मित्रा

प्र.10. ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार एक राष्ट्रीय नीति के रूप में अपनाया गया था—
(क) 1899 (ख) 1901 (ग) 1903 (घ) 1905
उत्तर (घ) 1905

TOUCH 'n PASS

प्र.11. बंगाल का विभाजन मुख्यतः किसके लिए किया गया था?
(क) हिन्दू और मुसलमानों को विभाजित करना (ख) बंगाल में राष्ट्रवाद के विकास को कमजोर करना
(ग) बंगाल के विकास के लिए (घ) कोई नहीं
उत्तर (ग) बंगाल के विकास के लिए

प्र.12. 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' को पहली बार संघर्ष के तरीकों के रूप में अपनाया गया था—
(क) बंगाल विभाजन के खिलाफ आन्दोलन (ख) होमरूल आन्दोलन
(ग) असहयोग आन्दोलन (घ) साइमन कमीशन की भारत यात्रा
उत्तर (क) बंगाल विभाजन के खिलाफ आन्दोलन

प्र.13. स्वदेशी आन्दोलन शुरू होने का तात्कालिक कारण क्या था?
(क) लॉर्ड कर्जन द्वारा किया गया बंगाल का विभाजन
(ख) लोकमान्य तिलक को 18 महीने के कठोर कारावास की सजा दी गयी
(ग) लाला लाजपतराय और अजीत सिंह की गिरफ्तारी और निर्वासन और पंजाब औपनिवेशीकरण विधेयक का पारित होना
(घ) चापेकर बंधुओं को मृत्युदण्ड सुनाया गया
उत्तर (क) लॉर्ड कर्जन द्वारा किया गया बंगाल का विभाजन

प्र.14. 1905 में बंगाल का विभाजन हुआ, लेकिन विरोध के कारण इसे फिर से विभाजित कर दिया गया—
(क) 1906 (ख) 1916 (ग) 1911 (घ) 1909
उत्तर (ग) 1911

प्र.15. लॉर्ड कर्जन द्वारा किया गया बंगाल विभाजन किस वर्ष रद्द किया गया?
(क) 1911 (ख) 1904 (ग) 1906 (घ) 1907
उत्तर (क) 1911

प्र.16. भारतीयों के विरोध के कारण बंगाल का पुनः एकीकरण कब हुआ?
(क) 1905 (ख) 1911 (ग) 1947 (घ) 1971
उत्तर (ख) 1911

प्र.17. 1905 में लॉर्ड कर्जन द्वारा किया गया बंगाल विभाजन कब तक चला?
(क) प्रथम विश्व युद्ध जब अंग्रेजों को भारतीय सैनिकों की आवश्यकता थी और विभाजन समाप्त हो गया था
(ख) किंग जॉर्ज पंचम ने 1911 में दिल्ली के शाही दरबार में कर्जन अधिनियम को निरस्त कर दिया
(ग) गाँधी ने अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू किया
(घ) 1947 में भारत का विभाजन जब पूर्वी बंगाल पूर्वी पाकिस्तान बन गया
उत्तर (ख) किंग जॉर्ज पंचम ने 1911 में दिल्ली के शाही दरबार में कर्जन अधिनियम को निरस्त कर दिया

प्र.18. मद्रास में स्वदेशी आन्दोलन के नेता कौन थे?
(क) श्रीनिवास शास्त्री (ख) राजगोपालाचारी (ग) चिदम्बरम पिल्लई (घ) चिन्तामणि
उत्तर (ग) चिदम्बरम पिल्लई

प्र.19. निम्नलिखित में से किसने दिल्ली में स्वदेशी आन्दोलन का नेतृत्व किया?
(क) बाल गंगाधर तिलक (ख) अजीत सिंह (ग) लाजपत राय (घ) सैय्यद हैदर राजा
उत्तर (घ) सैय्यद हैदर राजा

प्र.20. वंदे मातरम् किस दौरान भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का थीम गीत बन गया?
(क) स्वदेशी आन्दोलन (ख) चम्पारण आन्दोलन
(ग) रोलेट एक्ट का विरोधी आन्दोलन (घ) असहयोग आन्दोलन
उत्तर (क) स्वदेशी आन्दोलन

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VIII

लखनऊ समझौता एवं होम रूल आन्दोलन
Lucknow Pact and Home Rule Movement

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. होमरूल आन्दोलन क्या है?
What is Home-rule Movement?

उत्तर श्रीमती ऐनी बेसेन्ट आयरलैंड की रहने वाली थीं। वे भारत में थियोसोफिकल सोसायटी की संचालिका थीं। वे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से बहुत प्रभावित थीं। इसलिए आयरलैंड को छोड़कर वह भारत में बस गई थीं और भारत को अपनी मातृभूमि मानने लग गई थीं। इस समय आयरलैंड में आयरिश नेता रेडमाण्ड के नेतृत्व में होमरूल लीग की स्थापना हुई थी जो वैधानिक तथा शांतिमय उपायों से आयरलैंड के लिए होमरूल तथा स्वशासन प्राप्त करना चाहती थी। 1913 में जब ऐनी बेसेन्ट इंग्लैण्ड गईं तो आयरलैंड की होमरूल लीग ने उनको सुझाव दिया कि भारत को स्वतंत्र कराने के लिए होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ करें। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट भारत को उसी तरह का स्वराज दिलाना चाहती थीं, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों में था अर्थात् भारत को अधिराज्य स्थिति (Dominion Status) दिलाने की इच्छुक थीं। इसी उद्देश्य से भारत लौटने पर कांग्रेस में शामिल हुईं और उदारवादियों तथा उग्रवादियों को एकताबद्ध कर होमरूल आन्दोलन चलाया।

प्र.2. मेरठ षड्यंत्र काण्ड से आप क्या समझते हैं?
What do you mean by Meerut conspiracy case?

उत्तर असहयोग आंदोलन की समाप्ति के बाद भारत में साम्यवादी आतंकवादी राष्ट्रवादियों पर सरकार ने दमन शुरू किया। मेरठ षड्यंत्र केस के तहत मार्च, 1929 ई० में 31 मजदूर नेताओं को षड्यंत्रों के आरोप में गिरफ्तार किया गया। उन्हें मेरठ ले जाया गया और वहीं उन पर मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा मेरठ षड्यंत्र केस के नाम से प्रसिद्ध है।

प्र.3. जतरा भगत के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में लिखें।
What do you know about Jatra Bhagat? Write in brief.

उत्तर छोटा नागपुर के उरांव आदिवासियों का अहिंसक आंदोलन 1914 से 1920 तक चलता रहा। इस विद्रोह का नेता जतरा भगत था। इस आंदोलन में सामाजिक एवं शैक्षणिक सुधार पर विशेष बल दिया गया।

प्र.4. ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना क्यों हुई?
Why was All India Trade Union Congress formed?

उत्तर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में उद्योगों (कल-कारखानों) की स्थापना के साथ ही श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। इन औद्योगिक इकाइयों में मजदूरों का कई तरह से शोषण किया जाता था। धीरे-धीरे श्रमिक वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सजग हुआ। अपनी माँगों के लिए हड़ताल का सहारा लेने के अतिरिक्त मजदूर संगठित होकर अपना संगठन बनाने का भी प्रयास करने लगे। इसी क्रम में 1920 ई० को लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई।

प्र.5. स्थायी बंदोबस्त क्या था?
What was Permanent Settlement?

उत्तर अंग्रेजों की कृषि नीति में मुख्य रूप से अधिकतम लगान एकत्रित करने के उद्देश्य से बंगाल में स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया। इसमें जमींदारों को एक निश्चित भू-राजस्व सरकार को देना पड़ता तथा जमींदार किसानों से उससे अधिक लगान वसूल करते थे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. खोंड विद्रोह का परिचय दें।
Introduce the Khond Revolt.

उत्तर खोंड विद्रोह उड़ीसा की सामंतवादी रियासत दसपल्ला में अक्टूबर, 1914 में शुरू हुआ। यह विद्रोह उत्तराधिकार विवाद से आरंभ हुआ। परंतु शीघ्र ही इसने अलग रूप धारण कर लिया। इसके विस्तार को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने विद्रोह को क्रूरतापूर्वक दबा दिया।

प्र.7. अल्लूरी सीताराम राजू कौन थे?
Who was Alluri Sitaram Raju?

उत्तर आंध्र प्रदेश की गूडेम पहाड़ियों में 1920 के दशक में नये वन कानूनों के लगाए जाने के प्रतिरोध में आदिवासियों का विद्रोह हुआ। जिसका नेतृत्व अल्लूरी सीताराम राजू ने किया।

प्र.8. भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में जनजातीय समूह की क्या भूमिका थी, वर्णन करें।
What was the role of group of tribals in the National Movement of India, describe.

उत्तर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में जनजातीय लोगों की प्रमुख भूमिका रही। 19वीं शताब्दी की तरह 20वीं शताब्दी में भी भारत के अनेक भागों में आदिवासी विद्रोह हुए। इन विद्रोहों में रम्पा विद्रोह, अलमरी विद्रोह, उड़ीसा का खोंड विद्रोह, यह 1914 से 1920 तक चला। 1917 में मयूरभंज में संथालों ने एवं मणिपुर में 'पोडोई कुकियो' ने विद्रोह किया था। 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय पश्चिमोत्तर प्रांत की जनजातियों ने तीव्र राष्ट्रवादी भावना दिखायी। दक्षिण बिहार के आदिवासियों ने भी राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया। इस प्रकार भारत के कोने-कोने से आदिवासी जनता ने समय-समय पर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया।

प्र.9. खिलाफत आंदोलनकारियों की माँग क्या थीं?
What were the demands of Khilafat Revolutionaries?

उत्तर खिलाफत आंदोलनकारियों की माँग निम्नलिखित थीं—

1. तुर्की के सुल्तान की शक्ति और प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना,
2. अरब प्रदेश खलीफा के अधीन करना,
3. खलीफा को मुसलमानों के पवित्र स्थलों का संरक्षक बनाया जाए।

प्र.10. कांग्रेस के किस अधिवेशन में 'पूर्ण स्वाधीनता' की माँग की गई तथा इस अधिवेशन के अध्यक्ष कौन थे?
In which session of Congress had demanded full Independence and who was the president of that session?

उत्तर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन 1929 में पूर्ण स्वाधीनता की माँग की गई। इस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे।

प्र.11. जलियाँवाला बाग हत्याकांड के विषय में आप क्या समझते हैं?
What do you understand about the jallianwala Bagh massacre?

उत्तर 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में वैशाखी के दिन एकत्रित सभा रॉलेट एक्ट एवं पुलिस की दमनकारी नीतियों का विरोध कर रही थी। सभा की कार्रवाई के बीच में ही अमृतसर का सैनिक कमांडर जनरल डायर वहाँ पहुँचा और प्रवेश द्वार बंद कर निहत्थी भीड़ पर अंधाधुंध गोलियाँ चलवा दिया। इस हत्याकांड में 379 लोग मारे गए तथा करीब 1,200 लोग जख्मी हुए।

प्र.12. ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना कैसे हुई? इसकी आरंभिक नीति क्या थी?
How was the All India Muslim League formed? What was its initial policy?

उत्तर 1906 में मुसलमानों का एक शिष्टमंडल अपनी माँगों के साथ आगा खाँ के नेतृत्व में वायसराय मिंटो से शिमला में मिला। मिंटो ने उनकी माँगों को पूरा करने का आश्वासन दिया। ढाका में एकत्रित प्रमुख मुसलमानों ने 30 दिसंबर, 1906 को मुस्लिम

TOUCH 'n PASS

लीग की स्थापना की। लीग ने सरकार के साथ सहयोग का रास्ता अपनाया तथा सरकारी नौकरियों, व्यवस्थापिका सभाओं में प्रतिनिधित्व एवं पृथक निर्वाचन मंडलों की माँग की।

प्र.13. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

Write a short note on Rashtriya Swayamsevak Sangh.

उत्तर इसकी स्थापना 1925 ई० में केशव बलिराम हेडगेवार ने नागपुर में की थी। इसका मुख्य उद्देश्य युवकों को चारित्रिक एवं शारीरिक रूप से मजबूत बनाकर सशक्त राष्ट्र का निर्माण करना था। इसने हिंदू राष्ट्रवाद का नारा दिया तथा हिंदू धर्म एवं समाज के पुनरूत्थान की नीति अपनाई। सामाजिक संगठन के रूप में यह संस्था आज भी कार्यरत है।

प्र.14. मोपला विद्रोह पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

Write a short note on Mopla Revolt.

उत्तर केरल के मालाबार में 19वीं-20वीं शताब्दियों में मोपलाओं के अनेक विद्रोह हुए। मोपला एक वर्ग समूह था। जिसमें किसान-मजदूर और अन्य लोग सम्मिलित थे। यह विद्रोह भू-स्वामियों के अत्याचारों के विरुद्ध था। मोपला मुसलमान थे और भू-स्वामी नायर और नम्बूदरी हिंदू। मोपला खलीफा के साथ किए गए अन्याय से भी क्रुद्ध थे। 1921 में सबसे बड़ा मोपला विद्रोह हुआ। मोपलाओं ने अली मुसालियर को अपना राजा घोषित कर धार्मिक उन्माद एवं हिंसा भड़काई। सरकार ने अली मुसालियर को गिरफ्तार कर सेना की सहायता से विद्रोह को कुचल दिया।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. होमरूल आन्दोलन के उद्देश्यों को लिखिए।

Write the objectives of Home Rule Movement.

उत्तर

होमरूल आन्दोलन के उद्देश्य
(Aims of Home Rule Movement)

होमरूल आन्दोलन एक वैधानिक आन्दोलन था। इस आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. इसका सर्वप्रथम उद्देश्य भारत के लिए स्वशासन प्राप्त करना था। ऐनी बेसेन्ट भारत को उसी तरह का स्वराज्य दिलाना चाहती थीं जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों में था। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने होमरूल आन्दोलन का आशय स्पष्ट करते हुए अपने साप्ताहिक पत्र 'कॉमन वील' के प्रथम अंक में लिखा था कि, "राजनीतिक सुधारों से हमारा अभिप्राय ग्राम पंचायतों से लेकर जिला बोर्डों और नगरपालिकाओं, प्रान्तीय विधान सभाओं, राष्ट्रीय संसद के रूप में स्वशासन की स्थापना करना है। इस राष्ट्रीय संसद के अधिकार स्वशासित उपनिवेशों की धारा सभाओं में समान ही होंगे। उन्हें नाम चाहे जो भी दिया जाए और जब ब्रिटिश साम्राज्य की संसद में स्वशासित राज्यों के प्रतिनिधि लिए जाएँ तो भारत का प्रतिनिधि भी उस संसद में पहुँचे।"
2. इस आन्दोलन का उद्देश्य न तो अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना था और न ही उनके युद्ध के प्रयत्नों में बाधा डालना था। इसके विपरीत उनका कहना था कि स्वशासित भारत अंग्रेजों के लिए युद्ध से अधिक सहायक सिद्ध होगा। भारतीय युद्ध में अंग्रेजों को इसलिए सहायता दे रहे थे क्योंकि उन्हें यह उम्मीद थी कि युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेज उन्हें स्वशासन देंगे। ऐनी बेसेन्ट का मानना था कि यदि ब्रिटिश सरकार युद्ध के दौरान ही स्वशासन देकर उसे संतुष्ट कर दे तो भारतीय अधिक तन्मयता तथा साधन से अंग्रेजों की युद्ध में सहायता करेंगे। ऐनी बेसेन्ट का विचार था कि एक पराधीन भारत ब्रिटिश साम्राज्य के लिए उतना सहायक नहीं हो सकता जितना कि स्वतन्त्र भारत। इस प्रकार इस आन्दोलन का उद्देश्य युद्ध में परोक्ष रूप से ब्रिटेन को सहायता देना था।
3. होमरूल का एक उद्देश्य भारतीय राजनीति को उग्रधारा की ओर जाने से रोकना था। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय राजनीतिक प्रवृत्ति का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया वे इस निष्कर्ष पर पहुँची थीं कि यदि शांतिपूर्वक तथा वैधानिक तरीकों से आन्दोलन नहीं चलाया गया तो भारतीय राजनीति पर क्रांतिकारियों तथा आतंकवादियों का आधिपत्य हो जाएगा। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने शांतिपूर्ण तथा वैधानिक आन्दोलन का प्रारम्भ श्रेयस्कर समझा। डॉ० जकारिया के अनुसार, "उनकी योजना उग्र राष्ट्रीय व्यक्तियों को क्रांतिकारियों के साथ इकट्ठा होने से रोकने की थी। वे भारतीयों को ब्रिटिश

TOUCH 'n PASS

साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य दिलवाकर संतुष्ट रखना चाहती थीं।'' इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने होमरूल आन्दोलन चलाया जिससे कि भारतीय राजनीति में क्रांतिकारियों के प्रभाव को रोका जा सके।

4. युद्ध काल में भारतीय राजनीति शिथिल पड़ गई थी और सक्रिय कार्यक्रम तथा प्रभावशाली नेतृत्व के अभाव में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। अत: भारतीय जनता की सुषुप्तावस्था से जागना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु ऐनी बेसेन्ट ने होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ किया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट का कहना था, ''मैं एक भारतीय टॉम-टॉम हूँ जिसका कार्य सोए हुए भारतीयों को जगाना है, ताकि वे उठें और अपनी मातृभूमि के लिए कुछ कार्य करें।

प्र.2. लखनऊ समझौता पर टिप्पणी लिखिए।
Write a short note on Lucknow Pact.

उत्तर

लखनऊ समझौता (1916)
(Lucknow Pact 1916)

मित्र राष्ट्रों ने प्रथम विश्वयुद्ध का एक मुख्य उद्देश्य राष्ट्रों में आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को मान्यता देना और लोकतन्त्र की रक्षा करना घोषित किया था। भारत ने उपनिवेश के रूप में इंग्लैंड की बहुत सहायता की थी और मित्र राष्ट्रों के प्रचार के सन्दर्भ में राजनीतिक क्षेत्रों में शासन में अधिक हिस्सेदारी की माँग की जाने लगी थी। नरम दल के नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने, अपनी मृत्यु के दो दिन पूर्व फरवरी 1915 में, युद्धोपरान्त भारतीयों की न्यूनतम आकांक्षाओं के प्रतीक के रूप में एक सांविधानिक दस्तावेज प्रस्तुत किया, जिसे गोखले का पोलिटिकल टेस्टामेंट कहा जाता है। 1914 बाल गंगाधर तिलक मांडले से अपने कारावास की अवधि पूरी करके भारत वापस आए। अतीत के उग्रवादी तिलक अब कांग्रेस के दोनों गुटों में एकता स्थापित करने का प्रयास करने लगे इसी नई राजनीतिक गतिविधि का दूसरा पक्ष था कांग्रेस और मुस्लिम लीग का एक मंच पर एकत्रित होकर एक संयुक्त कार्यक्रम प्रस्तुत करना।

कांग्रेस और लीग से समझौते की बातचीत अक्टूबर 1915 से प्रारम्भ हो गई थी। दिसम्बर 1915 में लीग और कांग्रेस के बम्बई में संयुक्त अधिवेशन हुए। जिन्ना के शब्दों में ऐसा दोनों संगठनों का भारत के भविष्य के सम्बन्ध में साथ-साथ सोचने का अवसर देने के लिए किया गया था। 1916 में इन संगठनों के प्रतिनिधियों की नई संयुक्त बैठकें हुई। बातचीत के मुख्य मुद्दे दो थे—प्रथम का सम्बन्ध मुसलमानों को पृथक् चुनाव प्रणाली के माध्यम से अपने प्रतिनिधि चुनने की वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखने से था और दूसरा प्रश्न ब्रिटिश भारत की विभिन्न विधानसभाओं में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का अनुपात निश्चित करने से था। कांग्रेस नेतृत्व का एक वर्ग, जिसमें मालवीय प्रमुख थे, पृथक् चुनाव प्रणाली का 1909 से ही तीव्र विरोधी था। उनके विरोध के कारण एक बार तो लीग-कांग्रेस समझौते का भविष्य ही अंधकार में पड़ गया, परन्तु तिलक की मध्यस्थता से स्थिति सँभल गई। ऐसा प्रतीत होता है कि तिलक और उन्हीं के समानधर्मी कांग्रेसजन ब्रिटिश राज पर सांविधानिक माँगों को स्वीकार करने के लिए उचित दबाव डालना चाहते थे और इसके लिए वे लीग को पृथक् चुनाव की सुविधा देने को तत्पर थे। यह भी सम्भव है कि 1913 में मुस्लिम लीग के संविधान में किए गए परिवर्तन से वे पर्याप्त रूप से प्रभावित थे। इन परिस्थितियों में दिसम्बर 1916 के अन्तिम सप्ताह में लखनऊ में कांग्रेस और लीग की संयुक्त बैठक में विभिन्न प्रान्तीय विधानसभाओं में जनसंख्या के आधार पर मुसलमानों को निम्नांकित अनुपात के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया।

जहाँ तक केन्द्रीय विधानसभा का सम्बन्ध था, वहाँ के लिए यह निश्चय किया गया कि चुनाव के लिए निर्धारित स्थानों में एक तिहाई स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित रखे जाएँगे।

कांग्रेस-लीग समझौता एक राजनीतिक मोलभाव का परिणाम था। जहाँ एक ओर संयुक्त प्रान्त में मुसलमानों को अपनी जनसंख्या के अनुपात से दुगने स्थान मिले, वहीं बंगाल में हिन्दू कांग्रेसी नेता, मुसलमानों की 52 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या होने के बावजूद उन्हें 33 प्रतिशत से अधिक स्थान नहीं देना चाहते थे। बहुत कठिनाई के बाद उन्हें 40 प्रतिशत स्थान मिल सके। इस व्यवस्था से उन्हें स्थायी रूप से असन्तोष हुआ।

कांग्रेस लीग समझौता एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मसौदा है। जब तक भारतीयों को शासन में भागीदारी न देने की ब्रिटिश नीति बरकरार थी, तब तक प्रतिनिधित्व के साम्प्रदायिक आधार का कोई विशेष महत्त्व नहीं था, परन्तु अगस्त 1917 के बाद स्थिति बदल गई। पहली बार ब्रिटिश राज ने शासन में भारतीयों को क्रमश: उत्तरदायित्व देने की नीति की घोषणा की जिसका अर्थ था कार्यकारिणी का विधायिका के प्रति उत्तरदायी होना। परन्तु नीति-निर्माताओं ने भारत में विधान सभाओं के निर्माण के लिए जिस

प्रतिनिधित्व प्रणाली को कार्यान्वित किया, उसका आधार कांग्रेस-लीग समझौता था। कांग्रेस-लीग समझौते के अन्य महत्त्वपूर्ण सुझावों को लागू करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. होमरूल आन्दोलन की पृष्ठभूमि एवं प्रगति का वर्णन कीजिए।
Describe background and progress of the Home Rule Movement.

उत्तर होमरूल आन्दोलन उदारवादी आन्दोलन से भिन्न था। वह भारत के लिए स्वशासन की याचना नहीं, अपितु अधिकारपूर्ण माँग की अभिव्यक्ति था अर्थात् स्वशासन की प्राप्ति भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार था। तिलक ने कहा था कि, "होमरूल मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर ही रहूँगा।" श्रीमती ऐनी बेसेन्ट का कहना था कि होमरूल भारत का अधिकार है और राजभक्ति के पुरस्कार के रूप में उसे प्राप्त करने की बात कहना मूर्खतापूर्ण है। भारत राष्ट्र के रूप में अपना न्यायिक अधिकार ब्रिटिश साम्राज्य से माँगता है। भारत इसे युद्ध से पूर्व माँगता था, भारत इसे युद्ध के बीच माँग रहा है और युद्ध के बाद माँगेगा। परन्तु यह इस न्याय का पुरस्कार के रूप में नहीं वरन् अधिकार के रूप में माँगता है, इस बारे में किसी को कोई गलत धारणा नहीं होनी चाहिए।

आन्दोलन की पृष्ठभूमि, प्रारम्भ एवं प्रगति (Background of Movement, start and progress)

बाल गंगाधर तिलक की छः मास की लम्बी सजा काटने के बाद 16 जून 1914 को जेल से छूटे। कैद का अधिकांश समय माण्डले (बर्मा) में बीता था। भारत लौटे तो उन्हें लगा कि वह जिस देश को छोड़कर गए थे, वह काफी बदल गया है। स्वदेशी आन्दोलन के क्रांतिकारी नेता अरविन्द घोष ने संन्यास ले लिया तथा पांडिचेरी में रहने लगे थे। लाला लाजपत राय अमेरिका में थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सूरत के विभाजन, आन्दोलनकारियों पर अंग्रेजों के दमनकारी प्रहारों और 1990 के संवैधानिक सुधारों के कारण नरमपंथी राष्ट्रवादियों की निराशा के सम्मिलित सदमे से अभी उबर नहीं पाई थी।

तिलक ने सोचा कि सबसे पहले तो कांग्रेस छोड़कर बाकी गरमपंथियों को भी इसमें शामिल करवाया जाए। तिलक को यह विश्वास हो चला था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का पर्याय बन चुकी है और बिना इसकी इजाजत के कोई भी राष्ट्रीय आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। नरमपंथियों को समझाने-बुझाने, उनका विश्वास जीतने तथा भविष्य में अंग्रेजी हुकूमत दमन का रास्ता न अख्तियार करे, इस उद्देश्य से उसने घोषणा की "मैं साफ-साफ कहता हूँ कि हम लोग हिन्दुस्तान में प्रशासन व्यवस्था का सुधार चाहते हैं जैसा कि आयरलैंड में वहाँ के आन्दोलनकारी माँग कर रहे हैं। अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का हमारा कोई इरादा नहीं है। इस बात को कहने में मुझे कोई हिचक नहीं कि भारत के विभिन्न भागों में जो हिंसात्मक घटनाएँ हुई हैं, न केवल मेरी विचारधारा के विपरीत है, बल्कि उसके कारण हमारे राजनीतिक विकास की प्रक्रिया भी धीमी हुई है।" उन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के प्रति अपनी निष्ठा दोहराई और भारतीय जनता से अपील की कि वह संकट की घड़ी में अंग्रेजी हुकूमत का साथ दे।

नरमपंथी खेमे के तमाम नेता अब महसूस करने लगे थे कि 1907 में सूरत में जो कुछ उन्होंने किया, वह गलत था। ये कांग्रेस की अकर्मण्यता से भी क्षुब्ध थे। इन्हें तिलक की अपील बहुत भायी। इसके अलावा इन पर ऐनी बेसेन्ट का लगातार दबाव पड़ रहा था कि देश में राष्ट्रवादी राजनीतिक आन्दोलन को फिर से तेज करो। ऐनी बेसेन्ट अभी हाल ही में कांग्रेस में शामिल हुई थीं। 1914 में वह 66 वर्ष की थीं, उनके राजनीतिक जीवन की शुरुआत इंग्लैण्ड में हुई थी जहाँ उन्होंने स्वतंत्र चिन्तन (फ्री थॉट) उग्र सुधारवाद (रेडिकलिज्म) फैबियनवाद और ब्रह्मविद्या (थियोसॉफी) के प्रचार में हिस्सा लिया। 1893 में वे भारत आईं, उद्देश्य था थियोसोफीकल सोसायटी के लिए काम करना। उन्होंने मद्रास के एक उपनगर अडियार में अपना दफ्तर खोला और 1907 में थियोसोफी का प्रचार करने लगी। थोड़े समय में ही उन्होंने समर्थकों की एक बड़ी संख्या कर ली। जिनमें ज्यादातर उन समुदायों के शिक्षित व्यक्ति शामिल हुए थे, जिनमें अभी तक सांस्कृतिक पुनर्जागरण नहीं हुआ था। 1914 में ऐनी बेसेन्ट ने अपनी गतिविधियों का दायरा बढ़ाने का निर्णय किया और आयरलैंड की होमरूल लीग की तरह भारत में भी स्वशासन की माँग को लेकर आन्दोलन चलाने की योजना बनाई। उन्हें लगा कि इसके लिए कांग्रेस की अनुमति और गरमपंथी आन्दोलनकारियों का सहयोग लेना जरूरी है। गरमपंथियों का सहयोग पाने के लिए उन्हें कांग्रेस में शामिल करना जरूरी था। ऐनी बेसेन्ट कांग्रेस के गरमपंथी नेताओं को समझने लगी कि वे तिलक व उसके गरमपंथी सहयोगियों को कांग्रेस में शामिल होने की इजाजत दे दे। लेकिन 1914 के कांग्रेस अधिवेशन ने उसकी कोशिशों पर पानी फेर दिया। फिरोजशाह मेहता और बम्बई के उनके नरमपंथी समर्थकों ने गोखले और

बंगाल के नरमपंथियों को, गरमपंथियों को बाहर रखने के लिए मना लिया। इसके बाद तिलक और ऐनी बेसेन्ट खुद अपने बूते पर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का फैसला किया और साथ-ही-साथ वे कांग्रेस पर दबाव भी डालती रही कि गरमपंथियों को पुनः अपना सदस्य बना ले।

1915 के शुरू में ऐनी बेसेन्ट ने दो अखबारों 'न्यू इंडिया' और 'कॉमन वील' के माध्यम से आन्दोलन छेड़ दिया। जनसभाएँ तथा सम्मेलन आयोजित किए। उनकी माँग थी कि जिस तरह से गोरे उपनिवेशों में वहाँ की जनता को अपनी सरकार बनाने का अधिकार दिया गया है, भारतीय जनता को भी स्वशासन का अधिकार मिले। अप्रैल 1915 के बाद ऐनी बेसेन्ट ने और भी कड़ा और जुझारू रुख अख्तियार किया।

इसी बीच लोकमान्य तिलक ने अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ शुरू कर दीं। लेकिन वे काफी सतर्क थे कि कांग्रेस का नरमपंथी खेमा नाराज न हो या कांग्रेस को यह न लगे कि तिलक की गतिविधियाँ कांग्रेस की नीति से मेल नहीं खाती। उनकी दिली ख्वाहिश कांग्रेस में किसी तरह शामिल होने की थी। तिलक ने 1915 में पूना में अपने समर्थकों का एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें यह फैसला किया कि ग्रामीण जनता को कांग्रेस के उद्देश्यों और उसकी गतिविधियों से परिचित कराने के लिए एक संस्थान का गठन किया जाए। इस फैसले के बाद उसी वर्ष अगस्त और सितम्बर में महाराष्ट्र के विभिन्न नगरों में जो स्थानीय संगठन बने, वे राजनीतिक गतिविधियों को तेज करने के बजाय सारी ऊर्जा कांग्रेस में एकता स्थापित करने के लिए खर्च करते रहे। वे बराबर जोर देते रहे कि किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए कांग्रेस में एकता बहुत जरूरी है। नरमपंथी कांग्रेस के कुछ रूढ़िवादियों पर दबाव डालने के लिए तिलक ने कभी-कभी धमकी का भी सहारा लिया, पर उन्हें विश्वास था कि अधिकतर नरमपंथी नेताओं को वह समझा-बुझाकर मना लेंगे।

दिसम्बर 1915 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ और तिलक तथा ऐनी बेसेन्ट के प्रयासों को सफलता मिली। गरमपंथियों को कांग्रेस में वापस लेने का फैसला किया गया। फिरोजशाह मेहता के निधन के बाद बम्बई के नरमपंथियों का विरोध बेअसर साबित हुआ। गोखले का निधन हो चुका था। गरमपंथियों को कांग्रेस में लाने में तो ऐनी बेसेन्ट सफल रही पर होमरूल लीग के गठन के अपने प्रस्ताव पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मंजूरी नहीं ले सकी। लेकिन स्थानीय स्तर पर कांग्रेस समितियों को पुनर्जीवित करने के लिए प्रचार कार्यों के उनके प्रस्तावों को कांग्रेस ने मान लिया लेकिन उन्हें उस समय की कांग्रेस का चरित्र और उसकी ताकत का पता था। वे जानती थीं कि कांग्रेस ने इन कार्यक्रमों को मंजूरी तो दे दी है, लेकिन वह इस पर अमल नहीं करेगी। इसलिए उन्होंने अपने प्रस्ताव के साथ यह शर्त भी रखी थी कि यदि सितम्बर 1916 तक कांग्रेस इन कार्यक्रमों पर अमल नहीं करेगी तो वह खुद अपना संगठन बना लेंगी।

तिलक को कांग्रेस में वापस आने का अधिकार मिल गया था और उन्होंने कांग्रेस से किसी तरह का वादा भी नहीं किया था, इसलिए उन्होंने अप्रैल 1916 में बेलगाँव में हुए प्रान्तीय सम्मेलन में 'होमरूल लीग' के गठन की घोषणा की। एनी बेसेन्ट के समर्थक भी अब कसमसाने लगे। वे सितम्बर तक इन्तजार करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने एनी बेसेन्ट पर दबाव डालकर होमरूल ग्रुप की स्थापना करने की इजाजत ले ली। जमनादास द्वारकादास, शंकरदास बेकर और इन्दुलाल याज्ञनिक ने बम्बई में एक अखबार 'यंग इन्डिया' का प्रचलन शुरू किया और अंग्रेजी तथा क्षेत्रीय भाषा में परचे निकालने के लिए देश के कोने-कोने से चन्दा इकट्ठा करने लगे। एनी बेसेन्ट ने सितम्बर तक इन्तजार किया। कांग्रेस पूरी तरह निष्क्रिय थी। उन्होंने भी होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा कर दी और अपने समर्थक जार्ज अरुंडेल को संगठन सचिव नियुक्त किया। तिलक और एनी बेसेन्ट ने अपनी-अपनी लीग के लिए कार्यक्षेत्रों का बँटवारा भी कर दिया, जिससे कहीं कोई गड़बड़ी न हो। तिलक की लीग कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त और बरार की जिम्मेवारी थी। देश के बाकी हिस्से एनी बेसेन्ट की लीग के जिम्मे थी। इन दोनों ने अपना विलय नहीं किया। कारण था एनी बेसेन्ट के कुछ समर्थक तिलक को पसंद नहीं करते थे तथा तिलक के कुछ समर्थक एनी बेसेन्ट को, लेकिन उन दोनों के बीच किसी प्रकार का झगड़ा नहीं था।

तिलक ने महाराष्ट्र का दौरा किया। होमरूल आन्दोलन का खूब प्रचार किया। जनता को समझाया कि इसकी जरूरत क्यों है, इसके उद्देश्य क्या हैं। उन्हीं के शब्दों में, "भारत उस बेटे की तरह है, जो जवान हो चुका है। समय का तकाज़ा है कि बाप या पालक इस बेटे को उसका वाज़िब हक दे दे। भारतीय जनता को अब हक लेना ही होगा। उन्हें इसका पूरा अधिकार है।" तिलक ने क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा और भाषाई राज्यों की माँग को 'स्वराज' की माँग से जोड़ दिया। उन्होंने कहा "मराठी, तेलुगू, कन्नड़ तथा अन्य भाषाओं के आधार पर प्रान्तों के गठन की माँग का अर्थ ही है शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो। क्या अंग्रेज अपने यहाँ लोगों को फ्रांसीसी की शिक्षा देते हैं। क्या जर्मन अपने लोगों को अंग्रेजी में शिक्षा देते हैं या तुर्क फ्रेंच में शिक्षा देते हैं।" 1915 में बम्बई के प्रान्तीय सम्मेलन में तिलक ने गोखले के निधन पर शोक प्रस्ताव रखा। बी०बी० अलूर इसका समर्थन करने के लिए जैसे ही

TOUCH 'n' PASS

खड़े हुए तिलक ने कहा "कन्नड़ भाषा का अधिकार जताने के लिए कन्नड़ में बोलिए।" इससे पता चलता है कि तिलक में क्षेत्रीय मराठी संकीर्णता नहीं थी।

छुआछूत और गैर ब्राह्मणों के मामलों में तिलक जातिवादी नहीं थे। महाराष्ट्र के गैर ब्राह्मणों ने एक-एक बार सरकार को अलग से ज्ञापन भेजा कि उच्च वर्गों की माँगों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। तो कई लोगों ने इसका विरोध किया। लेकिन तिलक ने इन विरोध करने वालों को समझाया, आप लोग धैर्य से काम लीजिए। यदि हम उन्हें यह समझा सकें कि हम उनके साथ हैं और उनकी माँग तथा हमारी माँगों में कोई फर्क नहीं है, तो मुझे पक्का विश्वास है कि असमानता मिटाने के लिए छिड़ा उनका आन्दोलन हमारे संघर्ष से जुड़ जाएगा" उन्होंने गैर ब्राह्मणों को समझाया कि झगड़ा ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों का नहीं है भेद शिक्षित और अशिक्षित के बीच है। ब्राह्मण गैर-ब्राह्मणों की तुलना में ज्यादा शिक्षित हैं। इसलिए गैर-ब्राह्मणों की वकालत करने वाली सरकार भी मजबूर होकर सरकारी नौकरियों में ब्राह्मणों को ही भरती करती है। सरकार ब्राह्मणों के प्रति अपने निरंकुश रवैये के बावजूद, उन्हें प्रशासन में जगह दे रही है क्योंकि वह मानती है कि पढ़े-लिखे लोग ही प्रशासन चला सकते हैं। छुआछूत उन्मूलन के लिए आयोजित एक सम्मेलन में तिलक ने कहा था, "यदि भगवान भी छुआछूत को बरदाश्त करें, तो मैं भगवान को नहीं मानूँगा।"

तिलक के उस समय दिए गए भाषणों में कहीं से भी धार्मिक अपील नहीं झलकती। होमरूल की माँग पूरी तरह धर्मनिरपेक्षता पर आधारित थी। तिलक का कहना था कि अंग्रेजों से विरोध का कारण यह नहीं है कि वह किसी दूसरे धर्म के अनुयायी हैं, उनका विरोध तो हम इसलिए करते हैं क्योंकि वे भारतीय जनता के हित में कोई काम नहीं कर रहे हैं। तिलक के शब्दों में, "अंग्रेज हो या मुसलमान यदि वह इस देश की जनता के हित के लिए काम करता है, तो वह हमारे लिए पराया नहीं है। इस पराएपन का धर्म या व्यवसाय से कोई रिश्ता नहीं है। यह सीधे-सीधे हितों से जुड़ा प्रश्न है।

तिलक ने छः मराठी तथा दो अंग्रेजी परचे निकालकर अपने प्रचार कार्य को और तेज कर दिया। इन पर्चों की 47 हजार पर्चियाँ बेची गईं। बाद में इन पर्चों को गुजराती और कन्नड़ भाषा में छापा गया। लीग की छः शाखाएँ बनाई गईं। मध्य महाराष्ट्र बम्बई नगर, कर्नाटक और मध्यप्रान्त में एक-एक तथा बरार में दो।

होमरूल आन्दोलन ने जैसे-जैसे जोर पकड़ना शुरू किया सरकार ने दमनात्मक कार्यवाही तेज कर दी। इस आन्दोलन पर वार करने के लिए सरकार ने एक विशेष दिन चुना। 23 जुलाई 1916 तिलक का 60वाँ जन्मदिन था। एक बड़ी सभा का आयोजन किया गया और तिलक को एक लाख रुपए की थैली भेंट की गई। सरकार ने इस अवसर पर उन्हें दूसरा इनाम दिया। उन्हें एक कारण बताओ नोटिस दिया गया। जिसमें लिखा था कि आपकी गतिविधियों के कारण आप पर प्रतिबन्ध क्यों न लगा दिया जाए। उन्हें साठ हजार रुपए का मुचलका भरने को कहा गया। तिलक के लिए शायद सबसे महत्त्वपूर्ण उपहार था। उन्होंने कहा, "अब होमरूल आन्दोलन जंगल में आग की तरह फैलेगा। सरकारी दमन विद्रोह की आग को और भड़काएगा।"

तिलक की ओर से मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में वकीलों की एक पूरी टीम ने मुकद्दमा लड़ा। मजिस्ट्रेट की अदालत में तो तिलक मुकद्दमा हार गए पर नवम्बर में उन्हें हाईकोर्ट में निर्दोष करार दिया। इस जीत की सभी ओर सराहना हुई। गाँधी ने 'यंग-इंडिया' अखबार में लिखा, "यह अभिव्यक्ति की आजादी की बहुत बड़ी जीत है। होमरूल आन्दोलन के लिए एक बहुत बड़ी सफलता है।" इस अवसर का तिलक ने फायदा उठाया और अपने सार्वजनिक भाषणों में कहने लगे कि होमरूल या स्वशासन की माँग व्यक्त करने के लिए सरकार ने अनुमति दे दी है। तिलक और उनके सहयोगियों ने प्रचार कार्य तेज कर दिया और अप्रैल 1917 तक उन्होंने 14 हजार सदस्य बना लिए।

एनी बेसेन्ट की लीग ने भी सितम्बर 1916 से काम करना शुरू कर दिया पर उनका संगठन बहुत ढीला था। कोई भी तीन व्यक्ति मिलकर कहीं भी शाखा खोल सकते थे जबकि तिलक की लीग का संगठन बहुत मजबूत था, सभी छः शाखाओं के काम तथा कार्य लेना निर्धारित थे। एनी बेसेन्ट की लीग की दो सौ शाखाएँ थीं। बहुत शाखाएँ कस्बे और नगरों में थीं, बाकी गाँवों में, एक शाखा के तहत कुछेक गाँव आते थे। हालांकि कार्यकारी परिषद् का चुनाव किया जाता था लेकिन सारा काम एनी बेसेन्ट और उनके सहयोगी अरुंडेल, सी० डी० रामास्वामी अय्यर तथा बी०पी० वाडिया देखते थे। सदस्यों को निर्देश देने का कोई संगठित तरीका नहीं था। या तो व्यक्तिगत रूप से सदस्यों को निर्देश दिए जाते थे या फिर न्यू इण्डिया में अरुंडेल के लेखों का पढ़कर लोग जानते थे कि उन्हें क्या करना है। एनी बेसेन्ट की लीग तिलक की लीग की तुलना में सदस्य बनाने में पीछे रही। मार्च 1917 तक उनकी लीग के सदस्यों की संख्या केवल 7000 थी। जवाहर लाल नेहरू, बी० चक्रवर्ती तथा जे० बनर्जी भी इससे शामिल हो गए। फिलहाल शाखाओं की गिनती से लीग की ताकत का अनुमान लगाना कठिन है, क्योंकि इनमें से कुछ तो काफी सक्रिय भी और कुछ निष्क्रिय, क्योंकि वे ज्यादातर 'थियोसॉफिकल सोसायटी' की गतिविधियों तक सीमित थी। बतौर उदाहरण, मद्रास नगर में

शाखाओं की संख्या सबसे ज्यादा थी, लेकिन बम्बई, उत्तर प्रदेश के नगरों और गुजरात के ग्रामीण इलाकों की शाखाएँ काफी सक्रिय थीं। हालांकि इनकी संख्या काफी कम थी।

इन सारी गतिविधियों का एक मात्र लक्ष्य होमरूल की माँग के लिए बड़े पैमाने पर आन्दोलन छेड़ना था। इसके लिए राजनीतिक शिक्षा देना और राजनीतिक बहस छेड़ना बहुत जरूरी था। अरुंडेल ने 'न्यूइण्डिया' के माध्यम से अपने समर्थकों को राजनीतिक बहस छेड़ने, राष्ट्रीय राजनीति के बारे में जानकारी देने वाले पुस्तकालयों की स्थापना, छात्रों को राजनीतिक शिक्षा देने के लिए कक्षाओं का आयोजन, दोस्तों के बीच 'होमरूल' के समर्थन में तर्क देने तथा उन्होंने आन्दोलन में भागीदारी बनाने के लिए कार्य करने को कहा। कई शाखाओं ने इन पर अमल किया। राजनीतिक बहस चलाने पर विशेषरूप से ध्यान दिया।

होमरूल का प्रचार कितना तेज हुआ इसका अंदाज इसी तथ्य से लगा सकते हैं कि सितम्बर 1916 तक प्रचार फण्ड से छापे जाने वाले तीन लाख पर्चे बाँटे जा चुके थे। यह प्रचार फण्ड कुछ महीने पहले ही स्थापित किया था। इन परचों में तत्कालीन सरकार का कच्चा चिट्ठा होता था और स्वराज के समर्थन में तर्क दिए जाते थे। एनी बेसेन्ट की लीग की स्थापना के बाद इन पर्चों को फिर छापा गया। कई क्षेत्रीय भाषाओं में भी इनका प्रकाशन हुआ। साथ-साथ जनसभाओं का आयोजन और भाषणों का क्रम भी जारी रहा। जब भी किसी मुद्दे को लेकर देशव्यापी प्रतिरोध का आह्वान किया जाता था, लीग की सारी शाखाएँ इसका समर्थन करतीं। नवम्बर 1916 में, जब एनी बेसेन्ट पर बरार व मध्य प्रान्त में जाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया, तो अरुंडेल की अपील पर लीग की तमाम शाखाओं ने विरोध बैठकें आयोजित कीं और वायसराय तथा गृह सचिव को विरोध प्रस्ताव भेजे। इसी तरह 1917 में जब तिलक पर पंजाब और दिल्ली जाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया तो पूरे देश में विरोध बैठकें हुईं। लीग की तमाम शाखाओं ने इसका डटकर विरोध किया।

कांग्रेस की अकर्मण्यता से क्षुब्ध अनेक नरमपंथी कांग्रेसी भी होमरूल आन्दोलन में शामिल हो गए। गोखले की 'सर्वेंट ऑफ इण्डिया सोसायटी' को लीग का सदस्य बनने की इजाजत नहीं थी, लेकिन उन्होंने जनता के बीच भाषण देकर और परचे बाँटकर 'होमरूल आन्दोलन' का समर्थन किया। उत्तर प्रदेश में अनेक नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने कांग्रेस सम्मेलन की तैयारी के सिलसिले में होमरूल लीग के कार्यकर्त्ताओं के साथ गाँवों, कस्बों का दौरा किया। इनकी ज्यादातर बैठक स्थानीय अदालतों के पुस्तकालयों में होती, जहाँ छात्र, व्यवसायी तथा अन्य पेशों से जुड़े हुए लोग इकट्ठा होते। और अगर बैठक किसी बाजार के दिन होती तो इसमें गाँवों से आए किसान भी शरीक होते। इन बैठकों में हिन्दुस्तान की गरीबी और बेहाली का मुद्दा उठाया जाता। अतीत की समृद्धि की याद दिलाई जाती और यूरोप के स्वतंत्रता आन्दोलन पर प्रकाश डाला जाता, उससे प्रेरणा लेने की अपील की जाती। इन बैठकों में हिन्दी भाषा का इस्तेमाल किया जाता था। नरमपंथियों का होम रूल लीग को समर्थन देना कोई अचरज की बात नहीं थीं क्योंकि लीग नरमपंथियों के राजनीतिक प्रचार व शैक्षणिक कार्यक्रमों को ही असली जामा पहना रही थी।

1916 में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन होमरूल लीग के सदस्यों के लिए अपनी ताकत दिखाने का अच्छा मौका था। तिलक के समर्थकों ने तो एक परम्परा ही बना दी जिस पर कांग्रेस बहुत साल तक टिकी रही। उनके समर्थकों को लखनऊ पहुँचने के लिए एक ट्रेन आरक्षित की जिसे कुछ लोगों ने 'कांग्रेस स्पेशल' का नाम दिया, तो कुछ ने 'होमरूल स्पेशल' कहा। अरुंडेल ने लीग के हर सदस्य से कहा था कि वह लखनऊ अधिवेशन का सदस्य बनने की हर सम्भव कोशिश करें।

प्र.2. कांग्रेस लीग समझौता एवं सरकारी दमन की विवेचना कीजिए।

Discuss Congress League Pact and Government suppression.

उत्तर

कांग्रेस लीग समझौता
(Congress League Pact)

लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में तिलक को पुन: कांग्रेस में शामिल कर लिया गया। अध्यक्ष अंबिकाचरण मजूमदार ने कहा "10 वर्षों के सुखद अलगाव तथा गलतफहमी के कारण बेवजह के विवादों में भटकने के बाद भारतीय राष्ट्रीय दल के दोनों खेमों ने अब यह महसूस किया है कि अलगाव उनकी पराजय है और एकता उनकी जीत। अब भाई-भाई फिर मिल गए हैं।"

इसी अधिवेशन में महत्त्वपूर्ण 'कांग्रेस लीग' समझौता हुआ, जो "लखनऊ पैक्ट" के नाम से जाना जाता है। इस समझौते में एनी बेसेन्ट और तिलक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मदनमोहन मालवीय समेत कई वरिष्ठ नेता इसके बिल्कुल खिलाफ थे। उनका आरोप था कि यह समझौता मुस्लिम लीग को बहुत तवज्जो देता है। तिलक ने इस आरोप पर कहा, "कुछ महानुभावों का यह आरोप है कि हिन्दू अपने मुसलमान भाईयों को ज्यादा तवज्जो दे रहे हैं। मैं कहता हूँ कि यदि स्वशासन का अधिकार केवल मुस्लिम समुदाय को दिया जाए तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा, राजदूतों को यह अधिकार मिले तो परवाह नहीं, हिन्दुस्तान ने किसी भी समुदाय को यह अधिकार दे दिया जाए हमें कोई ऐतराज नहीं। मेरा यह बयान समूची भारतीय राष्ट्रीय भावना का

प्रतिनिधित्व करता है। जब भी आप किसी तीसरी पार्टी से लड़ रहे होते हैं, तो सबसे जरूरी होती है, आपसी एकता, जातीय एकता, धार्मिक एकता और विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं की एकता।''

तिलक को बहुत अधिक रूढ़िवादी हिन्दू माना जाता था। वह भारतीय प्राच्य विद्या के प्रकाण्ड विद्वान थे। जब उन्होंने इस तरह का बयान दिया, तो किसी और का विरोध करने की हिम्मत नहीं हुई। हालाँकि मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों के सिद्धान्त को स्वीकारना, विवादास्पद था। लेकिन यह इसलिए स्वीकार किया गया कि यही अल्पसंख्यकों को यह न लगे कि बहुसंख्यक उन पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं।

लखनऊ अधिवेशन में संवैधानिक सुधारों की माँग फिर उठाई। सदस्यों का मानना था कि स्वराज्य के लक्ष्य की प्राप्ति में यह माँग सहायक होगी। हालांकि इस माँग में वे सारी चीजें शामिल नहीं थी, जैसा कि होमरूल लीग के सदस्य चाहते थे, लेकिन उन्होंने इस पर कोई विवाद खड़ा नहीं किया। वे हर हाल में कांग्रेस में एकता बनाए रखना चाहते थे। तिलक ने एक और प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस अधिवेशन के निर्णयों तथा कार्यक्रमों को असली रूप देने के लिए एक कार्यकारिणी का गठन किया जाए पर नरमपंथियों के विरोध के कारण यह प्रस्ताव मंजूर न हो सका। वास्तव में तिलक चाहते थे कि कांग्रेस अकर्मण्य न रहे, थोड़ा और काम करे।

तिलक का प्रस्ताव तो मंजूर न हो पाया, पर चाल साल बाद जब 1920 में महात्मा गाँधी ने कांग्रेस संविधान को संशोधित कर उसे नया रूप दिया—एक ऐसा स्वरूप जो किसी आन्दोलन को लम्बे समय तक चलाने के लिए जरूरी था। तो उन्होंने भी तिलक के इसी प्रस्ताव को मानना जरूरी समझा।

कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति के तुरन्त बाद उसी पंडाल में दोनों होमरूल लीगों की बैठक हुई। जिसमें लगभग एक हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कांग्रेस लीग समझौते की सराहना की गई और तिलक तथा एनी बेसेन्ट ने बैठक को सम्बोधित किया। लखनऊ से लौटते समय इन दोनों नेताओं ने उत्तर, मध्य और पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्रों का दौरा किया।

सरकारी दमन (Government Suppression)—होमरूल आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव को देखकर सरकार का चिंतित होना स्वाभाविक था। मद्रास सरकार जरा ज्यादा ही कठोर हो गई। उसने छात्रों के राजनीतिक बैठकों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। पूरे प्रदेश में इसका विरोध हुआ। तिलक ने कहा, ''सरकार को मालूम है कि देश प्रेम की भावना छात्रों को ज्यादा उत्तेजित करती है। वैसे भी कोई भी देश युवा वर्ग की ताकत से ही उन्नति कर सकता है।

मद्रास सरकार ने जून 1917 में एनी बेसेन्ट, जार्ज अरुंडेल तथा वी०पी० वाडिया को गिरफ्तार कर लिया। इसके खिलाफ देशव्यापी प्रदर्शन हुए। सर सुब्रहमण्यम अय्यर ने सरकारी उपाधि (नाईटहुड) अस्वीकार कर दी। मदनमोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और मुहम्मद अली जिन्ना जैसे तमाम नरमपंथी नेता, जो अब तक लीग में शामिल नहीं थे, इसमें शामिल हो गए और उन्होंने एनी बेसेन्ट तथा अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के खिलाफ आवाज उठाई? 26 जुलाई 1917 को कांग्रेस की एक बैठक में तिलक ने कहा कि यदि सरकार इन लोगों को तुरन्त रिहा नहीं करती है, तो शान्तिपूर्ण असहयोग आन्दोलन चलाया जाए। इस प्रस्ताव को सभी प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के पास मंजूरी के लिए भेजा गया। बरार व मद्रास की कांग्रेस समितियाँ तो इस पर तुरन्त कार्यवाही के पक्ष में थीं, लेकिन बाकी समितियाँ कोई निर्णय करने से पहले थोड़ा इन्तजार करने के पक्ष में थीं। गाँधीजी के कहने पर शंकरलाल बैंकर और जमनादास द्वारकाप्रसाद ने ऐसे एक हजार लोगों के दस्तखत इकट्ठे किए जो सरकारी आदेशों की अवहेलना करके जुलूस की शक्ल में जाकर एनी बेसेन्ट से मिलना चाहते थे। इन लोगों ने स्वराज के समर्थन में किसानों और मजदूरों के हस्ताक्षर कराना शुरू किया। गुजरात के कस्बों और गाँवों का दौरा किया और वहाँ लीग की शाखाएँ स्थापित करने में मदद की। होमरूल लीग के सदस्यों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

इस प्रकार सरकारी दमन ने आन्दोलन को और बढ़ावा दिया, आन्दोलनकारियों को और जुझारू बनाया। माण्टेग्यू ने अपनी डायरी में लिखा है, ''शिव ने अपनी पत्नी को 52 टुकड़ों में काटा, भारत सरकार ने जब एनी बेसेन्ट को गिरफ्तार किया, तो उसके साथ ठीक ऐसा ही हुआ।''

इन घटनाओं के बाद इंग्लैण्ड की सरकार ने अपनी नीतियाँ बदली। अब उसका रुख समझौतावादी हो गया। नये गृह सचिव माण्टेग्यू ने हाउस आफ कॉमन्स में ऐतिहासिक घोषणा की, ''ब्रिटिश शासन की नीति है कि भारत के प्रशासन में भारतीय जनता को भागीदार बनाया जाए और स्वशासन के लिए विभिन्न संस्थानों का क्रमिक विकास किया जाए जिससे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य से जुड़ी कोई उत्तरदायी सरकार स्थापित की जा सके।'' यह बयान मार्ले के बयान से एकदम विपरीत था। 1909 में संवैधानिक सुधारों को पार्लियामेन्ट में रखते समय मार्ले ने साफ-साफ कहा था कि इन सुधारों का उद्देश्य देश में स्वराज्य की स्थापना कतई नहीं है। माण्टेग्यू की घोषणा का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब होमरूल या स्वराज की माँग को देशद्रोही नहीं कहा जा सकता था। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं था कि ब्रिटिश हुकूमत स्वराज की माँग मानने जा रही थी। माण्टेग्यू की घोषणा में यह

बात भी थी कि स्वशासन की स्थापना तभी होगी, जब उसका उचित समय आएगा और समय आया है या नहीं इसका फैसला हुकूमत करेगी। अंग्रेजी हुकूमत के लिए इतनी छूट काफी थी। इससे साफ जाहिर था कि वह भारतीयों के हाथ निकट भविष्य में सत्ता सौंपने नहीं जा रही थी।

फिलहाल माण्टेग्यू की घोषणा के चलते सितम्बर 1917 में एनी बेसेन्ट को रिहा कर दिया गया। इस समय एनी बेसेन्ट की लोकप्रियता चरम सीमा पर थी। दिसम्बर 1917 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में तिलक के प्रस्ताव पर उन्हें अध्यक्ष चुन लिया गया।

लेकिन 1918 में अनेक कारणों से होमरूल कमजोर पड़ गया, 1917 में भारी सफलता मिलने के बावजूद यह आन्दोलन मृतप्राय हो गया। एनी बेसेन्ट की गिरफ्तारी से उत्तेजित होकर नरमपंथी इस आन्दोलन में शामिल हुए थे, उनकी रिहाई के बाद निष्क्रिय हो गए। सरकार ने सुधारों का आश्वासन दिया था। इन नेताओं को लगा कि इस आन्दोलन की जरूरत नहीं है। इसके अलावा कानून निषेध आन्दोलन चलाने की चर्चा से भी वे नाराज थे। इसलिए उन्हें सितम्बर 1918 के बाद से कांग्रेस की बैठकों में हिस्सा लेना छोड़ दिया। 1918 में सुधार योजनाओं की घोषणा से राष्ट्रव्यापी खेमे में एक और दरार पड़ गई। कुछ लोग इसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने के पक्ष में थे तो कुछ इसे पूरी तरह नामंजूर करना चाहते थे। कुछ लोगों का मानना था कि इसमें कई कमियाँ तो हैं पर इसमें आजमाना चाहिए। इन सुधारों और शान्तिप्रिय असहयोग आन्दोलन के मुद्दे पर खुद एनी बेसेन्ट दुविधा में थी। कभी तो वह इसे गलत कहती और कभी अपने समर्थकों के दबाव के कारण ठीक कहती। शुरू में तिलक के साथ एनी बेसेन्ट ने कहा कि इन सुधार योजनाओं को भारतीय जनता मंजूर न करे, यह उसका अपमान है, पर बाद में उन्होंने इसे मान लेने की अपील की। तिलक काफी समय तक अपने निर्णय पर अडिग रहे। लेकिन एनी बेसेन्ट की ढुलमुल नीतियों और नरमपंथियों के रुख में बदलाव के कारण वह अकेले अपने बूते पर सुधारों का विरोध करते हुए आन्दोलन की गाड़ी को आगे खींचने में असमर्थ हो गए और साल के अन्त में इंग्लैण्ड चले गए। वहाँ उन्होंने इण्डियन अनरेस्ट के लेखक वेलेंटाइन शिरोल पर मानहानि का मुकदमा दायर कर रखा था। इस मुकदमे की पैरवी के चक्कर में वह कई महीनों तक इंग्लैण्ड में रहे। एनी बेसेन्ट एक सशक्त नेतृत्व देने में असमर्थ थी और तिलक विदेश में थे। नतीजन होमरूल आन्दोलन नेतृत्वविहीन हो गया।

होमरूल की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने भावी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए जुझारू योद्धा तैयार किए। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ये जुझारू आन्दोलनकारी आजादी की मशाल लेकर आगे बढ़े। होमरूल आन्दोलन ने, उत्तर प्रदेश, गुजरात, सिन्ध, मद्रास, मध्य प्रान्त तथा बरार जैसे अनेक नए क्षेत्रों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल किया। इस प्रकार होमरूल आन्दोलन व्यर्थ नहीं गया। उसका भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस आन्दोलन ने सोते हुए भारतीयों को जगाया और उनमें पूर्ण जागृति का संचार किया। इसने राष्ट्रीय आन्दोलन में नई गति प्रदान की और सरकार को नई सुधार योजना लागू करने के लिए विवश किया।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. प्रसिद्ध 'लखनऊ संधि' पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच ..... में हस्ताक्षर किये गये थे।

(क) 1916 (ख) 1915 (ग) 1914 (घ) 1913

उत्तर (क) 1916

प्र.2. निम्नलिखित में से कौन गरमपंथियों और नरमपंथियों के बीच मेल-मिलाप का मुख्य सूत्राधार था?

(क) फिरोजशाह मेहता (ख) मैडन कामा (ग) एम०ए० जिन्ना (घ) एनी बेसेन्ट

उत्तर (घ) एनी बेसेन्ट

प्र.3. दिसम्बर, 1916 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और भारतीय मुस्लिम लीग दोनों ने अपना सत्र ..... में आयोजित किया।

(क) लाहौर (ख) लखनऊ (ग) इलाहाबाद (घ) अलीगढ़

उत्तर (ख) लखनऊ

प्र.4. 1916 में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन की अध्यक्षता ..... ने की थी।

(क) ए०सी० मजूमदार (ख) मोतीलाल नेहरू (ग) लाल लाजपतराय (घ) एनी बेसेन्ट

उत्तर (क) ए०सी० मजूमदार

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. 1916 में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौता किसने कराया था?
(क) जे०एल० नेहरू (ख) एनी बेसेन्ट (ग) गोखले (घ) बी०जी० तिलक

उत्तर (घ) बी०जी० तिलक

प्र.6. 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन का क्या आशय निकाला गया?
(क) मुस्लिम लीग की अलग निर्वाचन मण्डल की माँग स्वीकार कर ली गयी
(ख) एक मुस्लिम व्यक्ति को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया
(ग) मुस्लिम लीग और कांग्रेस का अस्थायी विलय हुआ
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (क) मुस्लिम लीग की अलग निर्वाचन मण्डल की माँग स्वीकार कर ली गयी

प्र.7. कांग्रेस ने पहली बार मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था को वर्ष ..... में स्वीकार किया।
(क) 1932 (ख) 1931 (ग) 1916 (घ) 1909

उत्तर (ग) 1916

प्र.8. निम्नलिखित में से कौन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सर्वसम्मति की अवधि प्रस्तुत करता है?
(क) 1940-1946 (ख) 1917-1921 (ग) 1916-1922 (घ) 1906-1911

उत्तर (ग) 1916-1922

प्र.9. लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन, 1916 के बारे में निम्नलिखित में से कौन-सा सही नहीं है?
(क) अंबिका चरण मजूमदार इस सत्र के अध्यक्ष नहीं थे
(ख) महात्मा गाँधी को पहली बार चम्पारण के किसानों की समस्याओं से अवगत कराया गया था
(ग) इस सत्र में उदारवादी और उग्रवादी के बीच पुनर्मिलन स्थापित हुआ
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (क) अंबिका चरण मजूमदार इस सत्र के अध्यक्ष नहीं थे

प्र.10. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निम्नलिखित में से किस अधिवेशन में महात्मा गाँधी को चम्पारण के किसानों की समस्याओं से अवगत कराया गया था?
(क) लखनऊ अधिवेशन, 1916 (ख) सूरत अधिवेशन, 1906
(ग) कलकत्ता सत्र, 1906 (घ) बनारस अधिवेशन, 1905

उत्तर (क) लखनऊ अधिवेशन, 1916

प्र.11. प्रथम विश्व युद्ध के दौरान आन्दोलन जो भारत में लोकप्रिय हुआ, वह था—
(क) स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन (ख) होमरूल आन्दोलन
(ग) पृथकतावादी आन्दोलन (घ) स्वराजिस्ट पार्टी आन्दोलन

उत्तर (ख) होमरूल आन्दोलन

प्र.12. किस अधिवेशन में होमरूल समर्थक अपनी राजनीतिक शक्ति का सफलतापूर्वक प्रदर्शन कर सके?
(क) कांग्रेस के सन् 1916 के लखनऊ अधिवेशन में
(ख) सन् 1920 के बम्बई में होने वाले ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन अधिवेशन में
(ग) सन् 1918 में होने वाले प्रथम ए०यू०पी० किसान सभा में
(घ) सन् 1938 में नागपुर की संयुक्त ए०आई०टी०यू०सी० और ए०एफ०टी०यू० सभा में

उत्तर (क) कांग्रेस के सन् 1916 के लखनऊ अधिवेशन में

प्र.13. 'इण्डियन होमरूल सोसायटी' स्थापित हुई थी—
(क) 1900 ई० में (ख) 1901 ई० में (ग) 1902 ई० में (घ) 1905 ई० में

उत्तर (घ) 1905 ई० में

TOUCH 'n' PASS

प्र.14. होमरूल आन्दोलन भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के एक नये चरण के आरम्भ का द्योतक था, क्योंकि—
(क) इसने देश के सामने स्वशासन की एक ठोस योजना रखी
(ख) आन्दोलन का नेतृत्व गाँधीजी के हाथ में आ गया
(ग) हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक संयुक्त संघर्ष प्रारम्भ किया
(घ) इसने अतिवादियों और उदारवादियों के बीच पुनर्मेल स्थापित किया
उत्तर (क) इसने देश के सामने स्वशासन की एक ठोस योजना रखी

प्र.15. निम्नलिखित में से किसका योगदान होमरूल लीग की स्थापना में नहीं था?
(क) बालगंगाधर तिलक (ख) ऐनी बेसेन्ट
(ग) एम० सुब्रह्मण्यम अय्यर (घ) टी०ए० अल्कॉट
उत्तर (घ) टी०ए० अल्कॉट

प्र.16. निम्नलिखित में से कौन मुस्लिम नेता एनी बेसेन्ट द्वारा स्थापित होमरूल लीग में शामिल हुआ?
(क) मुहम्मद इकबाल (ख) मुहम्मद अली जिन्ना
(ग) सैय्यद अहमद खाँ (घ) अबुल कलाम आजाद
उत्तर (ख) मुहम्मद अली जिन्ना

प्र.17. निम्नलिखित में से कौन होमरूल आन्दोलन से नहीं जुड़ा था?
(क) सी०आर० दास (ख) एस० सुब्रह्मण्यम अय्यर
(ग) एनी बेसेन्ट (घ) बी०जी० तिलक
उत्तर (क) सी०आर० दास

प्र.18. अप्रैल, 1916 में स्थापित इण्डियन होमरूल लीग का प्रथम प्रेसीडेंट कौन था?
(क) जोसेफ बपिस्टा (ख) एनी बेसेन्ट (ग) एन०सी० केलकर (घ) बी०जी० तिलक
उत्तर (क) जोसेफ बपिस्टा

प्र.19. बाल गंगाधर तिलक को लोकमान्य विशेषण कब दिया गया?
(क) स्वदेशी आन्दोलन (ख) क्रान्तिकारी आन्दोलन
(ग) होमरूल आन्दोलन (घ) भारत छोड़ो आन्दोलन
उत्तर (ग) होमरूल आन्दोलन

प्र.20. तिलक तथा एनी बेसेन्ट द्वारा बनाये गये होमरूल लीगों को एक में मिला दिया गया था—
(क) 1916 में (ख) 1918 में (ग) 1920 में (घ) 1923 में
उत्तर (ख) 1918 में

❑

TOUCH 'n' PASS

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।